वाणी-सरोवर

देवनागरी अक्षयवट

अप्रैल, १९७५

भुवन वाणी ट्रस्ट
लक्ष्मनऊ-३

नन्दकुमार अवस्थी —प्रतिष्ठाता

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण विश्व में घर-घर है पहुँचानी ॥

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—६ अप्रैल, १९७५ अंक—२

विद्वत्-परिषद्

असमिया—प्रो. पी.सी. देव शर्मा, प्रिंसिपल, हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण म०वि० गौहाटी
अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ
ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक
अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल प्रिं. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली
उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी. सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.
कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्तन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई
कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)
गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई
गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.
तमिळ—प्रा० श्रीमती राजम् पिल्लै, एम.ए.हिन्दी,बम्बई
श्रीमती मीनाक्षी शेषन् ,, ,, ,,
तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.
नेपाली—नन्दकुमार आमात्य सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य
पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'
फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू.(फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०
बंगला—प्रबोध मजुमदार
मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी.
राजस्थानी—डॉ. सत्यनारायण स्वामी एम. ए. पीएच्. डी., बीकानेर
मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि० डॉ. एन.पी.कुट्टन पिल्लै,हैदराबाद
संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली डॉ जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., पीएच्. डी.
सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सि.स.
हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय—विश्व हिन्दी सम्मेलन आदि...	...	३-४
४ (फ़ारसी)	सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.		२४१-२४८
५ (मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.		२४९-२५६
६ (बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार		२४९-२५६
७ (तमिळ)	तिरुक्कुरळ्—सानु०लिप्य०—श्रीमती राजम् पिल्लै पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)		२१७-२२४
८ (उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी		९७-१०४
९ (अरबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादे सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी		२०९-२१६
१० (ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक		२२५-२३२
११ (मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी		१८५-१९२
१२ (असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार		१६१-१६८
१३ (गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई		१५३-१६०
१४ (तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी.		१४५-१५२
१५ (सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम.ए. सा०र०		१४५-१५२
१६ (कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.		१२९-१३६
१७ (नेपाली)	भानुभक्त-रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य		१२९-१३६
१८ (कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिवनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.		१३७-१ ४
१९ (गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.		१०५-११२
२० (संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) डॉ० जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., पीएच्. डी.,सा.रत्न		१०५-११२
२१ (राजस्थानी)	पदम भगत कृत—रुकमणी-मंगळ (क्रमशः) डॉ० सत्यनारायण स्वामी, एम.ए., पीएच्. डी., बीकानेर		२५-३२

सम्पादकीय

१. विज्ञप्ति--(प्रस्तुत अंक में विलम्ब)

'वाणीसरोवर' का प्रस्तुत अंक अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में नियमानुसार प्रकाशित हो जाना चाहिये था, किन्तु कुछ सुयोग और कुयोग ने मिल कर इस विलम्ब को अनिवार्य कर दिया। कुयोग तो यह कि भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा सञ्चालित वाणी प्रेस की सिलेण्डर और पुस्तक छापने में सक्षम ट्रेडिल—दोनों ही एक साथ बिगड़ गईं, क्षत-विक्षत हो गईं। अर्थ की भी हानि हुई,और समय भी कम व्यर्थ नहीं गया। सीमित अर्थ-साधन और कारकुनों की स्वल्प व्यवस्था ने इस विपत्ति को और भी कनिठतर बना दिया।

किन्तु अन्धकार का अनुगत प्रकाश है। सुयोग भी प्रस्तुत हुआ; उससे भी विलम्ब हुआ। कुछ समय से प्रकाशन में चल रहे ग्रन्थ—(१) कश्मीरी रामावतारचरित (प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत) पृष्ठ ४८८; (२) फ़ारसी में शाहज़ादः दाराशिकोह कृत सिर्रेअक्बर (५० उपनिषदों का फ़ारसी भाष्य) के ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय और श्वेतश्वतर का हिन्दी रूपान्तर पृष्ठ सख्या ३००; (३) बँगला कृत्तिवास रामायण के आदि, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्ध्या और सुन्दरकाण्ड का पद्यानुवाद (द्वितीय संसकरण)—पृष्ठ संख्या ६२५; (४) मलयाळम अळुत्तच्छन् कृत महाभारत पृष्ठ संख्या १२२५;—ये ग्रन्थ एक साथ सम्पूर्ण हुए। जुलाई अंक में इनका पूर्ण विवरण दिया जायगा; इसके प्रकाशन में भी कुछ विलम्ब तो होगा ही। कश्मीरी, बँगला और मलयाळम का मूल पाठ परिवर्द्धित नागरी लिपि में देते हुए हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। इस सुयोग और शुभयोग ने प्रस्तुत अंक के पिछड़ने में हेतु बन कर भी, पूर्वोक्त कुयोग के परिणाम को धोकर स्वच्छ कर दिया। आशा है पाठकवृन्द अंक के विलम्ब को इस पृष्ठभूमि में क्षमा करेंगे।

२. विज्ञप्ति--(नागरीलिपि-परिषद का पंजीकरण)

२३-२४ फ़रवरी, १९७४ ई० की बात है जब पवनार आश्रम (वर्धा) में, श्री आचार्य विनोबा जी के सान्निध्य और डॉ० श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षता में नागरी लिपि के प्रसार और उसकी उपयोगिता पर विचार करने के लिए एक गोष्ठी बैठी थी। शासन और जनता के निष्ठावान् सामाजिक कार्यकर्ताओं ने उसमें सम्मिलित होकर विचार विमर्ष किया था। मैं भी उसमें सम्मिलित था। सारे राष्ट्र को, और पश्चात् समस्त राष्ट्रों को परस्पर जोड़ने, सारी भाषाओं और भावों को नागरी लिपि के माध्यम से सर्वत्र पहुँचाने और एक दूसरे में प्रतिबिंबित करने के पुष्कल संकल्प को सामने रख कर 'नागरी लिपि परिषद' की स्थापना का प्रस्ताव स्वीकार करके अध्यक्ष महोदय को तदर्थ कार्यवाही करने का भार सौंपा गया।

लगभग एक वर्ष बाद ७ जनवरी, १९७५ ई० में पुनः पवनार आश्रम

में ही डॉ० श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में,नागरी लिपि के प्रसार और प्रचार हेतु 'नागरी परिषद' नाम से एक स्वतंत्र संस्था संस्थापित करने का निर्णय लिया गया। अध्यक्ष सहित सात सदस्यों की एक बुनियादी समिति का मनोनयन हुआ। उन सात प्रारंभिक सदस्यों में से एक अकिञ्चन (नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक वाणीसरोवर एवं प्रतिष्ठाता भुवन वाणी ट्रस्ट) भी है।

तब से माननीय अध्यक्ष श्रीमन् जी तथा गांधी स्मारक निधि—दिल्ली (जिसके तत्वावधान में यह विश्वोपकारी कार्य हो रहा है), वर्धा में निर्णीत इस उद्देश्य की परिणति में लगे हैं। १० मई, १९७५ ई० को 'नागरी लिपि परिषद' नाम से संस्था का पञ्जीकरण हो चुका है, और अध्यक्ष महोदय, सात बुनियादी सदस्यों के अतिरिक्त, अखिल भारतीय स्तर पर, सुपात्र सदस्यों को मनोनीत करके एक सक्षम कार्यवाही समिति का गठन कर रहे हैं।

विश्वास है कि यह महती संस्था 'नागरी लिपि' के कलेवर में सारे विश्व के वाङ्मय को प्रस्तुत करके मानवमात्र को भावनात्मक विश्वपरिवार-जैसी इकाई में लाने में दिन ब दिन कृतकार्य होगी। "अनेक-रूप-रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे!" सन् १९१० ई० में जस्टिस शारदाचरण मित्र का नागरी लिपि सम्बन्धी मंत्रघोष, काशी विश्वविद्यालय की सुवर्णजयंती के अवसर पर भाषा और लिपि पर स्व० बापू का पथनिर्देश, सन् १९४७ से मेरा सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण का अनवरत श्रम, लिपि के माध्यम से विश्वएकीकरण की दिशा में बाबा (आचार्य विनोबा भावे) का आशीर्वाद, और अब अखिल भारतीय क्या अखिल विश्व 'नागरी लिपि परिषद' की संस्थापना—इन सबके पीछे एक दैवी तारतम्य है, भगवान् की इच्छा का पूर्णाभास है। "प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी। अखिल विश्व में घर घर है पहुँचानी॥" —भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ के पावन लक्ष्य की ज्योति का सर्वतोमुखी प्रस्फुटन है।

३. विज्ञप्ति—(लखनऊ किताबघर, लखनऊ)

पाठकों को विदित है कि १९४७ ई० में, विविध भाषाओं और लिपियों के सत्साहित्य को नागरी लिपि का जामा पहना कर भाषाई सेतु-करण, और लिपि एवं भाषाओं के गठजोड़ द्वारा राष्ट्र-समन्वय का कार्य मैंने उठाया था। लगभग बीस साल की मुसल्सल मिहनत के बाद बँगला की कृत्तिवासी रामायण एवं विश्वविख्यात इस्लामी दिव्यग्रंथ क़ुर्आनशरीफ़ का सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण को जनता के सामने प्रस्तुत करने का भगवान् ने अवसर दिया। क़ुर्आनशरीफ़ का काम अत्यन्त जटिल था; यह भगवान् ही की कृपा रही कि वह सफलता से ठिकाने लगा। विद्वान् और जनता—सर्वत्र सम्मान हुआ, सराहना हुई। अरबी न जाननेवाले हिन्दीदाँ मुसलमानों ने उसको निअ़मत समझ कर सर-आँखों लगाया। ग़ैरमुस्लिम

वन्धुओं ने कुतूहल और उत्कण्ठा से उसको देखा-पढ़ा; अनेक भ्रान्तियों का निवारण हुआ। बहरहाल जहाँ तक मेरी जानकारी है, जिन हाथों में क़ुर्आनशरीफ़ का यह हिन्दी रूपान्तर पहुँचा उनके दिलों को जोड़ा है, तोड़ा एक दिल को भी नहीं। परस्पर समीपता आई है। मुस्लिम धर्माचार्यों ने भी, "नागरी लिप्यन्तरण के द्वारा अरबी आयतों का पठन यथासाध्य सम्भव है", इस पर आस्था प्रकट की है। वैसे अरबी का नागरी लिपि में समानान्तर शुद्ध लिप्यन्तर हो, इसमें शोध और परिमार्जन जारी है।

अस्तु, यह अरबी धर्मग्रन्थ (लखनऊ से 'भुवन वाणी, कलामे आलम)' अर्थात् 'विश्व की समस्त भाषाओं के वाङ्मय को प्रस्तुत करनेवाला प्रतिष्ठान', इस प्रकाशन संस्थान से १९६९ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके प्रति जनता में प्राप्त आदर से प्रोत्साहित होकर १९६९ ई० में ही मैंने 'भुवन वाणी ट्रस्ट' नाम की एक पंजीकृत संस्था की स्थपना की और उसके द्वारा अरबी, फ़ारसी, पारसी, बँगला, असमिया, ओड़िया, नेपाली, गुरुमुखी, कश्मीरी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, तेलेगु, तमिळ, कन्नड और मलयाळम् आदि के सत्साहित्य का अनुवाद और सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित करना आरंभ किया। कार्य पुनीत और राष्ट्र के लिए इतना समीचीन और उपयोगी सिद्ध हुआ कि छः वर्ष में ही 'भुवन वाणी ट्रस्ट' ने प्रचुर कार्य करके अखिल देश में ख्याति अर्जन कर ली। अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। अब समस्या उत्पन्न हुई कि 'भुवन वाणी' और 'भुवन वाणी ट्रस्ट' उपर्युक्त दो प्रकाशन-संस्थानों के नामों में विभ्रम उत्पन्न होने लगा। उद्देश्य एक और उनके जन्मदाता के एक होने के बावजूद दोनो प्रकाशन-संस्थान पृथक्-पृथक् हैं। यह विचार कर प्रथम संस्थापित 'भुवन वाणी' को विराम देना उचित समझा गया।

अब क़ुर्आन शरीफ़ का अगला संस्करण 'लखनऊ किताबघर' के तहत में प्रकाशित हो रहा है। लखनऊ किताबघर, लखनऊ से, प्रायः अरबी, फ़ारसी और इस्लामी ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद अथवा सानुवाद नागरी लिप्यन्तरण प्रकाशित होंगे। (१) केवल अनुवाद, (२) केवल मूल पाठ का नागरी लिप्यन्तरण (३) और मूल पाठ अनुवाद एवं टिप्पणी सहित— इस प्रकार क़ुर्आन शरीफ़ के तीन प्रकार के संस्करण एक ही डेढ़ मास में प्रकाशित होने जा रहे हैं।

इनके अतिरिक्त तीन अद्भुत कोशों का प्रकाशन आरंभ हो चला है। (१) क़ौरानिक कोश (पठनक्रम से) (२) क़ौरानिक कोश वर्णानुक्रम से) (३) जदीद उर्दू हिन्दी कोश। जदीद उर्दू हिन्दी कोश में अरबी, फ़ारसी, एवं उर्दू में घुले-मिले संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्द, इनको अरबी और नागरी दोनों लिपियों में देकर उनके हिन्दी शब्दार्थ दिये गये हैं। अरबी लिपि से नागरी-लिप्यन्तरित लेखन में यह विशेषता है कि उसमें सीन,

से, साद; जाल, जे, ज़ाद, जो, जीम; ते, त, गोलते; छोटी हे, बड़ी हे; हम्ज़: (अ) और ऐन (अ) का भेद रखा गया है। इनके पृथक् स्पष्ट न करने से शब्दों में अर्थ का अनर्थ हो जाता है। यथा अलीम (परमज्ञानी विद्वान्), अलीम (महा दुखदायी); हाजी (हज, तीर्थ करनेवाला), हाजी (हजो—निन्दा-तिरस्कार करनेवाला)। यह कोश अपने ढंग का अद्वितीय इतिहास-निर्माता सिद्ध होगा।

'लखनऊ किताबघर' नागरी लिपि के माध्यम से इस प्रकार जनता की वह विशिष्ट सेवा करेगा जो सदियों में समूहों को नसीब नहीं होता। इस लिए यह शुभ सूचना 'भुवन वाणी ट्रस्ट' के संरक्षकों, पाठकों और समस्त जनता के सामने प्रस्तुत है। वसुधैव कुटुम्बकम्! जय जगत्!!

४. विज्ञप्ति—(समणसुत्तं-श्रमणसूत्रम्)

फ़र्मा मुद्रण के लिए मशीन पर जाने को था कि सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, वाराणसी के अध्यक्ष श्री कृष्णराज मेहता जी की कृपा से उपर्युक्त ग्रन्थ की प्रति प्राप्त हुई। पाठकों को इस सूचना से वञ्चित न रखने के लोभ का संवरण न कर सकने पर, कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

सत्यग्राही महर्षि विनोबाजी की दृष्टि परमसत्यग्राही जैनधर्म पर गई। उनकी प्रेरणा हुई कि जिस भाँति सारे वैदिक धर्म का सार 'गीता' में, और बौद्धधर्म का 'धम्मपद' में निहित है, उसी भाँति जैनधर्म के विभिन्नांगों का सारभूत भी एक पुस्तक में विश्वकल्याण के लिए संकलित किया जाय। बाबा की प्रेरणा से अनेक मुनि, आचार्य, विद्वान् और श्रावकों ने अनवरत, सामूहिक अध्ययन-मनन-चिन्तन के बाद सर्वानुमति से इस 'श्रवण सूक्तम्' की रचना की।

इस सर्वमान्य जैन ग्रन्थ के चार खण्डों में मंगल सूत्र, जिन शासन, संघ, निरूपण, संसारचक्र, कर्म, मिथ्यात्व, राग-परिहार, धर्म, संयम, अपरिग्रह, अहिंसा, अप्रमाद, शिक्षा, आत्म, मोक्षमार्ग, रत्नत्रय, सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान, सम्मक्चारित्र, साधना, द्विविधधर्म, श्रावकधर्म, श्रमण-धर्म, व्रत, समितिगुप्ति, आवश्यक, तप, ध्यान, अनुप्रेक्षा, लेश्या, आत्मविकास, संलेखना, तत्व, द्रव्य, सृष्टि, अनेकान्त, प्रमाण, नय, स्याद्वाद व सप्तभङ्गी, समन्वय, निक्षेप, समापन और वीर-स्तवन—इन ४४ सूत्रों में प्राकृत भाषा के गाथा-मंत्र, उनके परिष्कृत संस्कृत श्लोक और हिन्दी अनुवाद दिया गया है। अंत में गाथानुक्रमणिका और ऐसे धर्मग्रन्थों के लिए अनिवार्य एक पारि-भाषिक शब्दकोश देकर ग्रन्थ को सर्वप्रकार महिमामण्डित कर दिया है।

इस अनमोल ग्रन्थरत्न का प्रथम संस्करण एक दिन में बिक गया। और अब दूसरा संस्करण तत्काल ही प्रकाशित हुआ है। २९६ पृष्ठ के ऐसे संकलनग्रंथ का मूल्य सजिल्द १२,०० सामान्य १०,०० मात्र है।

—नन्दकुमार अवस्थी

फार्म–४

(नियम ८ देखिए)

१	प्रकाशन स्थान	४०५/१२८ प्रभाकर निलयम् चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३
२	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
३	मुद्रक का नाम नागरिकता पता	नन्दकुमार अवस्थी भारतीय ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३
४	प्रकाशक का नाम नागरिकता पता	नन्दकुमार अवस्थी भारतीय ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३
५	संपादक का नाम नागरिकता पता	नन्दकुमार अवस्थी भारतीय ४०७/१०९ रानीकटरा, लखनऊ-३
६	स्वामित्व	भुवन वाणी ट्रस्ट ४०५/१२८, 'प्रभाकर निलयम्' चौपटियाँ रोड, लखतऊ-३

मैं, नन्दकुमार अवस्थी एतद्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

ता० २२-४-७५

प्रकाशक,
मुख्यन्यासी-सभापति,
भुवन वाणी ट्रस्ट

स्थापित वर्ष 1949-50

फ़ोन 25634

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

12, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की 134 सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था—

गन्ना संघ व सदस्य समितियों के लगभग 22 लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है।

लघु सिंचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुए कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

देश में एक बार फिर उत्तर प्रदेश अग्रणी

चार करोड़ व्यक्ति ऋणमुक्त

कृषक, हरिजन, अमिक ऋण विमोचन अधिनियम द्वारा

हरिजनों, भूमिहीनों और एक एकड़ जोत तक के

किसानों के परिवार महाजनों के चंगुल से छूटे

सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में

राज्य करकार का क्रान्तिकारी मदक

ग १२११९ सूचना विभाग, उ० प्र० द्वारा प्रसारित।

आज का बालक ही कल का राष्ट्रनायक है

अतएव

इनको स्वस्थ एवं सबल रखना प्रत्येक माँ-बाप का परम कर्तव्य है

आप अपने बच्चे को– – –

– – – बाल-पक्षाघात से बचाव के लिये पोलियो वेक्सीन दिलबायें

– – –कुकर खासी, डिप्थीरिया एवं टेटन्स से बचाव के लिये ट्रिपिल एन्टीजन का इन्जेक्शन लगवा दें।

– – –चेचक से बचाव के लिये चेचक का टीका लगवायें।

क्षय रोग से बचाव हेतु बी०सी०जी० का टीका अवश्य लगवायें।

उ० प्र० १६२५ राज्य स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन शिक्षा ब्यूरो, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा प्रसारित

सि० अ०—श्वेताश्वतर ने शिष्यों से कहा कि मैं इस महान् पुरुष को जानता हूँ। यह महान् पुरुष ज्योतिमय सूर्य के समान है और अज्ञानान्धकार से परे। जो कोई इस प्रकार जानता है वह मृत्यु को तर कर, अमर हो कर, अक्षत रहता है, उस तक पहुँच जाता है। उस की प्राप्ति का दूसरा मार्ग नहीं है। [८]

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चिद्,
यस्मान् नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्,
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्,
तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥

अनु०—जिस से उत्कृष्ट और कोई नहीं है, जिस से छोटा और बड़ा भी कोई नहीं है, जो द्युलोक में वृक्ष के समान अकेला निश्चलभाव से स्थित है, उसी पुरुष ने इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है। (९)

सि० अ०—हिरण्यगर्भ से बड़ी कोई और सत्ता नहीं है। कोई भी सत्ता या तत्त्व उस से बड़ा नहीं है। और उस से सूक्ष्मतर भी कोई सत्ता नहीं है। वह एक वृक्ष है, सीधा और निश्चल। समस्त जगत् में वह वृक्ष अकेला है। उस से समस्त जगत् पूर्ण है और वह अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है। [९]

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम्।
य एतद् विदुरमृतास् ते भवन्त्यथेरे दुःखमेवापि यन्ति ॥ १० ॥[1]

अनु०—उस से जो उत्कृष्टतर है वह अरूप और अनामय है। उसे जो जानते हैं वे अमर हो जाते हैं, अन्य तो दुःख को ही प्राप्त होते हैं। (१०)

सि० अ०—जो हिरण्यगर्भ से उत्कृष्टतर है वह निराकार और निर्गुण है। यही निर्गुण जगत् के प्रादुर्भाव के समय एकान्ततः सगुण हो जाता है और जगत् के लय हो जाने पर एकान्ततः निर्गुण। वह निर्गुण दुःख से शून्य है। [१०]

सर्वाननशिरोग्रीवः, सर्वभूतगुहाशयः,
सर्वव्यापी स भगवांस्; तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥ ११ ॥

अनु०—वह भगवान् समस्त मुखों वाला, समस्त शिरों वाला, और समस्त ग्रीवाओं वाला है; वह समस्त जीवों के अन्तःकरण में स्थित और सर्वव्यापी है। इसलिए [वह] सर्वगत और मङ्गलरूप है। (११)

---

१ अन्तिम वाक्य बृहदारण्यकोपनिषद् ४.४.१४ में भी प्राप्त होता है।

सि० अ०—समस्त आनन उसी के आनन हैं, समस्त सिर उसी के सिर हैं, समस्त ग्रीवाएँ उसी की ग्रीवा हैं। वह सभी प्राणियों की हृदय-गुहा में निहित है, सर्वव्यापक है, उपास्य है। इसी कारण वह आनन्दस्वरूप सर्वगत है। [११]

महान् प्रभुर् वै पुरुषः, सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो, ज्योतिरव्ययः ॥ १२ ॥

अनु०—यह पुरुष महान्, परमसमर्थ, इस निर्मल प्राप्ति के उद्देश्य से अन्तःकरण को प्रेरित करने वाला, सब का नियन्ता, प्रकाशस्वरूप, और अविनाशी है। (१२)

सि० अ०—वह प्रभुओं का प्रभु है और सर्वत्र पूर्ण है। वह सभी प्राणियों का प्रेरक है। वह परम मुक्ति का स्वामी है, ज्योतिःस्वरूप है, और अव्यय है। [१२]

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो; ऽन्तरात्मा;
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः;
हृदा, मन्वीशो,[1] मनसाऽभिक्लृप्तः।
य एतद् विदुरमृतास् ते भवन्ति ॥ १३ ॥[2]

अनु०—यह पुरुष अंगुष्ठमात्र, अन्तरात्मा; सर्वदा जीवों के हृदय में स्थित; और हृदय, बुद्धि, और मन द्वारा निष्पन्न (अथवा प्रकाशित) है। जो इसे जानते हैं वे अमर हो जाते हैं। (१३)

सि० अ०—चूँकि वह मनुष्य के अन्तःकरण में, जिस के भीतर विद्यमान आकाश पुरुष के अंगूठे के आकार का है, स्थित है, अतः उसे 'अगुष्ठमात्र पुरुष' कहते हैं। अन्यथा वह आकार के परे है। चूँकि वह समस्त प्राणियों के हृदय में उन के हृदयाकाश के बराबर है, अतः वह उस मनीषा से जाना जाता है जो हृदय को अधिकृत किये हुए है। जो कोई उसे जान लेता है वह अमर हो जाता है। [१३]

सहस्रशीर्षा पुरुषः, सहस्राक्षः, सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ १४ ॥[3]

---

१ 'मनीषा' अधिक शुद्ध प्रतीत होता है, जैसा ४.१७ और कठोपनिषद् २.३.९ में प्रयुक्त हुआ है। २ तुलनीय—४.१७; कठोपनिषद् २.१.१२, १३; २.३.९, १७।

३ ऋग्वेद १०.९०.१; यजुर्वेद ३१.१; सामवेद १.६१८; अथर्ववेद १९.६.१; तैत्तिरीयारण्यक ३.१२.१—कहीं-कहीं किञ्चित् पाठान्तर के साथ।

अनु०–पुरुष सहस्र सिर, सहस्र नेत्र, और सहस्र चरणों वाला है। वह भूमि को सब ओर से व्याप्त कर उस का दस अंगुल अतिक्रमण कर के स्थित है। (१४)

सि० अ०—उस पुरुष के अनन्त सिर हैं, बाह्य और आभ्यन्तर अनन्त नेत्र हैं, और वह समस्त महाभूतों को व्याप्त कर के दस अंगुल ऊपर रहता है—नाभि से वक्षःस्थल के भीतर हृदय तक। [१४]

पुरुष एवेदꣳ सर्वं, यद् भूतं यच् च भव्यम्,
उतामृतत्वस्येशानो, यदन्नेनातिरोहति ॥ १५ ॥[1]

अनु०–जो कुछ भूत और भविष्यत् है एवं जो अन्न के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है वह सब पुरुष ही है; तथा वही अमृतत्व का भी प्रभु है। (१५)

सि० अ०—जो कुछ दिखायी देता है, जो कुछ हुआ है, और जो कुछ होगा वह पुरुष ही है। वह मोक्षदाता है। वह माया अर्थात् वासनाओं से बहुरूप भासता है। जो कुछ माया के कारण पृथक् प्रतीत होता है वह भी वही है। [१५]

सर्वतःपाणिपादं तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्,
सर्वतः श्रुतिमल् लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १६ ॥[2]

अनु०–[उस के] सब ओर हाथ-पाँव हैं, सब ओर आँख, शिर, और मुख हैं, [वह] सर्वत्र कर्णों वाला है, एवं लोक में सब को व्याप्त कर के स्थित है। (१६)

सि० अ०—सभी ओर उस के हाथ हैं, सभी ओर उस के पैर हैं, सभी ओर उस के नेत्र हैं, सभी ओर उस के सिर हैं, सभी ओर उस के मुख हैं, सभी ओर उस के कान हैं। वह सब को व्याप्त किये हुए है। [१६]

सर्वेन्द्रियगुणाभासं, सर्वेन्द्रियविवर्जितम्,[3]
सर्वस्य प्रभुमीशानं, सर्वस्य शरणं बृहत् ॥ १७ ॥

---

१ ऋ. १०.९०.२; यजुर्वेद ३१.२; सामवेद १.६२०; अथर्ववेद १९.६.४; तैत्तिरीयारण्यक ३.१२.१–किञ्चित् पाठान्तर के साथ।

२ गीता १३.१३।

३ यह चरण गीता १३.१४ में भी आता है।

अनु०–[वह] समस्त इन्द्रिय-गुणों के रूप में अवभासित होता हुआ भी समस्त इन्द्रियों से रहित है, सब का प्रभु, शासक, और सब का बड़ा आश्रय है। (१७)

सि० अ०—वह समस्त इन्द्रियों और इन्द्रिय-ज्ञानों को प्रकाशित करता है और समस्त इन्द्रियों से परे है। सब का स्वामी, सब का ईश्वर, और सब की शरण वही है। [१७]

नवद्वारे पुरे[1] देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥

अनु०–सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् का स्वामी यह हंस (परमात्मा) नव द्वार वाले [देहरूप] पुर में बाह्य विषयों को ग्रहण करने के लिए चेष्टा किया करता है। (१८)

सि० अ०—वह सब का क्षेत्र है। मनुष्य का शरीर एक नगर है जिस के नौ द्वार हैं। उस में जीवात्मा है जिस का नाम हंस है। वह जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्तावस्था, और तुरीयावस्था इन चार अवस्थाओं में विहार करता है। यद्यपि वह इन चार अवस्थाओं में विहार करता है, तथापि वह सभी से परे, निर्लिप्त, और बाह्य है। सभी जंगम और स्थावर उस के वशीभूत हैं। [१८]

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः, स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता।
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥

अनु०–वह हाथ-पाँव से रहित हो कर भी वेगवान् और ग्रहण करने वाला है, नेत्रहीन हो कर भी देखता है, कर्णरहित हो कर भी सुनता है। वह ज्ञातव्य को जानता है, किन्तु उसे जानने वाला कोई नहीं है। उसे आदि, पूर्ण, एवं महान् पुरुष कहा है। (१९)

सि० अ०—यद्यपि उस के हाथ और पैर नहीं हैं, तथापि वह ग्रहण करता और चलता है, आँख नहीं है और देखता है, कान नहीं है और सुनता है। वह सभी ज्ञातव्य विषयों का ज्ञाता है और उस का ज्ञाता कोई नहीं। वह सर्वत्र पूर्ण है और सब का मूल है। महात्मा लोग उसे सब से बड़ा कहते हैं। [१९]

१ कठोपनिषद् २.२.१; गीता ५.१३।

अणोरणीयान्, महतो महीयान्,
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान् महिमानमीशम् ॥ २० ॥[1]

अनु०—यह अणु से भी अणु और महान् से भी महान् आत्मा इस जीव के अन्तःकरण में निहित है। उस संकल्पशून्य महिमामय ईश्वर को जो विधाता की कृपा से देखता है वह शोकरहित हो जाता है। (२०)

सि० अ०—वह सभी व्यापकों में व्यापक है और सूक्ष्मों से सूक्ष्मतर है। वह हृदय-गुहा में बसता है। आत्मा ऐसा ही है। वह अकाम है। वह हमारी ओर कृपादृष्टि रखे। जो कोई उस का दर्शन कर लेता है वह शोकरहित हो जाता है। वह ईश्वर है जो साक्षात् माहात्म्य-स्वरूप है। [२०]

वेदाहमेतमजरं, पुराणं,
सर्वात्मानं, सर्वगतं विभुत्वात्,
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य
ब्रह्मवादिनो हि, प्रवदन्ति नित्यम् ॥ २१ ॥

अनु०—ब्रह्मवेत्ता जिस के जन्म का अभाव बतलाते हैं और जिसे नित्य कहते हैं उस जराशून्य पुरातन सर्वात्मा को, जो विभु होने के कारण सर्वगत है, मैं जानता हूँ। (२१)

सि० अ०—श्वेताश्वतर ने अपने शिष्यों से कहा : मैं उस पुरुष को जानता हूँ जो पुरातन है, अजर है, सर्वात्मा है, सर्वगत है, और विभु है। उसे जानने वाला पुरुष किसी भी लोक में जन्म नहीं लेता। उस के विषय में ब्रह्मवादियों का कहना है कि उस का न आदि है और न अन्त, और कि वह नित्य है। [२१]

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

---

१ तैत्तिरीयारण्यक १०.१० १; अथर्ववेदीय-महानारायणोपनिषद् ८.३; किञ्चित् पाठभेद के साथ कठोपनिषद् २.२० ।

चतुर्थोऽध्यायः

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्
वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः ।
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥

अनु०—जो एक अवर्ण हो कर भी विविध शक्तिओं के योग से और किसी गुप्त प्रयोजन से नाना वर्ण धारण करता है और जिस अपने आदि- और अन्त-रूपी सत्ता में विश्व लीन हो जाता है वही देव है। वह हमें शुभ बुद्धि से संयुक्त करे। (१)

सि० अ०—ब्रह्म एकमात्र सत्ता है। उस में कोई रंग नहीं, किन्तु अपनी विविध प्रकार की शक्तिओं के योग से विविध प्रकार के रंगों को व्यक्त करता है। उस ने जो कुछ उत्पन्न किया है उस सब का अन्ततः अपने में लय कर के पुनः अपने में से प्रकट करता है। श्वेताश्वतर ने कहा—वह एकमात्र ज्योतिःस्वरूप सत्ता है। मुझे वह ज्ञान प्राप्त करा दे जिस से मैं जानने लगूँ कि मैं वही हूँ। [१]

तदेवाग्निस्, तदादित्यस्, तद् वायुस्, तदु चन्द्रमाः,
तदेव शुक्रं, तद् ब्रह्म, तदापस्, तत् प्रजापतिः ॥ २ ॥[1]

अनु०—वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही शुक्र (शुद्ध) है, वही ब्रह्म है, वही जल है, वही प्रजापति है। (२)

सि० अ०—वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही ग्रहोपग्रह है अर्थात् कुर्सी (देवासन)। वही हिरण्यगर्भ है, वही वरुण है अर्थात् जल का देवता, वही प्रजापति है अर्थात् समस्त सृष्टि का देवता। [२]

त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि, त्वं कुमार उत वा कुमारी,
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि, त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥ ३ ॥[2]

अनु०—तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू ही कुमार या कुमारी है, तू ही वृद्ध हो कर दण्ड के सहारे चलता है, तू ही [प्रपञ्चरूप से] उत्पन्न होने पर सर्वतोमुख (अथवा बहुरूप) हो जाता है। (३)

---

१ यजुर्वेद ३२.१ (किञ्चित् पाठभेद से)।
२ अथर्ववेद १.२८.७।

सि० अ०—इस के अनन्तर श्वेताश्वतर ने कहा—तू स्त्री है, तू पुरुष है, तू कुमार है, तू कुमारी है, तू ही वृद्ध हो कर दण्ड के सहारे मनुष्य को कुमार्ग पर डाल देता है।[1] तू ही आविर्भूत हो कर सर्वत्र प्रतिभात हो रहा है। [३]

नीलः पतङ्गो, हरितो, लोहिताक्षस्,
तडिद्गर्भ, ऋतवः, समुद्राः।
अनादिमत् त्वं, विभुत्वेन वर्तसे,
यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

अनु०—तू ही नीलवर्ण भ्रमर, हरितवर्ण, लाल आँखोंवाला, मेघ, [ग्रीष्मादि] ऋतु, और [सप्त] समुद्र है। तू अनादि है, सर्वत्र व्याप्त हो कर स्थित है, तथा तुझ ही से समस्त भुवन उत्पन्न हुए हैं। (४)

सि० अ०—श्याम वर्ण का पक्षी तू ही है, हरितवर्ण का पक्षी तू ही है, लाल आँखों वाला पक्षी तू ही है, बिजलियों वाला बादल तू ही है, छह ऋतुओं वाला तू ही है, समस्त समुद्र तू ही है, जिस का आदि नहीं है वह तू ही है, जिस का अन्त नहीं है वह तू ही है, समस्त लोक-लोकान्तर तेरे ही द्वारा आविर्भूत हुए हैं, और तेरा ही रूप हैं। [४]

अजामेकां, लोहितशुक्लकृष्णां,
वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते;
जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ ५ ॥[2]

अनु०—अपने अनुरूप बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करने वाली एक लोहित, शुक्ल, और कृष्ण वर्ण की अजा (बकरी—प्रकृति) को एक अज (बकरा—जीव)

---

१ 'मनुष्य को कुमार्ग पर डाल देता है', यह मूल फ़ारसी वाक्य 'मर्दुम रा ब-ग़लत मी अन्दाजी' का अनुवाद है। उपनिषद् का मूल वाक्य है 'दण्डेन वञ्चसि'। इस में जो 'वञ्चसि' क्रिया है उस ने दारा की वञ्चना कर दी है! 'वञ्च' धातु का अर्थ गमन करना भी होता है, और यहीं यहाँ अभिप्रेत है, ठगना या उन्मार्गगामी करना नहीं। अस्तु, इस मंत्र की शंकराचार्य ने टीका नहीं की है।

२ यहाँ तीनों वर्ण क्रमशः रजस्, सत्त्व, और तमस् के प्रतीक हैं। दो अजों में से एक है जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। यह मंत्र किञ्चित् पाठभेद से तैत्तिरीयारण्यक (१०.१०.५) में भी आता है।

सेवन करता हुआ भोगता है, [और एक] दूसरा अज उस भुक्तभोगा (भोगी हुई) को त्याग देता है। (५)

सि० अ०—माया तेरी ही इच्छा है, अनादि, अकेली। उस के तीन वर्ण हैं—अर्थात् लाल, श्वेत, और श्याम। तेरी इच्छा के तीन गुण हैं, जिस से भूतों में तीन गुण आविर्भूत हुए हैं। जीवात्मा नित्य है, अद्वैत है। माया जो तेरी इच्छा-शक्ति है उस से एक हो कर विद्यमान है। जीवात्मा ही परमात्मा हो जाता है जब ज्ञानी उस [माया] का भोग कर के उस से मुक्त हो जाते हैं। [५]

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया
समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ६ ॥[1]

अनु०—साथ-साथ रहने वाले दो पक्षी सखा एक ही वृक्ष का आश्रय कर के रहते हैं। उन में एक तो स्वादिष्ट पिप्पल (कर्मफल) का भोग करता है और दूसरा भोग न कर के केवल देखता रहता है। (६)

सि० अ०—दो पक्षी हैं जो पुरुष और उस के प्रतिबिम्ब के समान प्रतिभात होते हैं। उन में से प्रत्येक एक दूसरे का सखा है। वे एक ही शरीर-वृक्ष पर विराजमान हैं। उन में से जो प्रतिबिम्बस्वरूप है वह उस वृक्ष के फलस्वरूप कर्म-फल का उपभोग करता है, दूसरा उपभोग नहीं करता और द्रष्टा मात्र है। [६]

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो
अनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीश-
मस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ ७ ॥[2]

अनु०—[ईश्वर के साथ] एक ही वृक्ष से संलग्न जीव दीनता के कारण मोहित हो कर शोक करता है। वह जिस समय अपने से भिन्न आनन्द-स्वरूप ईश्वर और उस की महिमा को देखता है उस समय शोक-रहित हो जाता है। (७)

---

१ ऋग्वेद १.१६४.२०; मुण्डकोपनिषद् ३.१.१।

२ मुण्डकोपनिषद् ३.१.२।

इत्तरं केट्टु कचनुत्तरमुरचेय्ता-
नुत्तमकुलस्त्रीयां देवयानियोटप्पोळ् ९२
निर्म्मलगुणाकरे ! नीतिसम्मतवरे !
सन्मृदुकळेवरे ! सारस्यपारावारे ! ९३
कन्यकाजनवरे ! कामुकमनोहरे !
धन्ये ! सौजन्याधारे ! कोरकस्तनभरे ! ९४
बन्धुरतपोधरे ! बन्धूकसमाधरे
मन्धरविलोचने ! शीतांशुबिबानने ! ९५
हन्त नी चिन्तिच्चतिनन्तरं पॆरिकॆयु-
ण्टॆन्ततॆन्नुरचेय्यां पन्तॊक्कुमलयाळे । ९६
निन्नॆ आन् परिग्रहिच्चीटुकयॆन्नुळ्ळतुं
नन्नल्ल गुरुपुत्रियल्लो नी मनोहरे ! ९७
एतुमे दोषमिल्ल चॆय्तालुमॆन्नाळव-
ळेतुमे पऱयेण्टा चॆय्कयिल्लॆन्नु कचन् । ९८
निन्नॆप्पण्टसुरकळ् रण्टुमून्नूटे कॊन्ना-
रन्नु आनल्लो निन्नॆ जीविप्पिच्चतुमॆटो । ९९
अङ्ङनॆयुळ्ळोरॆन्नॆ निर्म्मूलं वॆटिकिल् आ-
नॆङ्ङनॆ पॊरुक्कुन्नु दुष्टत काट्टीटॊल्ला । १००

मेरे आभिजात्य (उच्च कुल), यौवन, रूप, लावण्य, विद्या, शोभा और हमारे पारस्परिक प्रेम का ध्यान करो"। इस प्रकार की बात सुनकर कच ने उस समय उत्तम कुल की कन्या देवयानी से कहा—८६-९२ "हे निर्मल गुणों की खान ! नैतिक स्त्रियों में श्रेष्ठ ! शुद्ध और कोमल शरीरवाली ! सरसता का समुद्र ! कन्यकाओं में श्रेष्ठ ! कामुकों का मन हरनेवाली ! धन्य ! सज्जनता का आधार ! सुमन-कटोरी के समान स्तन वाली ! सुन्दर तप करने वाली ! बन्धूक पुष्प के समान अधरवाली ! मन्थर लोचनवाली ! चन्द्र के समान मुखवाली ! हे कन्दुक समान स्तनवाली ! तुमने जो सोचा है वह वस्तुस्थिति से बहुत भिन्न है। सो मैं बतलादूँगा। तुम से विवाह करना, ठीक न होगा, तुम तो मेरे लिए गुरुपुत्री हो, न ?" (तब देवयानी ने कहा कि) विवाह करने में कोई दोष नहीं। तब कच ने कहा, "इसकी बात तक न करो, मैं नहीं करूँगा" तब देवयानी ने कहा, "जब पहले असुरों ने तुम्हें दो तीन बार मार डाला था तब तो मैंने ही तुम्हें जीवित करा दिया था। ९३-९९ ऐसी स्थिति में

दुष्टतयल्ला चॊल्वनॊट्टुमे केट्टालुं नी
मट्टोलुंमॊळियाळे धर्म्मत्तें निरूपिक्क ! । १०१
ऍन्ने नीयुण्टाक्कुवान् कारणमॆङ्किलिप्पो-
ळेन्नुटे मातावेन्नुं वन्नीटुमतुकॊण्टुम् । १०२
पिन्ने ञान् निन्टे तातन् तन्नुटे जठरत्तिल्
निन्नल्लो पिऱन्नतुमेन्नतु निरूपिच्चाल् १०३
ऍन्नुटे भगिनियाय् वन्नीटुं मनोरम्ये ! ।
ऒन्नुकॊण्टुमेयरुतिन्नु नी पऱञ्ञतु १०४
नन्नायिट्टनुग्रहिच्चीटुकॆन्नते वेण्टु ।
निन्नॆक्काण्मतिन्नु ञान् वैकात वन्नीटुवन् १०५
नामिरुवरुं कूटि कीडिच्चु वसिच्चतो
नामिरुवरुमुळ्ळकालत्तु मऱक्कुमो । १०६
खेदवुमटक्कि नी यात्रयुमयय्कणं
मोदेन पिताविनॆ शुश्रूषिच्चिरिक्कॆटो । १०७
ऍन्नितु बृहस्पति नन्दनन् पऱञ्ञप्पोळ्
कण्णुनीर्तूकिनिन्नु देवयानियुं चॊन्नाळ् । १०८
एऱियोरनुरागत्तोटु वन्नपेक्षिच्च-
नारितन्नभिमतं नल्कातपुरुषन्मार् १०९

अगर तुम मेरा निर्मूल त्याग करोगे तो मैं कैसे सह सकूँगी ? इसलिए दुष्टता मत दिखलाओ" । कच ने कहा "यह दुष्टता नहीं है । मेरा कहना ज़रा सुनलो ! हे मीठी बात कहनेवाली ! धर्म का भी ध्यान करो । अगर तुम मेरे जीने का कारण हो तो जान लो कि तुम मेरी माता हो गयीं । अगर तुम इस पर विचार करोगी कि तुम्हारे पिता के पेट से मेरा जन्म हुआ तो, मनोरमे ! तुम मेरी बहन हो जाती हो । इसलिए जो विवाह की बात तुमने कही वह किसी भी प्रकार संभव नहीं हो सकती है । मुझ पर अनुग्रह करो, यही अब रह गया है । तुम्हें देखने मैं जल्दी आजाऊँगा, हम दोनों जो खेलते हुए इतने दिनों तक सुख से रहे वह, जब तक हम दोनों जीवित रहेंगे, नहीं भुलाया जा सकता । १००-१०६ इसलिए खेद न करके मुझे बिदा दो और प्रमोद (प्रसन्नता) के साथ पिता की परिचर्या (सेवा) करती रहो" । जब बृहस्पति के पुत्र ने इस प्रकार कहा तब आँसू गिराती हुई देवयानी ने कहा, "सुना जाता है कि जो पुरुष स्त्री की बड़े अनुराग के साथ की गयी प्रार्थना को ठुकरा देते हैं वे घोर

घोरमां नरकत्तिल् वीळुवोरेन्नु केळ्प्पू ।
सारनाकिय निन्नोटेन्तिनु पऱयुन्नु ११०
पारातें वेटिञ्ञु नी दूरवे पोयीटुकिल्
पारितिलिरुन्नतु पोरुमेन्नते वेण्टु । १११
पारमायुळ्ळोरनुरागवात्सल्यादिकळ्
पारमार्त्थ्यवुमऱिञ्ञल्लो नीयिरिक्कुन्नु । ११२
आरवार्मुल पुणर्न्नीटुवान् निनक्कक-
तारिलिल्लभिरुचियेन्नु वन्नीटुन्नाकिल् ११३
आरूढतापमेल्लामारोटु पऱवू ञान्
चेरुवन् परलोकत्तिल्ल संशयमेतुम् । ११४
चारुतकलर्न्न नी धीरत कळञ्ञालुं
चारें वन्नालुमतिदूरे निल्लायक सखे ! ११५
चेरातोरवस्थ ञान् चोल्लुकयिल्लयल्लो
चेराय्वानवकाशमेन्ततु निनक्किप्पोळ् । ११६
सारसं विरियुन्न नेरत्तें पार्त्तु
पारातें मधुपानं चेय्तीटुं मधुपन्मार् । ११७
वैरस्यं कलर्न्नेवं पारुष्य वाक्कु केट्टु
सारस्यं पारमुळ्ळ गीष्पतिसुतन् चोन्नान् । ११८

नरक में गिर जाते हैं। तुम सारवान् हो, तुम से और क्या कहूँ ? तुम अगर जल्दी दूर चले जाओगे तो मुझे इस पृथिवी में और नहीं रहना है, बस इतना ही है। मेरा असीम अनुराग, वात्सल्य आदि का परमार्थ, तुम जानते ही हो। अगर मेरे सुन्दर स्तनों का आलिंगन करने की तुम्हारी कोई इच्छा ही न होगी तो मैं अपना चढ़ा हुआ दुःख किस से जाकर कहूँगी ? मैं परलोक में फिर तुम से मिलूँगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। १०७-११४ अपने इस चारुतावाले धैर्य को त्याग दो, और मेरे पास आजाओ, हे सखे ! इतना दूर तो न खड़े रहो। मैं कोई अनुचित स्थिति न प्रस्तुत करूँगी। मुझसे न मिलने का तुम्हारा क्या अधिकार है ? भ्रमर सरोज के खिलने का समय देखते रहते हैं और खिलने पर झट से मधुपान कर लेते हैं"। विरस (अरुचिपूर्ण) इन खरी-खरी बातों को सुनकर अत्यन्त सहृदय बृहस्पति के पुत्र ने कहा, "हे शुक्राचार्य की पुत्रि ! बाले ! आलस्य पैदा न होने दो। तुम वैदुष्यवाली हो, अपने मन का कालुष्य त्याग करो। स्त्रियों को यह न चाहिए कि वे पुरुषों की अधिक कामिनी (कामना करने वाली) हो जायँ। प्रेम ही के द्वारा सब का नाश हुआ है।

आलस्यमुण्टाकेण्ट वैदुष्यं कलर्न्न नी
कालुष्यं कळयेणं काव्यनन्दने बाले ! । ११९
कामिच्चीटरुतेरे नारिमार् पुरुषरे
प्रेमत्तालल्लो नाशमेल्लाक्कुं वन्नुकूटि । १२०
धर्म्मार्थकाममोक्षं नालिनुं विरोधङ्ङळ्
तम्मिल् वारातकण्टु साधिच्चुकोळ्केयावू । १२१
धर्म्मत्तेयुपेक्षिच्चोरर्थकामङ्ङळ् वेण्टा,
धर्म्मत्तेक्कोतिच्चर्त्थकामवुं कळयेण्टा । १२२
धर्म्मकामङ्ङळ् वेटिञ्ञर्त्थवुमुण्टाक्केण्टा,
धर्म्मार्त्थङ्ङळे वेटिञ्ञुळ्ळ कामवु वेण्टा । १२३
तङ्ङळिल् विरुद्धमायिरिक्कुमिव मून्नुं
मंगलशीले निन्नोटेन्तिनु पऱयुन्नु । १२४
धर्म्मत्ते साधिक्कुम्पोळर्त्थकामङ्ङळुं पोम्,
धर्म्मकामङ्ङळुं पोमर्त्थत्ते साधिक्कुम्पोळ् । १२५
कामत्ते साधिक्कुम्पोळर्त्थ धर्म्मङ्ङळुं पोम्,
कामिनियाय नीयुमितिनु पुऱप्पेट्टाल् । १२६
ईश्वरनेयुं गुरुवाकुं निन्नच्छनेयुं
शाश्वतमाय धर्म्मंतन्नेयुं पेटिक्कणम् । १२७
आनितु चेय्कयिल्ल पोयालुमकत्तिप्पोळ्
ज्ञानमो निन्नोळमिन्नार्क्कुमेयिल्लयल्लो । १२८

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों में जैसे विरोध न हो वैसे ही काम करना ठीक होगा । ११५-१२१ धर्म की उपेक्षा करके अर्थ और काम का सेवन न हो, और धर्म की लालसा में अर्थ और काम न खो जायँ । धर्म और काम को त्याग कर अर्थ न पैदा करना चाहिए । तथा धर्म और अर्थ से अलग होकर काम का सेवन न करो । ये तीनों आपस में विरुद्ध हैं, हे मंगलशीले ! तुमसे यह सब कहने की क्या ज़रूरत है ? धर्म को साधने में अर्थ और काम नष्ट हो जाते हैं, धर्म और काम अर्थ के साधन में नष्ट हो जाते हैं । अगर कामिनी होकर तुम काम के पीछे दौड़ोगी तो उसको साधने में अर्थ और धर्म नष्ट हो जायेंगे । ईश्वर से, अपने पिता से जो तुम्हारे गुरु हैं, और शाश्वत धर्म से डरना चाहिए । आज ज्ञान में तुम्हारे तुल्य कोई नहीं है, इसलिए मैं कुछ नहीं कहूँगा । अब तुम अन्दर चली जाओ" ।१२२-१२८ जब विद्वान् कच ने इस प्रकार उसकी बात का खण्डन करके कहा, तब देवयानी,

पण्डितनाय कचन् खण्डिच्चु पऱञ्ञप्पोळ्
कुण्डत्तिलाज्यं वीण कणक्के देवयानि १२९
कुण्डलमण्डितमां गण्डमण्डललस-
त्तुण्डवुं प्रचण्डमामुन्नतस्तनङ्ङळुं १३०
कण्णुनीर्कोण्टु ननच्चङ्गवुं वियर्त्तवळ्
कण्णुकळ् चुवप्पिच्चु देहवुं विऱप्पिच्चु १३१
चण्डदीधियुटे मण्डलं पोङ्ङुं पोले
चण्डिक महिषनेक्कण्टतुनेरंपोले १३२
तन्नुटे मनोरथं वाराञ्ञु कोपं पूण्टु
निन्नुटे विद्ययेल्लां निष्फलमाकयेन्ताळ् । १३३
मन्मथातुरयाय निन्नुटे शापमुण्टो
धर्म्मतल्परनायोरिनिक्किङ्ङेट्टीटुन्नु ? । १३४
ऍन्ने नी शपिच्चतु केट्टु ञान् पोकयिल्ल
निन्नेयुमिन्तु शपिच्चीटुवनेन्तु कचन् । १३५
निन्नुटे मनोरथमिन्तुतोट्टोरुनाळुं
वन्तुकूटाय्कयतुमेङ्ङनेयेन्तु केळ् नी । १३६
आरणरायुळ्ळोरुं मामुनिमारुं निन्ने-
यारुमे कैक्कोळ्ळाय्कयेन्तुर चेय्तु कचन् । १३७
विण्णवर्पुरं पुक्कु विद्ययुं पठिप्पिच्चान्
वन्नितानन्दं तन्टे तातनुं देवकळ्क्कुम् । १३८

कुण्डलों से भूषित अपने कपोलों के पास विराजमान नासिका को और प्रचण्ड तथा उन्नत स्तनों को आंसुओं से भिगोती हुई, पसीने से तर होकर, आंखें लाल करती हुई, उदीयमान सूर्यमण्डल के समान काँपती हुई, महिषासुर को देखती हुई चण्डिका के समान, अपने मनोरथ की पूर्ति न होने के कारण जिसमें घी डाला गया हो ऐसे अग्निकुण्ड के समान क्रुद्ध होकर बोली, "तुम्हारी सारी विद्या व्यर्थ हो जाय"। १२९-१३३ तब कच ने कहा, 'कामदेव के वश में आकर दिया हुआ तुम्हारा यह शाप मुझ धर्मतत्पर पर थोड़े ही लगेगा ? तुम्हारा शाप सुनकर मैं न चला जाऊँगा, तुमको भी मैं आज प्रतिशाप दूँगा। तुम्हारा मनोरथ कभी न पूरा होगा। क्यों ? यह भी सुन लो। न ब्राह्मणों में और न मुनियों में कोई तुम से विवाह करे"। यह कह कर कच देवों की पुरी चला गया और उसने अपनी विद्या औरों को पढ़ा दी। उसके पिता और देवगण बड़े प्रसन्न हुए।१३४-१३८

शर्म्मिष्ठयुटे दास्यम्

विण्णवरतुकालं पोरिनु कोप्पिट्टोक्के-
च्चेन्निनु वृषपर्व्वातन्नुटे राज्यत्तिङ्कल् । १
कोट्टतन्नुटे पुरत्तटुत्तु वलियोरु
काट्टिलुच्चेन्निरुन्नप्पोळक्काणगयितेल्लावक्कुं २
कण्टालेवयुं नल्ल कन्यकाजनमोक्क-
त्तण्टलर्पोय्कतन्निल्क्कळिच्चीटुन्नतेल्लां । ३
कण्डवार्कुळलिकळप्सरस्त्रीकळक्काळ्
कण्टाल् नल्लवरिङ्ङुमुण्टो मट्टेन्नु तोन्नी । ४
वस्त्रङ्ङळळिच्चतिन् तीरत्तु वच्चुकळ-
ञ्ञत्यन्तं मतिमरन्नङ्ङनें कुळिक्कुन्पोळ् ५
चूतसायकमेटु वासवनतु कण्टु
चूतुवार्मुलमारिल् कौतुकमुण्टाय्वन्नु । ६
काणणमिवरुटे मन्मथगृहमेल्लां
नाणिच्चु पोकुमल्लो नामङ्ङु चेल्लुन्नेरं ७
वायुवाय् चमञ्ञवन् पोय्कतन् करेच्चेन्नु
मायया पुटवकळ् वारियङ्ङोट्टिङ्ङोट्टु ८

शर्मिष्ठा का दास्य

उन दिनों देवगण युद्ध के लिए तैय्यारी करके वृषपर्वा[1] के राज्य में पहुँचा। वहाँ दुर्ग के निकट के एक बड़े वन में जब पहुँचा तब सब को, एक बड़े कमलसरोवर में खेलता हुआ, तथा देखने में बहुत अच्छा एक कन्याओं का समूह दिखला दिया। ऐसा प्रतीत हुआ कि अप्सराओं से भी देखने में अच्छी महिलाएँ यहाँ इनके अतिरिक्त क्या हो सकती है? जब वे कपड़े उतारकर, तट पर रखकर, तथा दुनिया को भूलकर स्नान करने लगीं तब कन्याओं को देखकर कामदेव के बाण से पीड़ित इन्द्र को बड़ा कौतूहल हुआ। १-६ (इन्द्र ने सोचा मैं) इनके मन्मथगृह देखना चाहता हूँ, यदि निकट जाऊँ तो सब लज्जित हो जायेंगी, इसलिये वायु बनकर सरोवर के पास जाकर अपनी माया से वस्त्रों को इधर उधर बिखराकर धूलिधूसर कर दिया। यह देखकर

१ दानवों का एक राजा और शर्मिष्ठा का पिता।

धूळिप्पिच्चतु कण्टु वेगत्तिल् कन्यकमा-
रोळत्तोटॊरुमिच्चु वेगत्तिल् करेरिनार् । ९
आरुमिल्लटुत्तॆन्नु कल्पिच्चुतन्नेयवर्
दूरप्पोयॊरु वस्त्रमोटिच्चॆन्नॆटुत्तप्पोळ् १०
कण्टिवार्कुळ्ळलारॆक्कण्टु कौतुकंपूण्टो-
रण्टर्नायकन्तानुमिण्टल्पूण्टितु तुलोम् । ११
पुण्डरीकेषु परवशमानसनाया-
खण्डलन्तानुं परिखण्डितधैर्यत्तोटु- १२
मित्तल्ला युद्धत्तिनु पोक नामॆन्नु पर-
ञ्ञिन्द्रादिदेवगणमात्ममन्दिरं पुक्कार् । १३
धूळियॆप्पिन्नेयॆङ्ङु काणाञ्ञनेरमवर्
कूळिकळ् काळियुमाय्पोकयॆन्नोर्त्तु भीत्या १४
तङ्ङळ्तङ्ङळ्क्कुळळॊरु वस्त्रङ्ङळॆटुत्तुकॊ-
ण्टङ्ङोट्टिङ्ङोट्टु नोक्कियुटुत्तीटुन्ननेरं । १५
सुन्दरि देवयानितन्नुटॆ पुटवयु-
मन्नेरमरियातॆ संभ्रमं कॊण्टु बलाल् १६
चॆन्नॆटुत्तुटुत्तितु शर्म्मिष्ठयतुकण्टु
निन्नॊरु देवयानि चॊल्लिनाळतुनेरम् । १७
ऍन्नुटॆ वस्त्रमल्लो नीयुटुत्ततुमॆटो
निन्नुटॆ वस्त्रमिता मट्टॆतु तन्नीटणं । १८

कन्याएँ घबड़ाकर झट से सब एक साथ तट पर निकल आयीं। यह समझकर कि निकट में कोई नहीं है जब वे दूर उड़े हुए वस्त्रों को बटोरने लगीं तब कन्याओं को देखकर कौतुक से भरा देवों का नायक इन्द्र बहुत पीड़ित हुआ। पुण्डरीकों को देख मोहित होकर आखण्डल (इन्द्र) अपना धैर्य खो बैठा और बोला—"हम लोग आज युद्ध के लिए न जायँ"। यह कहकर इन्द्र आदि अपने घर चले गये। ७-१३ जब धूल उड़ना बन्द हो गयी थी तब उन कन्याओं ने अपने साथी और परिचारकों के साथ चले जाना निश्चित करके अपने-अपने वस्त्रों को लेकर डर के मारे इधर-उधर देखती हुई पहनना प्रारम्भ किया। शर्मिष्ठा ने घबराहट के कारण बिना जाने सुन्दरी देवयानी के वस्त्र लेकर झट से पहन लिये। उसे देखती हुई देवयानी ने उस समय कहा—"जो वस्त्र तुम ने पहन लिये वे मेरे हैं। तुम्हारा यह है, इन्हें लेलो और दूसरे वापस करो"। जब शर्मिष्ठा

अॅन्नतु केट्टीलॅन्नु भाविच्चु शर्म्मिष्ठयुं
तन्नुटे सखिकळुमायू नट्टन्नीटुन्नेरं १९
पिन्नालें देवयानि चॅन्नाळितरुतल्लो
तन्नीटुकॅन्टे वस्त्रं मट्टु तरामल्लो । २०
अङ्ङळ्क्कु निङ्ङळुटे पुटवयुटुक्करु-
तिङ्ङु तन्नीटवेणमॅन्नतु केट्टनेरं २१
शर्म्मिष्ठ कोपत्तोटे चॊल्लनाळटङ्ङु नी
निन्महिमकळॅल्लां आनरिञ्ञरिक्कुन्नु । २२
अॅन्नुटे तातन्तन्टे कारुण्यमुण्टाकया-
लिन्नेटं अॅळियुन्तु नीयॅन्नतरिञ्ञालुम् । २३
नेरिय पुटवयुं कुरियुं कोप्पुमॅल्ला-
मेरे नी तिळय्किलो पोकेणं मरयत्तु । २४
वेणमॅन्नाकिलतुमुटुत्तु पोन्नीटु नी
आनिप्पोळितु विटुर्त्तीटुकयिल्लयॅन्नुं । २५
इत्तरमधिक्षेपिच्चॅवयुं भर्त्सिक्कया-
लुळ्त्तळिरिरुवक्कुं चीरियोरनन्तरं २६
दुष्टतपॅरिय शर्म्मिष्ठयुं सखिमारुं
पॅट्टन्नङ्ङॊरु पॊट्टक्किणट्टिल् तळ्ळियिट्टार् । २७
पुत्रियॅक्काणाञ्ञतिदुःखंपूण्टॊरु शुक्र-
नत्तल्पूण्टुरचॅय्तु धात्रियोटतुनेरम् । २८

अपनी सखियों के साथ चलने लगी, मानो उसने कुछ सुना ही न हो, तब देवयानी उसके पीछे-पीछे गयी और बोली—"यह ठीक नहीं, मेरा वस्त्र दे दो, दूसरा मैं वापस करूँगी। हम लोगों को तुम लोगों का वस्त्र पहनना नहीं चाहिए। इसलिए वापस करो"। यह सुनकर १४-२१ शर्मिष्ठा क्रुद्ध होकर बोली—"तुम दब जाओ। मैं तुम्हारा सब बड़प्पन जानती हूँ। मेरे पिता के कारुण्य (दया) के कारण ही तो तुम आज इतना घमंड दिखला रही हो, यह जान लो। अगर तुम अधिक जलोगी तो तुम्हारी एक महीन साड़ी, तिलक और सब सजावट नष्ट कर दूँगी। अगर भला चाहती हो तो उसी को पहन कर चली आओ। मैं तो अब इस वस्त्र को नहीं उतारूँगी"। जब इस प्रकार की अपमानजनक फटकार के कारण दोनों के हृदय कलुषित हो गये तब अतिदुष्टा शर्मिष्ठा और उसकी सखियों ने उसे झट से एक अन्धे कुएँ में ढकेल दिया। २२-२७

मुख नाहि देखिया कुपिल निशाचर ❋ श्रीरामे डाकिया तबे बलिछे उत्तर
राक्षस बलिछे, तुमि प्राणते कातर ❋ भय यदि कर, पलाइया जाह घर
राम बले, राक्षसा, कि इच्छिलि मरण ❋ एखनि पाठाब तोरे शमन-सदन
रामेर बचन शुनि कोपे निशाचर ❋ रथ चालाइया दिल रामेर गोचर
रामे देखिवारे बीर मेलिल लोचन ❋ राक्षस-सम्मुखे राम धरिला दर्पण
दर्पण-भितरे देखि आपनार आस्य ❋ निज-मुख देखिया आपनि हैल भस्म
भस्म ह'ये पड़े बेटा रथेर उपरे ❋ भस्माक्षेर पतने राक्षस धाय डरे
भस्माक्ष पड़िल यदि, राक्षसेर भङ्ग ❋ राक्षसेर भङ्ग देखि बानरेर रंग९३
भस्माक्षेर मृत्यु देखि राक्षस पलाय ❋ दूर हैते वीरबाहु देखिवारे पाय
कुपित हइया बीर चाहे घन-घन ❋ हाते धनु कहितेछे रावण-नन्दन
राक्षसेर भंग देख बानर हर्षित ❋ हस्तिपृष्ठे वीरबाहु चलिल त्वरित
श्वेतवर्ण हस्ती, जेन पर्व्वत-प्रमाण ❋ दुर्ज्जय दशन ऐरावतेर समान
हस्ति पृष्ठे नाना-अस्त्र मुषल-मुद्गर ❋ ऐरावत-'परे येन एल पुरन्दर
राक्षसेर भंग देखि रावण-नन्दन ❋ आश्वास-वचने सबे कहिछे तखन

भस्माक्ष-वीर ने जिसके मुख की ओर भी देखा उसका मुख नहीं दिखाई पड़ा, केवल दर्पण दिखाई पड़े। मुख न देख सकने से राक्षस बिगड़ खड़ा हुआ। श्रीराम को पुकार कर उसने कहा, तुम प्राणों के भय से कातर हो। यदि भयभीत हो तो भाग कर घर चले जाओ। राम ने कहा, हे राक्षस तुझे क्या मृत्यु की इच्छा है, अभी तुझे यम के घर भेज देता हूँ। राम के वाक्य सुनकर क्रोध से निशाचर ने राम के निकट रथ चला दिया। राम को देखने के लिए वीर ने आँख खोल दी। राक्षस के सम्मुख राम ने दर्पण रख दिया। दर्पण के भीतर अपना मुख देखकर वह स्वयं भस्म हो गया। भस्म होकर वह अभागा अपने ही रथ पर गिरा। भस्माक्ष के पतन से राक्षस डर कर भागने लगे। इस-प्रकार भस्माक्ष के पतन से राक्षसों में भगदड़ मच गई। राक्षसों की भगदड़ देखकर बन्दरों को आनन्द आ गया॥९३॥

भस्माक्ष की मृत्यु देखकर जब राक्षस भागने लगे तो उन्हें दूर से वीरबाहु ने देखा। क्रोध में आकर वीर उन्हें बार-बार देखने लगा। रावण-नन्दन वीरबाहु हाथ में धनुष लेकर कहने लगा। राक्षसों की भगदड़ देखकर वानर हर्षमग्न हैं। वीरबाहु हाथी की पीठ पर सवार हो तुरन्त चल पड़ा। श्वेतवर्ण का हाथी ऐसा था मानों पर्वत हो या अजेय दाँतों वाला ऐरावत हो। हाथी की पीठ पर मूसल, मुद्गर आदि विभिन्न अस्त्र लदे थे, ऐसा प्रतीत हुआ मानों ऐरावत पर सवार होकर स्वयं पुरन्दर आ गये हों। रावण-नन्दन ने राक्षसों की भगदड़ देखकर सभी को ढाढ़स बँधाया और कहा, हे राक्षसो,

ना पलाय राक्षस, संग्रामे एस फिरे * एखनि मारिब रणे नर ओ बानरे
वीरबाहु-वाक्ये फिरे निशाचरगण * पुनरपि एल रणे करिया तर्ज्जन
देखिया बानरगणे वीरबाहु बले *हस्ती चालाइया बीर दिल रणस्थले९४
वीरबाहु बले, कपि, दण्ड-दुइ थाक * बानर-कटके रणे देखाब बिपाक
चालाइया दिल हस्ती संग्राम-भितर * देखिया रुषिल रणे यतेक बानर
कोपेते अङ्गद-बीर बालिर नन्दन * घोर सिंहनाद करि करिछे तर्ज्जन
रुषिल राजार-बेटा, कार साध्य थाके * कपिगण संग्रामे चलिल एके-एके
नल-नील-कुमुद-सम्पाति-आदि करि * महेन्द्र देवेन्द्र आर सुषेण केसरी
गवाक्ष-शरभ-गय-द्विविद बानर * दीर्घाकार पर्व्वत-प्रमाण कलेवर
सुग्रीवेर सैन्य नड़े देखिते अपार * विंशति बानरे अङ्गदेर आगुसार
आगुदले अङ्गदेर हैल आगमन * राक्षसेर सने जाय करिवारे रण
योजन पर्व्वत दश निल से उपाड़ि * राक्षस-उपरे फेले अतिं ताड़ाताड़ि
सन्धान पूरिया वीरबाहु एड़े बाण * पर्व्वत काटिया बीर करे खान-खान
पाँचबाण हानिलेक अङ्गदेर बुके * पड़िल अंगद-बीर, रक्त उठे मुखे९५

भागो मत, संग्राम में लौट आओ। मैं अभी युद्ध में नर और वानरों का संहार करूँगा। वीरबाहु के कहने पर राक्षस फिर लौट कर आ गये और रणक्षेत्र में गरजने लगे। वानरों को देखकर वीर बीरबाहु ने रणभूमि में अपना हाथी आगे चला दिया ॥ २६४ ॥

वीरबाहु ने कहा, अरे दो घड़ी तो ठहर जाओ, आज मैं वानरों की सेना में विपत्ति ढा दूँगा। यह कहकर उसने रण-भूमि के भीतर अपना हाथी चला दिया। यह देखकर सारे वानर क्रोधित हो गये। क्रोध में आकर बाली का नन्दन वीर अँगद गर्जन-तर्जन करते हुए घोर सिंहनाद करने लगा। जब राजा बालि का बेटा अंगद रोष में आया तो फिर कौन ठहर सकता था। सभी वानर एक-एक कर युद्ध में आगे-आगे चलने लगे। नल, नील, कुमुद, सम्पाति, महेन्द्र, देवेन्द्र, और सुषेण, गवाक्ष, शरभ, गय, द्विविद नामक सभी प्रमुख वानर चल पड़े। पर्वत के समान वृहदाकार शरीर लिये हुए वे सब बानर चल पड़े। सुग्रीव की सेना देखने में अत्यन्त अपार लगती थी। अंगद का हरावल (अगला) दस्ता बीस वानरों का था। अग्रवर्त्ती दल के साथ अंगद का आगमन हुआ। राक्षस के साथ युद्ध करने के लिए अंगद चल पड़ा। उसने योजन भर लम्बे दस पर्वत उखाड़ लिये और उनको राक्षस पर फेंका। वीरबाहु ने निशाना साधकर बाण चलाया और पर्वतों को काट कर उसने खंड-खंड कर डाला। अंगद के सीने पर भी उसने पाँच बाण चला दिये। अंगद वीर गिर पड़ा और उसके मुख से खून निकलने लगा ॥ २६५ ॥

राजपुत्र रणे पड़े, देखे हनूमान् * शालगाछ उपाड़िल दिया एकटान
हस्तीर माथाते मारे दुहातिया बाड़ि * हस्तीर माथाय ठेके बृक्ष हैल गुँड़ि
बृक्ष-गोटा ब्यर्थ गेल, कोपे हनूमान * आर बृक्ष उपाड़िल दिया एकटान
उपाड़िया आने बृक्ष पञ्चाश-योजन * बृक्षेर छायाते ढाके रबिर किरण
एड़िलेक बृक्ष-गोटा धरि बाहुबले * करिया बिषम शब्द बृक्ष-गोटा चले
हस्तीर माथाय बृक्ष गुँड़ा ह'ये जाय * रुषिया दारुण हस्ती क्रोधभरे धाय
क्रोधभरे वीरबाहु एड़े दशबाण * बाण फुटि भूमिते पड़िल हनूमान९६
शराघाते हनूमान अचेतन हैल * नल-नील-कुमुदादि रणे प्रवेशिल
महेन्द्र देवेन्द्र आर सुषेण केशरी * नय-बीर जुझिवारे एल आगुसरि
नय-बीरे देखि तबे एड़े नय-शर * बिन्धिया बानरगणे करिल जर्ज्जर
दश-दश बाणे प्रति बानररे बिन्धे * बिन्धिल बानरगणे बसि गजस्कन्धे
गवाक्ष-शरभ-गय ओ गन्धमादन * बाणे अचेतन ह'ये पड़े पञ्चजन
बानर-कटक बिन्धे करि खान-खान * पलाय बानरगण लइया पराण२९७
धाइया बानर कहे श्रीरामेर ठाँइ * वीरबाहु-बाणे प्रभु, कारो रक्षा नाइ

हनुमान ने देखा, राजपुत्र युद्ध में गिर पड़ा। उसने झटके से एक शाल वृक्ष उखाड़ लिया। दोनों हाथों से उसने उसको पकड़कर हाथी के सिर पर दे मारा। हाथी के सिर से टकराकर वृक्ष खंड खंड हो गया। एक समूचा वृक्ष व्यर्थ गया तो कोप से हनुमान ने खींचकर एक दूसरा पेड़ उखाड़ लिया। वह वृक्ष इतना बड़ा था कि उसके पचास-योजन के घेरे में सूर्य की किरणें भी छिप गई थीं। बीहड़ शब्द करते हुए उसने समूचा वृक्ष हाथी के सिर पर दे मारा लेकिन वह भी हाथी के सिर से टकराकर सौ टुकड़े हो गया। तब गुस्से में बावला होकर हाथी दौड़ने लगा। क्रोध में आकर वीरबाहु ने दस बाण चला दिये तो बाणों से छिदकर हनुमान भूमि पर गिर पड़े ॥ २९६ ॥

जब बाणों के आघात से हनुमान अचेतन हो गया तब नल, नील, कुमुद आदि ने रण में प्रवेश किया। महेन्द्र, देवेन्द्र, सिंह सदृश सुषेण आदि नौ वीर युद्ध करने के लिए आगे बढ़ आए। नौ वीरों को देखकर उसने नौ बाण चलाये। उसने बाणों से छेद-छेद कर बानरों को व्याकुल कर डाला। हाथी के कन्धे पर बैठे वीरबाहु ने दस-दस बाण एक-एक बन्दर को मारे। गवाक्ष, शरभ, गय और गन्धमादन आदि पाँच बानर बाण की मार से अचेतन हो गिर गये। साध-साध कर एक-एक बानर को वह बाणों से मारने लगा और बानर अपने प्राण लेकर भागने लगे ॥ २९७ ॥

बानरों ने दौड़ कर श्रीराम से जाकर कहा, हे प्रभो, वीरबाहु के बाणों से किसी की भी रक्षा नहीं हो रही है। कालान्तक यम सा वह रणक्षेत्र में

कालान्तक यम जेन आसि करे रण * पड़ियाछे हनुमान-आदि कपिगण
कुम्भकर्ण-हाते सबे पेयेछे निस्तार * आजिकार रणे बुझि सबार संहार
एतेक रणेर कथा शुनि दाशरथि * चलिलेन रघुनाथ लक्ष्मण-संहति
राम पाछे चलिल सुग्रीव-बिभीषण * गाछ-पाथर हाते करि धाय कपिगण २९८
हस्तीर स्कन्धेते थाकि करिछे संग्राम * बिभीषणे जिज्ञासा करेन प्रभु राम
श्रीराम बलेन, शुन मित्र बिभीषण * कोन् वीर आसियाछे हस्ति-आरोहण
ऐरावत-सम गज अति-भयङ्कर * नाना-अस्त्र तुलियाछे गजेर उपर
प्रचण्ड धनुक-बाण, खरतर जाठा * पुरन्दर-सम गज-स्कन्धे एल केटा २९९
विभीषण बले, राम, कर अवधान * वीरबाहु-नाम धरे रावण-सन्तान
चित्राङ्गदा-नामे एक गन्धर्व्व-कुमारी * युद्ध जिनि रावण आनिल तारे हरि
ताहार गर्भेते जन्म, सुन्दर सुठाम * देव-द्विज-गुरु-भक्त, वीरबाहु नाम
चित्राङ्गदा जननी, रावण ओर बाप * नाम धरे वीरबाहु, दुर्ज्जय-प्रताप
कठोर तपस्या बीर करिल बिस्तार * तपेर कारण ब्रह्मा दिते एल वर
ब्रह्मा बले, हबे तोर संग्रामे बिजय * दिला एक हस्ती ऐरावतेर तनय
गजराज दिया ब्रह्मा बलिला बचन * ए-गजेर जीवनेते तोमार जीवन

आया है, हनुमान आदि कपि गिर गये हैं। कुम्भकर्ण के साथ युद्ध में तो हमलोग बच गये किन्तु लगता है आज के युद्ध में सभी का संहार हो जायगा। रण के सम्बन्ध में यह सारी बातें सुनने के बाद दशरथ-तनय श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण के साथ चल पड़े। श्रीराम के पीछे-पीछे सुग्रीव और विभीषण भी चले तथा पेड़-पत्थर हाथ में लिये वानर भी दौड़ पड़े ॥ २९८ ॥

वीरबाहु हाथी के कन्धे पर बैठा युद्ध कर रहा है यह देखकर प्रभु राम ने विभीषण से पूछा, क्यों मित्र विभीषण, आज हाथी के कन्धों पर सवार यह कौन सा वीर आ गया है। यह गज ऐरावत सा अति-भयंकर है और गज पर विभिन्न अस्त्र-शस्त्र भी लदे हुए हैं। प्रचंड धनुष-बाण और खरधार वाला जाठा भी है। यह पुरन्दर के समान हाथी पर सवार होकर कौन आ गया ॥ २९९ ॥

विभीषण ने कहा, हे राम ध्यान से सुनें। यह रावण की सन्तान है, इसका नाम वीरबाहु है। चित्रांगदा नामक एक गन्धर्व-कुमारी थी जिसका हरण रावण ने युद्ध जीतकर किया था। उसी के गर्भ से इस सुन्दर सुडौल पुरुष का जन्म हुआ है, यह देव-द्विज-गुरु का भक्त है, इसका नाम है वीरबाहु। चित्रांगदा इसकी जननी है और रावण इसका जनक है। महा-प्रतापी इस वीर का नाम वीरबाहु है। इस वीर ने बड़ी कठोर तपस्या की। तपस्या के कारण ब्रह्मा इसको वर देने आए। ब्रह्मा ने कहा, संग्राम में तेरी-विजय होगी और यह कहकर ऐरावत के तनय के समान एक गज इसे दे

शुनि वीरबाहु बले, निश्चय मरण ❋ युद्धे मरि पाइ येन देव-नारायण
ब्रह्मा बले, नररूपी हबे नारायण ❋ इच्छासुखे ताँर हस्ते लभिबे मरण
सेइ वीरबाहु एइ दुर्ज्जय-शरीर ❋ वीरबाहु-तेजे रणे केह नहे स्थिर
वीरबाहु जिनिले रावण-राजे जिनि ❋ समुद्र तरिले येन गोष्यदेर पानि
वीरबाहु इन्द्रजित् बिना नाहि आर ❋ इहारा मरिले हबे रावण-संहार
श्रीराम बलेन, मित्र, भरसा तोमार ❋ तव उपदेशे हैल सबार संहार३०७
राम-बिभीषणे एइ कथोपकथन ❋ डाक दिया कहितेछे रावण-नन्दन
वीरबाहु बले, शुन श्रीराम-लक्ष्मण ❋ आमा-सने तोमरा जुझिबे कोन जन
राम बले, तोमाते आमाते आजि रण ❋ आजिकार युद्धे तव बधिब जीवन
बानर-कटक सब हओ एकभित ❋ दु'जने करिब युद्ध जेमन प्रमित
एत शुनि वीरबाहु करिछे समर ❋ माथाय टोपर वीर हाते धनुःशर
गजस्कन्धे थाकि वीर नेहाले श्रीराम ❋ कपटे मनुष्य-देह दूर्व्वादल श्याम
चाँचर-चिकुर शोभे चौरस कपाल ❋ प्रसन्न-शरीर वीर परम-दयाल
ध्वज-वज्राकुश चिह्न अति मनोहर ❋ भुवन-मोहन रूप श्यामल-सुन्दर

दिया। गजराज देकर ब्रह्मा ने कहा, इसी गज के प्राणों में तुम्हारा प्राण छिपा है। यह सुनकर वीरबाहु ने कहा, मृत्यु तो निश्चय ही होगी। ऐसा करें कि युद्ध में मर कर मैं देव-नारायण को प्राप्त कर सकूँ। ब्रह्मा ने कहा, नारायण नर का रूप लेकर आएँगे, तब तुम अपनी खुशी से उन्हीं के हाथों अपनी मृत्यु प्राप्त कर लेना। यह वही दुर्जय-शरीर वाला वीरबाहु है। वीरबाहु के प्रताप से कोई भी रण में स्थिर नहीं है। वीरबाहु को जीत लो तो रावण को जीतना मानों समुद्र को तरने के बाद गड़ही-गुच्चे में भरे पानी को पार करना है। वीरबाहु और इन्द्रजीत के अतिरिक्त अब और कोई न रहा। इसके मरने के बाद ही रावण का संहार होगा। श्रीराम ने कहा, मित्र अब तुम्हारा ही भरोसा है, तुम्हारे परामर्श से ही सभी का संहार हुआ है॥ ३०७॥

राम और विभीषण में ऐसा सम्भाषण चल रहा था कि रावण-नन्दन वीरबाहु ने पुकार कर कहा, हे श्रीराम लक्ष्मण! तुम दोनों में कौन मेरे साथ लड़ेगा। राम ने कहा, आज तुम्हारी हमारी लड़ाई है। आज के युद्ध में मैं तुम्हारा प्राण-संहार करूँगा। सारी वानर-सेना एक ओर हो जाय। जैसी प्रथा है हम दोनों अकेले युद्ध करेंगे। इतना सुनकर सिर पर मुकुट पहने और हाथों में धनुष-बाण लिये वीरबाहु युद्ध करने लगा। गज के कंधों पर बैठे उस वीर ने श्रीराम को निहारा। छल से मनुष्य का शरीर धारण किये वे दूर्वा-दल सरीखे साँवले हैं, सिर पर काले-काले केश शोभायमान हैं और माथा चौड़ा है। वे परम-दयालु, वीर शरीर, परम-प्रसन्न हैं। जिनके

रामेर हातेर धनु विचित्र-गठन ❋ सकल शरीरे देखे विष्णुर लक्षण
नारायण-रूप देखे रावण-कुमार ❋ निश्चय जानिल राम विष्णु-अवतार
हातेर धनुक-खान भूमिते फेलाये ❋ गज हैते नामि कहे विनय करिये
धरणी लोटाये रहे जुड़ि दुइ कर ❋ अकिञ्चन कर दया राम-रघुवर
प्रणमामि रामचन्द्र संसारेर सार ❋ सत्यवादी जितेन्द्रिय विष्णु-अवतार
अनादि-अनन्त तुमि पुरुष-प्रधान ❋ नाशिते अजेय अरि शमन-समान
पुरुष-प्रकृति तुमि, तुमि चराचर ❋ तोमार एकांश ब्रह्मा विष्णु महेश्वर
अनाथेर नाथ तुमि संसार-तारण ❋ सुरासुर तुमि सृष्टि-संहार-कारण
बहु स्तुति करि बले रावण-नन्दन ❋ अनुक्षण जपे ध्याने देव-त्रिलोचन
साम-ऋक्-यजु ओ अथर्व्व तोमा हैते ❋ असीम महिमा-गुण नारि सीमा दिते
हेन पादपद्म देखिलाम अनायासे ❋ परिपूर्ण हैल एवे मम अभिलाषे
तव पादपद्मे जेवा नाहि मागे वर ❋ बृथाय जीवन तार अवनी-भितर
आपनि क'रेछ बिधि, ना हय खण्डन ❋ ओ पद-स्मरणे हय पाप-विमोचन
ए भव-संसार देखि अकुल पाथार ❋ राम-नाम-तरणी करिये हब पार

चरणों पर ध्वज-वज्रांकुश के चिह्न सुशोभित हो रहे हैं। साँवले-सलोने राम का रूप भुवन-मोहक है। राम के हाथ के धनुष का गठन भी विचित्र है। वीरबाहु ने राम के सारे अंगों पर विष्णु के लक्षण देखे। रावण-कुमार वीरबाहु ने नारायण रूप देखकर निश्चय रूप से जान लिया कि राम विष्णु के अवतार हैं। तब हाथ का धनुष धरती पर फेंक कर वह विनय-पूर्वक गज से उतरा। धरती पर लोटकर उसने दोनों हाथ जोड़ लिये और कहने लगा हे राम रघुवर, इस तुच्छ व्यक्ति पर दया करो। हे रामचन्द्र, तुम संसार के सार हो, जितेन्द्रिय हो, तुम विष्णु के अवतार हो, तुम अनादि-अनन्त हो, तुम प्रधान पुरुष हो। अजेय शत्रु के विनाश में तुम यमराज के समान हो। तुम्हीं पुरुष व प्रकृति हो, तुम्हीं चराचर हो। तुम्हारा ही एकांश ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हैं। तुम अनाथों के नाथ हो, तुम्हीं संसार के त्राता हो। तुम्हीं सृष्टि और संहार के निमित्त सुरासुर हो। इस प्रकार रावण-नन्दन भूरि-भूरि स्तुति करता हुआ बोला, देव-त्रिलोचन तुम्हारा ध्यान अनुक्षण करते रहते हैं। तुम्हीं से साम, ऋक्, यजु और अथर्व वेदों का जन्म हुआ है। तुम्हारे असीम गुणों की महिमा का मैं वर्णन नहीं कर सकता। ऐसे भगवान् राम के चरण-कमल मैंने अनायास देख लिये, अब मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई। तुम्हारे चरण-कमलों से जो वर नहीं माँगता उसका जन्म इस संसार में व्यर्थ ही है। तुमने स्वयं यह विधि बनाई है, अब यह खंडित नहीं हो सकती। इन चरणों के ध्यान मात्र से सारे पाप धुल जाते हैं। यह संसार अकूल समुद्र सा है, राम-नाम की नाव लेकर मैं

तुमि नारायण-धर्म्म ब्रह्म-सनातन * राक्षस-विनाशकारी भुवन-मोहन
उत्पत्ति प्रलय तुमि अचिन्त्य-रतन * तोमारे चिनिते प्रभु पारे कोन् जन
अधम राक्षस आमि, बड़इ पापिष्ठ * ए दुःखे तारिते प्रभु, तुमि महा इष्ट
चिरदिन महापाप क'रेछि अपार * वैष्णव-अस्त्रेते मोरे कर हे संहार३०१
एतेक बलिया यदि रावण-नन्दन * रण त्यजि रघुनाथ बसिला तखन
राम बले, देखिलाम तव ब्यवहार * तोमा बध करा नहे उचित आमार
जाउक जानकी, मोर राज्य जाक् ब'ये * पुनः बने जाइ आमि तोरे लङ्का दिये
वीरबाहु बले हे गोंसाइ परिहार * तुमि जारे दया कर, लङ्का तार छार
अनन्त-ब्रह्माण्ड प्रभु तोमार शरीरे * क्षुद्र लंकापुरी दिया भाण्डिबे आमारे
लंका दिया रघुनाथ भाण्डिते आमारे * ना पारिबे कदाचन एइ दुराचारे३०२
एतेक बलिल जदि रावण-नन्दन * मने मने भावे निज मरण तखन
तुमि ना मारिले मोर ना हबे उद्धार * दया क'रे करह आमार प्रतिकार
रण क'रे पड़ि यदि प्रभु तव बाणे * विष्णुदूते ल'ये जाबे वैकुण्ठे-भुवने
जाहा लागि मुनि ऋषि नाना तीर्थे फिरे * जाहा लागि साधु-जन नाना यज्ञ करे
अनायासे पाब आमि सेइ गुणनिधि * बिना जाति-ब्यवहारे नहे कार्य सिद्धि३०३

इसको पार करूँगा। तुम नारायण हो, ब्रह्म हो, सनातन धर्म हो। तुम्हीं राक्षस-विनाशकारी भुवन-मोहन हो। तुम्हीं उत्पत्ति हो और तुम्हीं प्रलय हो। तुम जैसे अचिंत्य रत्न को कौन पहचान सकता है। मैं अधम राक्षस हूँ, महापापी हूँ, मेरा दुख दूर करने में तुम्हीं सहायक हो। चिरकाल से मैं महापाप करता आया हूँ तुम मेरा वध वष्णव-अस्त्र से करो ॥ ३०१ ॥

जब रावण-नन्दन ने यह सब कह डाला तो रघुनाथ रण त्याग कर अलग बैठ गये। राम ने कहा, मैंने तुम्हारा आचरण देख लिया, तुम्हारा वध करना मेरे लिए उचित नहीं होगा। जानकी गई तो गई, राज्य भी मेरा गया तो जाने दो, तुझको लंका प्रदान कर फिर मैं वन में लौट जाऊँगा। वीरबाहु ने कहा, हे स्वामी छोड़ो भी, तुम जिस पर दया करते हो उसके लिए लंका बहुत ही तुच्छ है। हे प्रभु, तुम्हारे शरीर में अनन्त ब्रह्मांड हैं, क्षुद्र लंकापुरी देकर तुम मुझको बहकाओगे। हे रघुनाथ, इस दुराचारी को तुम लंका देकर कभी बहका नहीं सकोगे ॥ ३०२ ॥

रावण-नन्दन यह कह कर मन ही मन सोचने लगा कि मेरी मृत्यु कैसे होगी। वह राम से बोला तुम अगर मुझे नहीं मारते तो मेरा उद्धार नहीं होगा। कृपया मेरा उपकार करो। युद्ध करते हुए अगर तुम्हारे बाणों से मैं गिरा तो विष्णुदूत मुझको वैकुंठ-भुवन में ले जायँगे। जिसके निमित्त ऋषि-मुनि तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं, जिसके निमित्त साधु-संन्यासी विभिन्न यज्ञ करते रहते हैं, हे गुणनिधि, मुझको वही परम पद अनायास प्राप्त हो जायगा। बिना जाति-व्यवहार के काम बनता दिखाई नहीं देता ॥ ३०३ ॥

एतेक भाविया मने रावण-कुमार * एक लाफ दिया उठे गजे आपनार
प्रचण्ड धनुक छिल गजेर उपरे * दृढ़मुष्टि अस्त्र ल'ये बिन्धे रघुबीरे
हेदे रे तपस्वी बेटा, भण्ड वनचारी * मरण एड़ाते चाह क'रे भारिभूरि
कालसर्प-सम अस्त्र देखह सर्व्वथा * लब शोध, यत दुःख पाय मम पिता
मम इष्टदेवे आमि करि जे स्तवन * तुमि मने करेछ आपनि नारायण ३०४
कैल वीरबाहु यदि दुरक्षर बाणी * क्रोधते हइला राम ज्वलन्त आगुनि
सत्त्वगुण तमोगुण बड़इ बिषम * क्रोधते हइला राम कालान्तक यम
मार मार बलि राम जुड़िलेन बाण * हासिया धनुक धरे रावण-सन्तान
दुइ जने लागिल बाणेर हानाहानि * उठिल आकाशे बाण शब्द-ठनठनि
बाणे बाणे काटाकाटि उठिल आगुनि * स्वर्गेते देवता काँपे असम्भव गणि
दूरे थाकि देखे कपि उभयेर रण * बाणेर बिषम शब्द उठिल गगन
दुइ जने काटाकाटि हैल बाणे बाणे * दु'जनार उपरेते दुइ जने हाने
अग्निबाण वीरबाहु जुड़िल धनुके * वज्रसम आसे बाण रामेर सम्मुखे
अग्निबाण करे वीर अग्नि-अवतार * वरुण-बाणेते राम करेन संहार
महाकोपे वीरबाहु एड़े दश-बाण * श्रीरामेर बुके फुटे वज्रेर समान

ऐसा सोचकर रावण-कुमार एक छलांग में उचक कर अपने गज पर बैठ गया। उसके गज पर प्रचंड धनुष रखा था। उसको अपनी दृढ़ मुट्ठियों में लेकर वह रघुनाथ को बींधने लगा। क्यों रे अभागे तपस्वी, कपटी वनवासी, तू बात बनाकर अपनी मृत्यु से बच जाना चाहता है। यह काल-सर्प जैसा मेरा अस्त्र देखो। मेरे पिता जितना क्लेश भोग रहे हैं मैं उसका सब बदला लूँगा। मैं अपने इष्टदेव की स्तुति कर रहा हूँ और तुम सोच रहे हो कि तुम खुद ही नारायण बन गये॥ ३०४॥

वीरबाहु ने जब ये कुबोल बोले तो क्रोध से राम आग की भाँति तमतमा उठे। सत्वगुण वाले व्यक्ति में तमोगुण का प्रवेश बड़ा ही भयंकर होता है। क्रोध से राम कालान्तक यम के समान बन गये। मार-मार शब्द करते हुए राम ने बाण साधा तो रावण-सन्तान ने हँसकर धनुष उठा लिया। दोनों के बाणों की मुठभेड़ हुई, आकाश मार्ग पर बाण ठनाठन शब्द करने लगे। बाणों से बाण टकराकर चिनगारियाँ निकलने लगीं। स्वर्ग के देवता इसको असम्भव युद्ध मान कर काँप उठे। दूर रहकर कपियों ने दोनों का रण देखा। बाणों का भीषण शब्द गगन में गूँजने लगा। दोनों के बाण एक दूसरे की काट करने लगे। वीरबाहु ने अपने धनुष पर अग्निबाण चढ़ाया जो कि वज्र के समान राम के सम्मुख आ पहुँचा। अग्निबाण से वीरों ने चारों ओर आग ही आग फैला दी। राम ने वरुण बाण से उसका संहार किया। तब कुपित होकर वीरबाहु ने दस बाण चला दिये।

'हम उनके प्रति यों विमुग्ध हैं', 'वे हम पर देते हैं जान'—
यों कहना, मित्रता रसातल पहुँचाना[1] —ये एक समान ॥ १० ॥

'ये मेरे लिए यों हैं', 'मैं इनके लिए यों हूँ', यों उपचार-मात्र के लिए भी बोला जाये तो मैत्री तिनके की तरह (मूल्यहीन) हो जाती है। (मैत्री में 'ये, मैं' इतना अंतर भी नहीं होना चाहिये।) ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ८०
नट्पु आराय्दल् (मित्रता की परख)

नाडादु नट्टलिर् केडु इल्लै; नट्टपिन्
वीडु इल्लै नट्पाळ् पवर्क्कु ॥ १ ॥

नहीं मित्रता के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना आसान[2]।
विन परखे इसलिए मित्रता कर लेना है हानि महान् ॥ १ ॥

मैत्री का समादर करनेवालों के लिए, किसी से एक बार मैत्री हो जाने के बाद, फिर उससे छुटकारा नहीं है (मित्रता नित्य छोड़ने-पकड़ने की वस्तु नहीं है); इसलिए बिना परखे मैत्री करने जैसा कोई हानिकर कार्य नहीं है ॥ १ ॥

आय्न्दाय्न्दु कौळ्ळादान् केण्मै कडैमुऱै
तान्जाम् तुयरम् तरुम् ॥ २ ॥

भली भाँति विन कसे कसौटी पर मित्रता अगर ली ठान।
संघातक मित्रता अन्ततः ऐसी सदा दुःख की खान ॥ २ ॥

विविध प्रकार से परीक्षा करके जो मैत्री स्थापित नहीं की गई है, वह अंततोगत्वा स्वयं के लिए घातक एवं दुःख और विनाश का कारण बनती है। (शत्रु का कार्य, ऐसी मैत्री ही कर डालती है।) ॥ २ ॥

कुणनुम् कुडिमैयुम् कुट्ऱमुम् कुन्ऱा
इनन्नुम् अऱिन्दियाक्क नट्पु ॥ ३ ॥

परम्परा-कुल, संगी-साथी, गुण-दोषों पर रखकर ध्यान।
जान-परख कर मित्र बनाओ, अच्छा-बुरा व्यक्ति पहचान ॥ ३ ॥

गुण, कुल, दोष, और उसके सम्बन्धियों के स्वभाव को जान-परखकर ही किसी से मैत्री करनी चाहिये ॥ ३ ॥

कुडिप्पिऱन्दु तन्कण् पळिनाणु वानैक्
कौडुत्तुम् कौळल्वेण्डुम् नट्पु ॥ ४ ॥

---

१ मित्रता को तुच्छ और निन्द्य बनाना २ सरल।

दुर्गुणहीन सुकुल में[1] जन्मा, भूल-चूक पर आती ग्लान[2]।
किसी मूल्य पर करो मित्रता, यह सुमित्र की है पहचान ॥ ४ ॥

उच्च कुल में जन्म लिये हुए (इसलिए प्रयत्नपूर्वक बुरे कर्म से बचने वाले) और (यदि बुरे काम हाथ से हो ही गये तो) बदनामी से लज्जित होनेवाले की मैत्री कोई भी मूल्य देकर प्राप्त करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अळच्चॊल्लि अल्लदु इडित्तु वळक्करिय
वल्लार्नट्पु आय्न्दु कॊळल् ॥ ५ ॥

बुरे काम पर डाँट-डपट, लज्जित कर तुम्हें दिखावे राह।
व्यवहारिक[3] अनुभवी व्यक्ति को चुनो मित्र, यह सही सलाह ॥ ५ ॥

गलत कार्य करने पर जो झिड़क कर तुमको (रुलाकर) रोके, और (अगर गलत कार्य हाथ से हो ही गया तो) अनुताप दिलाकर (भविष्य में ऐसे काम करने से) तुमको रोके, इस तरह जगत् के व्यवहार को समझने-वाले व्यक्ति को परख कर उसकी मैत्री प्राप्त करनी चाहिये ॥ ५ ॥

केट्टिनुम् उण्डोर् उरुदि; किळैअरै
नीट्टि अळप्पदोर् कोल् ॥ ६ ॥

है विपत्ति भी देन ईश की, कभी विपति भी है वरदान।
कितना कौन सुहृद है, विपदा में खुलता इसका परिमान[4] ॥ ६ ॥

विपत्ति में भी एक प्रकार की अच्छाई है। वह विपत्ति मित्रों के स्वभाव-रूपी खेत के संपूर्ण विस्तार को नापने का मापदंड बन जाती है। (इस कुरळ् का भाव 'रहिमन विपदा हू भली जो थोरे दिन होय' जैसा है। और भी—'आपतिकाल परखिये चारी। धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी॥' —ये चारो ही 'मित्र' की संज्ञा में आते हैं।) ॥ ६ ॥

ऊदियम् ऍन्बदु ऑरुवर्कुप् पेदैयार्
केण्मै ऑरीइ विडल् ॥ ७ ॥

मूर्खजनों की दैवयोग से अगर मित्रता जाये छूट।
गया नहीं भर पाया सब कुछ, हानि नहीं यह लाभ अटूट[5] ॥ ७ ॥

किसी व्यक्ति के लिए यह (यथार्थ) लाभ-प्राप्ति ही है कि मूर्खों की मैत्री से छुटकारा प्राप्त कर ले ॥ ७ ॥

उळ्ळर्क उळ्ळम् शिरुकुव; कॊळ्ळर्क
अल्लर्कण् आट्ररुप्पार् नट्पु ॥ ८ ॥

---

१ पवित्र आचरण पर चलनेवाले परिवार में २ लज्जा, पछतावा ३ जगत्-व्यवहार को जाननेवाला, व्यवहारकुशल ४ परिमाण, मान ५ स्थायी।

त्याग विचारों का समुचित, जो करते हत[1] मन का उत्साह।
त्याग सर्वथा उचित मित्र का, जो संकट में त्यागे बाँह[2] ॥ ८ ॥

जिस प्रकार उत्साह को कुंठित करनेवाली बातों का मन में विचार तक नहीं लाना चाहिये, उसी प्रकार संकट आने पर साथ छोड़ देनेवालों की मैत्री भी त्याग देनी चाहिये ॥ ८ ॥

कॆडुङ्कालैक् कैविडुवार् केण्मै अडुङ्कालै
उळ्ळिनुम् उळ्ळम् शुडुम् ॥ ९ ॥

संकट में जो साथ छोड़ दे, ऐसे प्रियजन का व्यवहार।
मरनकाल तक नहीं बिसरता[3], मन पर करता सदा प्रहार ॥ ९ ॥

विपत्ति में हाथ (साथ) छोड़ देनेवालों की (पूर्व की) मैत्री की याद, मरण-काल तक मन को ताप देती रहेगी; (वह कभी भूलती नहीं।) ॥ ९ ॥

मरुवुह माशट्रार् केण्मै; ऑन्ऱीत्तुम्
ऑरुवुह ऑप्पिलार् नट्पु ॥ १० ॥

सज्जन की मित्रता मुनासिब[4], सज्जन का समुचित[4] सत्संग।
ले-देकर भी पिण्ड छुड़ाओ तजो सदा दुर्जन का संग ॥ १० ॥

निर्मल चरित्रवालों की मैत्री प्राप्त करनी चाहिये; अयोग्य व्यक्ति की मैत्री कुछ देकर भी छोड़ देनी चाहिये। (अयोग्य व्यक्ति की मैत्री छोड़ देने के लिए कुछ मूल्य भी चुकाना पड़े तो भी उसका त्याग लाभदायक है।) ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ८१
पळैमै (चिर-मैत्री)

पळैमै ऍऩप्पडुवदु यादॆऩिऩ् यादुम्
किळमैयैक् कीळ्ऩ्दिडा नट्पु ॥ १ ॥

दृढ़ मित्रता पुरानी में, आपस में नेहपूर्ण अधिकार[5]।
क्षति[6] पर भी, न मित्र के मन में, चुभता[7] कभी मित्र-व्यापार[8] ॥ १ ॥

---

१ भंग करते, तोड़ते २ साथ छोड़ दें ३ भूलता ४ ठीक, उचित है ५ कर्तव्य को मनमाना निबाहना ६ हानि, अनिष्ट ७ खटकता है ८ मित्र का काम, भले ही उससे हानि हो गई हो।

चिरमैत्री (का लक्षण) किसे कहा जाये' यों प्रश्न उठे तो उत्तर यही है कि मित्र अपना अधिकार समझकर कोई कार्य (चाहे गलत ही सही) कर जाये तो उसका तिरस्कार न किया जाये ॥ १ ॥

नट्पिर् कुरुप्पुक् कॆळुतहैमै; मट्र्दर्कु
उप्पादल् शान्र्रोर् कडन् ॥ २ ॥

मित्र वही तो अन्तरंग हैं! एक दूसरे पर अधिकार।
भला-बुरा व्यवहार परस्पर, निर्विकार[1] मन, सब स्वीकार ॥ २ ॥

मित्र का अधिकारपूर्वक कोई काम करना मैत्री का अंग है; और दूसरा उसे आनन्दपूर्वक स्वीकार करे, यह उसकी बुद्धिमत्ता और कर्तव्य है ॥ २ ॥

पळ्हिय नट्पॆवन् शॆय्युम् कॆळुतहैमै
शॆय्दाङ्गु अमैयाक् कडै ॥ ३ ॥

अगर मित्र की करनी को, हम समझ न पाये अपना काम।
तो कैसी मित्रता पुरानी, नाम मित्रता का बदनाम ॥ ३ ॥

मित्र द्वारा अपना अधिकार समझकर उसके द्वारा किये गये काम का उत्तरदायित्व उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार किया जाना चाहिये, मानो वह स्वयं अपना ही किया हुआ काम है। अन्यथा फिर सच्ची मैत्री की चिरकालिकता का प्रयोजन ही क्या रह जाता है? ॥ ३ ॥

विळैतहैयान् वेण्डि यिरुप्पर् कॆळुतहैयार्
केळादु नट्टार् शॆयिन् ॥ ४ ॥

मित्र मित्रता के नाते, प्रतिकूल अगर कर बैठे कार्य।
'हमने स्वयं किया', यह सनझें, हो सहर्ष हमको स्वीकार्य[2] ॥ ४ ॥

मित्र यदि बिना पूछे ही कोई कार्य कर डालता है, तो बुद्धिमान् जन उसके पीछे की अधिकार-भावना को समझकर उस (भावना) की प्रशंसा कर, उस कार्य की भी प्रशंसा कर, उसे स्वीकार करते हैं ॥ ४ ॥

पेदैमै ऒन्र्रो पॆरुङ्किळमै ऎन्रुणर्ह
नोदक्क नट्टार् शॆयिन् ॥ ५ ॥

भूल मित्र की यदि पीड़ा पहुँचाये तो हम रहें उदार।
अनजाने[3], या अति सनेह में, मित्र भूल का हुआ शिकार ॥ ५ ॥

मित्र यदि अवांछनीय पीड़ादायक कार्य कर बैठे तो उसे उसका अज्ञान अथवा अति आत्मीयता के फलस्वरूप असावधानी मान लेना चाहिये ॥ ५ ॥

---

१ मन में बिना मैल लाये २ स्वीकार ३ अज्ञान में।

ऎल्लैक्कण् निन्ऱार् तुऱवार् तॊलैविडत्तुम्
तॊल्लैक्कण् निन्ऱार् तॊडर्पु ॥ ६ ॥

यही मित्रता का गौरव है, अगर मित्र से पहुँचे त्रास।
कर उपेक्षा[1], शिथिल न होने देते कभी मित्रता-पाश[2] ॥ ६ ॥

मैत्री की मर्यादा माननेवाले जन, अपने मित्रों से त्रासदायक कार्य हो जायें, तो भी अपने चिरकाल के मित्र का साथ नहीं छोड़ते ॥ ६ ॥

अळिवन्द शॆय्यिनुम् अन्बऱार् अन्बिन्
वळिवन्द केण्मै यवर् ॥ ७ ॥

है सौहार्द पुराना जिनमें, गाढ़ी जहाँ प्रीति की रीति।
गहन[3] अनिष्ट[4] मित्र से पाकर, फिर भी नहीं त्यागते प्रीति ॥ ७ ॥

मित्र अनिष्टकारी कार्य भी कर दे तो स्नेह में पनपे और बँधे मित्र-जन उससे स्नेह करना नहीं छोड़ते ॥ ७ ॥

केळिळुक्कम् केळाक् कॆळुतहैमै वल्लार्क्कु
नाळिळुक्कम् नट्टार् शॆयिन् ॥ ८ ॥

जिन्हें सुहृद[5] की निन्दा अप्रिय-असहनीय, वे जन मतिमान्,
धन्य दिवस मानते, मित्र जब करता कोई चूक महान् ॥ ८ ॥

दूसरे लोग यदि अपने घनिष्ट मित्र के गलत कामों की आलोचना करें तो उसे अप्रिय माननेवाले, न सहन करनेवाले मित्र, उस दिन को सार्थक मानते हैं जब मित्र ने कोई गलत काम कर दिया हो। (उसके गलत काम को भी अच्छी मनोभावना के साथ ही स्वीकार करते हैं।) ॥ ८ ॥

कॆडाअ वळिवन्द केण्मैयार् केण्मै
विडाअर् विळैयुम् उलहु ॥ ९ ॥

दृढ़ सच्ची मित्रता निबाही, ऐसे मित्र जगत् में धन्य।
पाकर कष्ट, मित्रता कायम रखना, उससे अधिक अनन्य[6] ॥ ९ ॥

चिरकाल से अविच्छिन्न सच्ची मैत्री न तोड़नेवालों की, संसार हृदय से प्रशंसा करेगा ॥ ९ ॥

विळैयार् विळैयप् पडुप पळैयार्कण्
पण्बिन् तलैप्पिरिया दार् ॥ १० ॥

---

१ निगाह में नहीं लाते २ मैत्री-बन्धन ३ गहरा ४ अहित ५ मित्र
६ अनुपम।

किसी परिस्थिति में न त्यागते, अटल मित्रता का निर्वाह।
ऐसे मित्रों के सनेह की रिपु भी करने लगते चाह ॥ १० ॥

(गलत काम कर जाने पर भी) चिरकाल के मित्र से मैत्री का सम्बन्ध तोड़ न देनेवाले व्यक्ति, अपने शत्रुओं के भी स्नेह को पाने का गौरव प्राप्त करते हैं ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ८२

ती नट्पु (बुरी मैत्री)

परुहुवार् पोलिनुम् पण्बिलार् केण्मै
पेरुहलिर् कुन्ऱल् इन्दु ॥ १ ॥

मधु से मधुर प्रीति लगती हो, फिर भी अगर मित्र गुणहीन।
ऐसी व्यर्थ मित्रता से श्रेयस्कर[1] रहना मित्र-विहीन ॥ १ ॥

प्रेम के कारण गहरा मित्र लगे भी तो, गुणहीन व्यक्ति की मित्रता बढ़कर विस्तृत होने की अपेक्षा घटकर कम होती जाये, यही श्रेयस्कर है ॥ १ ॥

उऱिन्नट्टु अऱिन्औरुउम् ऒप्पिलार् केण्मै
पेऱिनुम् इळप्पिनुम् ऎन् ? २ ॥

स्वारथ ही का साथ, न स्वारथ, तो क्षण में करते विच्छेद[2] ! ।
स्वारथ के साथी के मिलने और गवाँने[3] में क्या भेद ? ॥ २ ॥

स्वार्थ सधते समय मित्रता करने, और स्वार्थ न सधते समय हट जानेवाले अयोग्य व्यक्तियों की मित्रता प्राप्त कर ली तो क्या ? खो दी तो क्या ? ॥ २ ॥

उऱुवदु शीर्तूक्कुम् नट्पुम् पेऱुवदु
कौळ्वारुम् कळ्वरुम् नेर् ॥ ३ ॥

सदा मित्र से प्राप्त लाभ पर दृष्टि, मित्र पर ज़रा न नेह।
तद्वत् है चोरों की संगति और वेश्या का असनेह[4] ॥ ३ ॥

(मैत्री को न देखकर उससे) प्राप्त होनेवाले लाभों की गणना करने वाला मित्र, प्रेम को न मानकर प्राप्त होते धन को देखनेवाली वेश्या, (दूसरों के दुख को न जानकर उनकी संपत्ति का अपहरण करनेवाला) चोर, ये सभी एक कोटि के हैं ॥ ३ ॥

---

१ अधिक भला है २ सम्बन्ध छोड़ देते हैं ३ खो देने में ४ प्रेम।

अमरहत्तु आट्टरुक्कुम् कल्लामा अन्नार्
तमरिन् तन्निमै तलै ॥ ४ ॥

अवसर पर यदि काम न आये, नहीं मित्र की फिर दरकार[1] ।
प्रभु को रण में त्याग भागनेवाला ज्यों तुरंग बेकार ॥ ४ ॥

(सामान्य स्थिति में साथ देकर) युद्ध आते ही रणक्षेत्र में पटक कर चल देनेवाले अनभ्यस्त अश्व जैसों की मित्रता प्राप्त होने की अपेक्षा, बिना किसी मित्र के रह जाना श्रेयस्कर है ॥ ४ ॥

शॆय्देमऱ् चाराच् चिऱियवर् पुऩ्केण्मै
ऍय्दलिन् ऍय्दामै नऩ्ऱु ॥ ५ ॥

पतित स्वार्थी मित्र ! न अवसर पड़ने पर जो आते काम ।
मित्र बनाने से सुन्दर है, इन मित्रों को करो प्रणाम[2] ॥ ५ ॥

मित्रता कर लेने के बाद जो समय पर काम नहीं आते, ऐसे नीच व्यक्तियों की बुरी मैत्री प्राप्त होने की अपेक्षा, न प्राप्त हो, यही अच्छा है ॥ ५ ॥

पेदै पॆरुङ्गॆळ्ळिइ नट्पिन् अऱिवुडैयार्
एदिन्मै कोडि उऱुम् ॥ ६ ॥

बुद्धिमान का वैर नहीं पहुँचा पाता इतना नुकसान ।
अतुल हानि अनिवार्य[3], मित्र यदि अपना हुआ कहीं नादान ॥ ६ ॥

बुद्धिहीन की मैत्री की अपेक्षा बुद्धिमान की शत्रुता करोड़ों-गुना श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥

नहैवहैयर् आहिय नट्पिन् पहैवराल्
पत्तडुत्त कोडि उऱुम् ॥ ७ ॥

हँसी-मसखरी के मित्रों से नहीं लाभ है किसी प्रकार ।
इनकी तुलना में रिपुओं से सम्भव कोटि-कोटि उपकार ॥ ७ ॥

(मन में प्रेम न रखते हुए) केवल बाहर से मुस्कराने (अर्थात् प्रेम जताने) का स्वभाव रखनेवालों की मित्रता प्राप्त होने की अपेक्षा, शत्रुओं से प्राप्त होनेवाली (शत्रुता की भावना) दसकोटि-गुना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

ऑल्लुम् करुमम् उडट्टु ऩवर्केण्मै
शॊल्लाडार् शोर विडल् ॥ ८ ॥

नहीं सहायक होते, यद्यपि उनमें क्षमता[4] है पर्याप्त ।
ऐसों की, चुपके, धीरे-धीरे कर दो मित्रता समाप्त ॥ ८ ॥

---

१ आवश्यकता २ उनको त्याग दो ३ अटल ४ सहायता कर सकने के योग्य हैं ।

सहायता करने में समर्थ होने पर भी समय पर सहायता न करनेवाले मित्रों के सम्बन्ध को, विना उनको जताये, धीरे-धीरे समाप्त कर देना चाहिए ॥ ८ ॥

कन्नविन्नुम् इन्नादु मन्नो विन्नैवेरु
शॊल्वेरु पट्टार् तॊडर्पु ॥ ९ ॥

कथनी-करनी में अन्तर है, कहते कुछ, करते विपरीत ।
सदा त्याज्य हैं, सपने में भी ऐसों की दुखदायी प्रीत ॥ ९ ॥

जिनकी करनी और कथनी में अन्तर है, ऐसे लोगों की मैत्री का स्वप्न भी दुखदायी होता है ॥ ९ ॥

ऍन्नैत्तुम् कुरुहुदल् ओम्बल् मन्नैक्कॆळीइ
मन्रिल् पळिप्पार् तॊडर्पु ॥ १० ॥

बरसाते हैं नेह गेह[1] में, बाहर करते अयश-बखान ।
इनसे नाता रखने का सपने में भी मत करो गुमान[2] ॥ १० ॥

जो एकान्त में, घर में रहते समय तो घुल-मिलकर रहते हैं, पर कई लोगों के बीच सभा में निन्दा करते हैं, ऐसे लोगों की मैत्री को तनिक भी निकट नहीं आने देना चाहिये ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ८३

कूडा-नट्पु (कपट-मैत्री)

शीरिडम् काणिन् ऍरिदर्कुप् पट्टडै
नेरा निरन्दवर् नट्पु ॥ १ ॥

करता है 'आधार निहाई[3] का' जिस भाँति प्रखर आघात ।
मन के मैले मृदुभाषी से उसी भाँति सम्भव अपघात[4] ॥ १ ॥

मन से विरोध, किन्तु ऊपर से प्रेम दिखानेवाले मित्रों की मैत्री, अवसर पाते ही निहाई की तरह आधार बनकर आघात करने में सहायता पहुँचाती है। (जिस प्रकार निहाई किसी वस्तु को अपने ऊपर आश्रय देकर हथौड़े के आघात को सहायता देती है कि चोट पूरी पड़े, उसी प्रकार कपटी-मित्र संकट के आने पर आघात करनेवालों के लिए सहायक बनते हैं) ॥ १ ॥

---

१ घर २ अनुमान ३ लोहे की बैठकी जिस पर कोई वस्तु जमाकर उस पर हथौड़े से चोट की जाती है ४ विश्वासघात ।

उर्दू शाअ़िरी का तीसरा या चौथा ही दौर था कि शोख़ तबअ़ जवानों में ख़याल पैदा हुआ कि रीख़ता की जगह एक रीख़ती ईजाद की जाय। मीर हसन ने अपनी मसनवी में ज़रूरत के मौक़ों पर यह ज़बान मौज़ूँ की थी। मगर वहाँ तक मुज़ायक़ः न था। मियाँ रंगीन ने इस रंग को मुस्तक़िल तौर पर इख़्तियार किया, जो देहली के रहने वाले थे और लखनऊ की सुहबतों में शरीक रहा करते थे। इब्तिदाअन मुहज़्ज़ब लोगों की सुहबत ने इस रंग को बेशर्मी और ख़िलाफ़ेतहज़ीब जाना। चुनांचि सैय्यद इंशा की ज़बानी हमने लखनऊ में देहली के जिन मुहज़्ज़ब सिनरसीदः बुज़ुर्ग और वहीं की एक रंडी नूरन की गुफ़्तुगू लिखी है। उसमें वह बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं—और सबसे ज़ियादः एक और सुनिए कि सआ़दत यार तुहमासिप का बेटा अनवरीये रीख़तः अपने को जानता है। रंगीन तख़ल्लुस है। एक क़िस्सा कहा है, उस मसनवी का नाम दिलपज़ीर रखा है। रंडियों की बोली उसमें बाँधी है। मीर हसन पर ज़हर खाया है। हर चन्द उस मर्हूम को भी कुछ शअ़ूर न था बदरेमुनीर की मसनवी नहीं कही गोया साँडे का तेल बेचते हैं। भला इसको शेअ़र क्योंकर कहिए? सारे लोग दिल्ली, लखनऊ, के रंडी से लेके मर्द तक पढ़ते हैं।

चलीं वाँ से दामन उठाती हुई,
कड़े से कड़े को बजाती हुई।

सो उस बेचारे रंगीन ने भी इसी तौर पर क़िस्सा कहा है। कोई पूछे कि भाई तेरा बाप रिसालदार मुसल्लम लेकिन बेचारा बर्छी-भाले का हिलानेवाला, तेग़े का चलानेवाला था, तू ऐसा क़ाबिल कहाँ से हुआ? और शुहदापन मिज़ाज़ में रंडीबाज़ी से आ गया है तो रीख़तः के तईं छोड़कर एक रीख़ती ईजाद की है। इस वास्ते कि भले आदमियों की बहू-बेटियाँ पढ़कर मुश्ताक़ हों, और उनके साथ अपना मुँह काला करें, भला यह कलाम क्या है? :—

ज़रा घर को रंगी के तहक़ीक़ कर लो,
यहाँ से हैं कै पैसे डोली कहारो।

—मर्द होकर कहता है कहीं ऐसा न हो कि कम्बख़्त मैं मारी जाऊँ। और एक किताब बनाई है उसमें रंडियों की बोली लिखी है। जिसमें ऊपर वालियाँ, चीलें, ऊपर वाला चाँद, उजली धोबन वग़ैरः वग़ैरः।

मगर मुहज़्ज़ब बुड्ढे शिकायत करते-करते मर गए, नौजवानों की रंगीनी ने रंगीन के मज़ाक़ को तरक़्क़ी दे ही के छोड़ा और रीख़ती उर्दू का एक फ़न हो गया। जिसकी ईजाद गो एक देहली ही के शाअ़िर से हुई थी मगर हुई लखनऊ में और यहीं इसे फ़रोग़[1] हुआ। क़िस्से के सिलसिले में इस ज़बान को मीर हसन के बाद नव्वाब मिर्ज़ा शौक़ ने जिस आला दर्ज-ए-कमाल को पहुँचा दिया, तारीफ़ नहीं हो सकती। सफ़हे के सफ़हे पढ़ते चले जाइए। यही नहीं पता चलता कि मौज़ूँ करने में शाअ़िरानः

१ उन्नति, चमक।

ज़रूरतों ने बोलने की ज़बान पर कहीं कुछ तसर्रुफ़[1] भी किया है या नहीं। लेकिन ग़ज़लगोई में रंगीन की जानशीनी जान साहब ने की, जो लखनऊ के एक मामूली शख़्स थे और आशूर अली ख़ाँ की ख़राद[2] पर चढ़ के तैयार हुए थे। गो कि जान साहब के बाद और रीख़ती-गो भी लखनऊ में पैदा हुए, मगर जान साहब पर कमाल और शुहरत का ख़ातिमा हो गया। उन्होंने ग़ज़लें कहीं, वासोख़्ती कहीं, और और भी कई नज़्में कहीं।

रीख़ती में अगर फ़ुहश और बदकारी के मज़ाक़ से परहेज़ करके, पाकदामनी के जज़बात इख़्तियार किए जाते तो यह फ़न एक हद तक क़ाबिलेतरक़्क़ी होता। मगर ख़राबी यह हुई कि उसकी बुन्याद ही बदकारी के जज़्बात और बेअिस्मती[3] के ख़यालात पर थी, इसलिए रीख़ती गवइय्यों का क़दम हमेशः जाद-ए-तहज़ीब[4] व एतिदाल[5] से बाहर हो गया। और इससे ज़बान को चाहे किसी हद तक फ़ायदा हुआ हो, मगर अख़लाक़[6] को नुक़सान पहुँचा।

उर्दू की इंशा परदाज़ी (गद्य-लेखन)

नस्रे उर्दू[7] की उम्र, नज़्म[8] के देखते कम है। मुद्दत तक तालीमयाफ़्ता लोगों की यह वजअ़ रही कि अगरचि बाज़ लोग फ़ारसी में भी शेअ़र कहते थे, मगर आ़म रुजहान और मैलानेउर्दू[9] ग़ज़ल-सराई की तरफ़ था। और हिन्दोस्तान में उर्दू शाअ़िरों की तादाद फ़ारसी शाअ़िरों से बहुत ज़ियादः थी। मगर नस्र में सारे मुल्क को फ़ारसी ही में लिखने पढ़ने का शौक़ था। उ़लूमोफ़नून[10] की किताबें फ़ारसी में लिखी जातीं, दीनोमज़हब की किताबें फ़ारसी में तसनीफ़ होतीं, यहाँ तक कि बूढ़े से लेके बच्चे तक सब फ़ारसी ही में ख़त व किताबत करते। बच्चों को मकतब में फ़ारसी ही की इंशाएँ पढ़ाई जातीं और फ़ारसी ही में ख़त लिखना उन्हें सिखाया जाता। नतीजा यह था कि बोलचाल में उर्दू ज़बान चाहे कैसी ही शीरीं व फ़सीह हो गई हो, लिखने की ज़रूरत पेश न आई, और सब गूंगे हो गए।

पहले पहल उर्दू में मीर अम्मन देहलवी ने अंग्रेज़ों की हौसिला अफ़ज़ाई व हिदायत से अपनी किताब 'चार दर्वेश' लिखी। उसी ज़माने में मिर्ज़ा अली लुत्फ़ ने अपना 'तज़किर-ए-शुअ़र-ए-उर्दू' तसनीफ़ किया, जो अब्दुल्लाह ख़ाँ साहब मुक़ीमे हैदराबाद की कोशिश से छप गया है। उसी ज़माने के क़रीब मौलवी इस्माईल साहब शहीद ने तौहीद व इत्तिबाअे सुन्नत पर अपनी किताब 'तक़वीयतुलईमान' तहरीर फ़रमाई। यह किताबें अब चाहे जिस नज़र से देखी जाएँ उन दिनों अदबी कमाल दिखाने के लिए नहीं लिखी गई थीं। इनकी तसनीफ़ से सिर्फ़ मक़सूद यह था कि बेतकल्लुफ़ और सीधी-साधी ज़बान में मतलब अदा कर दिया जाए और अ़वाम फ़ायदः

---

१ चमत्कार २ सान, धार ३ चरित्रहीनता ४ सभ्यता की राह ५ संयम, संतुलन ६ शिष्टाचार ७ उर्दू गद्य ८ पद्य ९ उर्दू का झुकाव १० विद्या और कला।

उठा सकें। मज़कूर-ए-बाला[१] बुज़ुर्गों को अगर अदब उर्दू का कमाल दिखाना होता तो उस ज़माने की इंशा परदाज़ी[२] के मुताबिक़ ज़हूरी व निअ़मत ख़ाँ आ़ली और अबुलफ़ज़्ल व ताहिर वहीदा का रंग इख़्तियार करते जो उस वक़्त अदबी दुनिया पर हुकूमत कर रहा था; और जिसके बग़ैर कोई तहरीर मुल्क में क़ाबिलेदाद न तसव्वुर की जाती। तहरीर ही नहीं गुफ़्तगू में भी अगर ज़ियादः तहज़ीब व शाइस्तगी मलहूज़ेखातिर[३] होती तो वही अन्दाज़ इख़्तियार कर लिया जाता, जैसा कि इंशा ने मिर्ज़ा मज़हर जानेजानाँ की तक़रीर के चन्द अलफ़ाज़ नक़्ल करके बता दिया है।

सच पूछिए तो उर्दू की नस्सारी[४] लखनऊ ही से शुरू हुई, जबकि पहले मिर्ज़ा रजब अली बेग सुरूर ने 'फ़सान-ए-अ़जायब' और अपनी दूसरी किताबों को शायअ़ किया। उसी ज़माने में नौरतन भी लखनऊ में लिखी गई, जिसके मुसन्निफ मुहम्मद बख़्श महजूर शार्गिद जुर्अत लखनऊ ही की सुहबत के साख्तः व परदाख्तः[५] थे।

रजब अली बेग सुरूर ने सच यह है कि इंशा परदाज़ी का आला कमाल दिखाया है और जिस वक़्त वह किताब शायअ़ हुई है, उर्दू सुहबतों में हैरत के साथ देखी गई। मगर बदक़िस्मती से उन्होंने दीबाचे में मीर अम्मन पर हमला कर दिया था, जिसकी वजह से उनके तमाम कमालात अहलेदेहली के नज़दीक ख़ाक में मिल गए। यहाँ तक कि मीर मुहम्मद हुसैन आज़ाद के से मुहज़्ज़ब बुज़ुर्ग भी उन्हें "लखनऊ का शुहदा" फ़रमाते हैं। और मालूम नहीं रजब अली बेग मर्हूम से इस गुस्ताख़ी का इन्तिक़ाम कब तक लिया जायेगा? मीर अम्मन का हुनरे-इंशा-परदाज़ी अंग्रेज़ों को उन दिनों चाहे नज़र आ गया हो मगर हिन्दोस्तान के अहलेज़बान में से किसी को न नज़र आया था और न नज़र आ सकता था, इसलिए कि अंग्रेज़ी तालीम के असर ने उस वक़्त तक मुल्की लिट्रेचर का मज़ाक़ नहीं बदला था और मश्रिक़ी[६] अदब ख़यालों और दिमाग़ों में बसा हुआ था।

अदबी रंग के मुताबिक़ मैंने कई बार लिखा है और फिर लिखता हूँ कि वह बिल्कुल तालीम और मज़ाक़ की परवरिश से वाबस्तः होता है। जिस तरह ग़िज़ाओं ख़ुशबूओं और रंगों और दीगर तमाम चीज़ों के गिर्द की मुआ़शरत[७] पसन्दीदः बनाया करती है और मुख़्तलिफ़ क़ौमों और मुल्कों में इस क़द्र इख़्तिलाफ़ रहता है कि एक लज़ीज़तरीन[८] और महबूबतरीन[९] दूसरे के नज़दीक निहायत ही बदमज़ा और सख़्त क़ाबिले नफ़रत होती है। वैसे ही अदब और लिट्रेरी मज़ाक़ का हाल है कि जो रंग एक क़ौम में परवरिश पाके दिमाग़ों और ज़बानों पर चढ़ जाता है, दूसरी क़ौम के नज़दीक, बेहूदः बेलुत्फ़ और बदमज़ा होता है और सही फ़ैसला कोई नहीं कर सकता कि कौन अच्छा है और कौन बुरा है।

---

१ उपर्युक्त २ गद्यलेखन ३ ध्यान में लाने योग्य ४ गद्य-लेखन ५ बने-सवाँरे ६ पूर्वी ७ रहन-सहन, परिवेश ८ रुचितम ९ प्रियतम।

जाहिलीयते अरब में फ़साहत[१] व बलाग़त[२] का रंग यह था कि मुक़फ़्फ़ा[३] फ़िक़रे लाए जायें। इबारत में मुतनासिब[४] व मुतदाविल[५] अल्फ़ाज़े मुतरादिफ़[६] आएं। और एक ही मतलब बार-बार अदा करके मुअस्सिर[७] और दिलचस्प बनाया जाए। इसी मज़ाक़ को क़ुर्आन ने, चूंकि वह लिसानेक़ौम[८] में था, निहायत मुअ्ज्जिज़नुमा तर्ज़[९] से तकमील को पहुँचाया। फिर वही मज़ाक़ अदबे अरबी का उ़न्सुरेआज़म[१०] बन गया। आज कल के मेयार से देखा जाए तो अ़रबी की फ़सीहतरीन किताबें मक़ामाते-हुरैरी व तारीखेतैमूरी वग़ैरः में क़ाफ़िय:पैमाई, तत्वीले बेजा[११] और बेज़रूरत अल्फ़ाज़ लाने के सिवा कुछ नहीं है, जिसका मुद्दतों और सद्यों तक एक दुनिया मज़ा लेती रही है। यही रंग फ़ारसी के अदीबों ने इख्तियार किया। और ज़ूं-ज़ूं अदबी तरक़्क़ी होती गई, वही रंग पुख्तः और गहरा होता गया। और इस मज़ाक़ के दिमाग़ों में बसे होने की वजह से वही रंग उर्दू के उदबा-ए-अव्वलीन ने इख्तियार किया और दुनिया से दाद पाई। लिहाज़: यह ख़याल करना कि चार दरवेश जिन दिनों लिखी गई है, उन दिनों वह सिवा अंग्रेज़ों को पसन्द होने के, जो उर्दू को जानते ही न थे, हिन्दोस्तान के अहलेअ़िल्म में कोई अदबी कमाल तसव्वुर की गई होगी, बिल्कुल बेअसल है।

अब अंग्रेज़ी के असर से बेशक ऐसा ज़माना आ गया है जब उर्दू को पुराने लिट्रेचर ने जो ज़ेवर और लिबास पहनाया था, उतार लिया गया और नये मग़रिबी[१२] कपड़े पहनाए गये। चार दर्वेश और उसकी सी दूसरी किताबें चूंकि पुराने अदबी ज़ेवर व लिबास से मुअ़र्रा[१३] थीं, इस लिए लोगों को पसन्द आईं। इस लिए नहीं कि उनमें कोई ख़ास ख़ूबी थी बल्कि इस लिए कि उस पुराने मक़बूलेअ़िल्म क़ौमी लिट्रेचर के रंग से मुअ़र्रा थीं जो मौजूदह लोगों को नापसन्द है।

उसी ज़माने में लखनऊ में मौलवी ग़ुलाम इमाम शहीद ने अपना मशहूर मौलुद§ शरीफ़ लिखा। जो उस वक़्त के अदबी मज़ाक़ में इस क़द्र डूबा हुआ था कि लोगों को बहुत पसन्द आया, और मज़हबी मक़बूलियत की वजह से आज तक बहुत पसन्द है।

मगर मौजूदः नस्रेउर्दू अस्ल में देहली ही से निकली और हमेशा देहली के ज़ेरबारे इहसान रहेगी। मिर्ज़ा ग़ालिब ने उर्दू इंशा में बेतकल्लुफ़ी का रंग इख्तियार किया जो मौजूदः मज़ाक़ से बहुत ही क़रीब है। अगरचि वह भी कभी-कभी क़ाफ़िय: बन्दी की रिआ़यत कर जाते हैं, लेकिन इस बेतकल्लुफ़ी के साथ कि पढ़ने वाले को क़ाफ़िये का ख़याल भी ग़ौर करने से (ही) आता है। मौजूदः तालीम ने लोगों को इस रंग को क़बूल करने के लिए ख़ूब तैयार कर दिया था। हर सुहबत में वाह-वाह

---

१ सरलता २ अलंकारमय शैली ३ तुकान्त ४ अनुकल ५ प्रचलित ६ लगातार, एक के बाद एक ७ प्रभावशाली ८ क़ौमी ज़बान ९ प्रतिष्ठित स्तर पर १० प्रमुख तत्व ११ अनुचित विचार १२ पश्चिमी १३ ख़ाली।

§ यह शब्द मौलिद है पर बोला मौलुद जाता है, मौलूद भी सही है।

होने लगी। उनके बाद सर सैय्यद ने उस सादगी में मतानत[१] पैदा की मगर इस कोशिश के साथ कि ज़बान दक़ीक़[२] न होने पाए और ऐसी रहे कि हर अद्ना व आला उसे समझ ले। मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने इसमें मतानत के साथ और लुत्फ़ पैदा कर दिया, जब कि लखनऊ के लोग अंग्रेज़ी के असर से दूर होने के बाअिस हनोज़[३] पुराने ही रंग के दीवाने थे। यहाँ वाजिदअली शाह के आख़िर अय्यामे-ज़िन्दगी तक रंगीन और मुक़फ़्फ़ा इबारत लिखी जाती थी और लोगों को इस सादगी का मज़ा नहीं मिलने पाया था।

अब अलीगढ़ से 'तहज़ीबुल्अख़लाक़,' आगरे से 'तेरहवीं सदी' और लखनऊ से 'अवधपंच' निकल रहे थे। जिनमें से हर एक नस्र उर्दू की एक मुमताज़ शान रखता था। तहज़ीबुल्अख़लाक़ में मतानत और आलिमान: वक़ार के साथ क़ौमी दर्द का सोज़ोगुदाज़[४] था, सुलझी हुई साफ़ ज़बान थी, और नए मग़रिबी फ़लसफ़: व अदब से लिए हुए ख़यालात और असर डालनेवाले मज़ामीन व ख़ुतबात थे। तेरहवीं सदी में आला मुंशियान: क़ाबिलीयत के साथ क़दीम अदबी मज़ाक़ की निगहदाश्त नई ख़याल-आराइयों और जिद्तों के साथ की जाती थी। और पुराना मश्रिक़ी लिट्रेचर कुछ ऐसी जिद्त-तराज़ियों[५] के साथ नए लिबास में ज़ाहिर किया जाता था कि नए और पुराने दोनों गरोहों से बेइख़्तियार "वाह वाह" के नारे बलन्द होते थे।

अवध पंच में ज़बान अपनी असली ज़बान में दिखाई जाती थी जिसमें मज़ाक़ का पहलू ग़ालिब रहता। इसमें मुख़तलिफ़ लिखनेवाले थे और हर एक का मज़ाक़ ख़ास लुत्फ़ और ख़ास ख़ूबियाँ रखता था। मुंशी सज्जाद हुसैन एडीटर की शोख़ियाँ, मिर्ज़ा मच्छू बेग साहब की कौसर की धोई हुई ज़बान, मुन्शी अहमदअली कसमन्डवी की फ़ारसीयत की आलाअदबी और शाअिरान: दिलचस्पियाँ ज़ाहिर करनेवाला रंग। पंडित त्रिभुवन नाथ हिज्र की हिन्दी नज़में और उनकी ख़ूबियों को निहायत दिलचस्पी के साथ ज़ाहिर करनेवाले मज़ामीन, उर्दू नस्र में एक अ़जीब ज़िन्दगी व शिगुफ़्तगी[६] पैदा कर रहे थे।

इसी असना में अवध अख़बार के साथ पंडित रतननाथ का नाविल "फ़सानए आज़ाद" शाया होना शुरू हुआ, जिसने मुल्क पर बहुत बड़ा असर डाला। और उर्दू दुनिया नाविल-नवीसी के मज़ाक़ से आशना हो के उसकी बेइन्तिहा फ़रेफ़्ता हो गई। फ़सानए-आज़ाद में, जहाँ मुसन्निफ़ ने अपने क़लम से कोई सीन दिखाया है या कोई वाक़िअ: लिखा है, वही फ़सान-ए-अजायब का पुराना रंग तरक़्क़ियों के साथ इख़्तियार किया है, और जहाँ दूसरों की ज़बान से तरक़्क़ी कराई है, बहुत ही सादी और बेतकल्लुफ़ ज़बान रखी है। ख़ुसूसन औरतों की ज़बान बहुत ही पाकीज़: है, गोकि जा बजा ग़लतियाँ भी हो गई हैं मगर सच यह है कि अपनी कोशिश में वह जिस दर्जे तक पहुँच गए हैं, उनसे पहले कोई नहीं पहुँचा था।

---

१ गंभीरता, संजीदगी २ कठिन, क्लिष्ट ३ अब तक भी ४ तड़पन-घुलन ५ नई बातें निकालना, (नये चमत्कार) ६ ख़ुशदिली, उल्लास।

यही ज़मान: है जब कि मौलवी नज़ीर अहमद साहब ने गवर्मेन्ट की फ़रमाइश से ताज़ीरातेहिन्द का तर्जुम: किया और अपनी किताबों के ज़रीए से एक ऐसी ज़बान मुल्क के सामने पेश की जो कहीं रवानी[१] और सफ़ाई[२] में बेनज़ीर है और कहीं लुग़ाते अ़रबी से ममलू होने के बाअ़िस सख्त दक़ीक़[३] व बलीग़[४]। और उसी अ़हद में मौलवी मुहम्मद हुसैन साहब आज़ाद का लिट्रेचर एक बहुत ही पसन्दीद: रंग पेश कर रहा था। ख़ुसूसन उन्होंने ज़बाने उर्दू की तारीख़ और तज़क़िर-ए-शुअ़रा-ए-उर्दू लिख के, अदबे-उर्दू में ख़ास नामवरी हासिल की। उसी ज़माने में सन् १८८२ ई० में 'महशर' नाम एक हफ़्तेवार रिसाला मैंने मौलवी मुहम्मद अब्दुल बासित साहब महशर के नाम से निकाला, जिसके ज़रीए से एडीसन का रंग उर्दू में ऐसे दिलकश उ़नवान[५] और मौज़ूं व मुनासिब अल्फ़ाज़ोख़यालात में पेश किया गया कि मुल्क यक-बयक चौंक सा पड़ा। साथ ही मेरे मज़ामीन अवध अख़बार के कालमों में शायअ़ होना शुरू हुए जिन्होंने मुल्क के सामने एक नया लिट्रेचर पेश किया जो इस क़द्र मक़बूल हुआ कि हर तरफ़ से मर्हबा की सदाँए सुनाई देने लगीं। यकायक नज़र आया कि अक्सर मज़मून-निगार इसी रंग को इख्तियार कर रहे हैं और मुल्क का आ़म रुजहान इसी तरफ़ है। इसी दर्मियान मैंने अपना नाविल दिलचस्प और मुअस्सिर[६] ड्रामा 'शहीदे वफ़ा' मुल्क के सामने पेश किया और हर तरफ़ से हौसल: अफ़ज़ाई होने लगी।

आख़िर मुल्क का इसरार व तक़ाज़ा देख के आग़ाज़े[७] सन् १८८७ ई० से मैंने रिसाला दिलगुदाज़ जारी किया जिसका लिट्रेचर अंग्रेज़दानों और पुराने मज़ाक़ के लोगों, दोनों में मक़बूल हुआ। फिर सन् १८८८ ई० से इसके साथ तारीख़ी नाविलों का सिलसिला जारी किया गया। जिनमें सबसे पहला नाविल मलिकुलअ़ज़ीज़ वर्जिना है। इन नाविलों को मुल्क ने जिस शौक़ से लिया उसके बयान करने की तो ज़रूरत नहीं है। मगर इतना अर्ज़ कर देना ज़रूरी है कि इन्हीं नाविलों की वजह से वाक़िआ़त के मालूम करने और किताबों के मुतालअ़े का शौक़ बढ़ने की बुनियाद पड़ी। इन्हीं नाविलों के ज़रीए से मुल्क में तारीख़ के पढ़ने और वाक़िआ़तेआ़लम से दिलचस्पी हासिल करने का शौक़ पैदा हुआ और इन्हीं नाविलों और दिलगुदाज़[८] के सफ़हों ने वह रंग पैदा किया जिस पर मौजूद: अदबे उर्दू की बुनियाद क़ायम है।

बहरहाल नस्रे उर्दू का तअ़ल्लुक़ जहाँ तक पुराने अदबी रंग से है, उसकी बुनियाद लखनऊ में पड़ी। हाँ जदीद रंग का आग़ाज़[९] देहली से हुआ। मगर इस कोशिश में जहाँ तक मुमकिन हुआ, लखनऊ ने देहली की रिफ़ाक़त की[१०]। ख़ुसूसन ज़राफ़त[११] का मज़ाक़ तो लखनऊ ही से पैदा हुआ और लखनऊ में तक्मील को पहुँचा।

---

१ प्रवाह २ स्वच्छता, प्राञ्जल्य ३ क्लिष्ट, गूढ़ ४ अलंकारिक ५ शीर्षक ६ प्रभावकारी ७ आरम्भ ८ दिल पिघलानेवाले ९ प्रारम्भ १० साथ दिया ११ व्यंग्य-हास्य।

उर्दू नस्र नाविल, दास्ताँगोई, फ़ब्ती, आवाज़:कशी, ज़िलअ, तुकबन्दी, ख़यालबाज़ी, आदि नई ख़ूबियाँ

लेकिन ज़बानेउर्दू को जो तरक़्क़ियाँ लखनऊ में हासिल हुईं, वह शाअ़िरों, अदीबों, नस्सारों[1] और मुसन्निफ़ों ही तक महदूद नहीं हैं, मुख्तलिफ़ सोसाइटियों और तबक़ों में तरक़्क़ी व वुसअ़तेज़बान[2] की नई-नई सूरतें पैदा हुईं। जिन्होंने हर गिरोहवालों के लिए ख़ास दिलचस्पियाँ पैदा कीं।

इनमें सबसे ज़ियादः क़ाबिले तवज्जुह दास्तानगोई[3] है, जो दरअस्ल फ़िल्बदीह[4] तस्नीफ़ करने का नाम है। यह फ़न अस्ल में अरबों का है, जहाँ अहदेजाहिलीयत[5] में भी दास्तानगोई की सुहबतें मुरत्तब हुआ करती थीं। लेकिन हिन्दोस्तान की निस्बत हम नहीं जानते कि अरब की क़िस्सःख़्वानी से उनका कोई रिश्ता है या नहीं। अमीर हमज़ः की दास्तान जो दास्तान-गोयों की अस्ली और हक़ीक़ी जौलानगाह[6] है, वह दर अस्ल फ़ारसी में थी। और कहते हैं कि शहनशाह अकबर के ज़माने में अमीर ख़ुसरू नाम एक क़ाबिल शख़्स ने उसे तस्नीफ़ किया। तारीख़ से साबित है कि मुलूकेतुग़्लक़[7] के अ़हद में दास्तानेअमीर हमज़ः मौजूद थी।

देहली के मश्हूर दास्ताँगो लखनऊ में आना शुरू हुए। यहाँ अफ़्यूनियों ने उनकी यहाँ तक क़द्र की कि दास्तान सुनने को अपनी सुहबतों का एक उन्सुरे आज़म[8] क़रार दे लिया। चन्द ही रोज़ में लखनऊ के अन्दर उसको इस क़द्र फ़रोग़ हो गया कि कोई दौलतमन्द न था कि जिसकी सरकार में कोई दास्ताँगो न मुक़र्रर हो। सैकड़ों दास्ताँगो पैदा हो गए। सच तो यह कि हमारे आज कल के मक़बूल से मक़बूल स्पीकरों में से अब तक किसी को फ़सीहुल्बयानी[9] में वह दर्जा नहीं नसीब हो सका है जो क़दिरुल् कलाम[10] दास्तानगोइयों को हासिल था। देहली में भी दो एक साहिबे कलाम दास्ताँगो आज तक पड़े हैं, मगर लखनऊ में उनका शुमार बहुत ज़ियादः है। और उनके तर्ज़े-तक़रीर का असर अवामे शहर की ज़बानों पर बेहद पड़ गया है। नाविलों का ज़ौक़ पैदा होने के बाद जब इस बात की कोशिश की गई कि दास्ताँगोइयों ही की ज़बान में क़लमबन्द करा लिया जाए तो लखनऊ ही ऐसे बाकमाल दास्ताँगो पेश कर सका जिन्होंने ज़ख़ीम[11] जिल्दें लिख के उर्दू-दाँ पब्लिक में फैला दीं। चुनांचि जाह और क़मर के तसानीफ़[12] मुल्क में बड़ी क़द्र की निगाहों से देखे जाते हैं।

दास्तान के चार फ़न क़रार पाए गए हैं, रज़्म[13], बज़्म[14], हुस्नोइश्क़ और अय्यारी। इन चारों फ़नों में लखनऊ के दास्ताँगोइयों ने ऐसे-ऐसे कमाल दिखाए

---

१ लेखकों २ भाषा-विस्तार ३ क़िस्से सुनाने का काम (जीविका) ४ बिना पहले की बुनियाद धारावाहिक कहते जाना ५ अज्ञानकाल (याने इस्लाम से पूर्व) ६ अभ्यास का क्षेत्र या आधार ७ तुग़लक बादशाहों ८ प्रधान अंग ९ सरल-स्पष्ट वक्तृता १० वाक्पटुता ११ वृहत्, मोटी १२ रचनाएँ १३ युद्ध, वीररस १४ गोष्ठी, सम्मेलन।

हैं जिनका अन्दाज़ा बग़ैर देखे और सुने नहीं हो सकता। अलफ़ाज़ में तस्वीर खींचना और तस्वीरों का निहायत ही गहरा देरपा असर सामअ़ीन[१] के दिलों पर डाल देना उन लोगों का ख़ास कमाल है।

सोशल तफ़न्नुन् मज़ाक़, ज़राफ़त और दिल्लगी के उ़नवान से भी लखनऊ में अ़िल्मेज़बान के कई फ़न पैदा हो गए, जिनमें कोई मक़ाम लखनऊ का मुक़ाबला नहीं कर सकता। इन्हीं में से एक फ़न फ़बती कहना[२] है। इसको दरअस्ल शाअ़िरानः तश्बीह व इस्तिआरे से तअ़ल्लुक़ है। लेकिन इसमें इतनी ख़ुसूसीयत है कि यह किसी को बिगाड़ के दिखाने, उसके ऐब के नुमायाँ करने, और बर्जस्तः कोई अनोखी हँसानेवाली और ऐबों नुक़सान ज़ाहिर करनेवाली तश्बीह पेश कर देने तक महदूद है। लखनऊ के अद्ना-अद्ना लड़के, बाज़ारी औरतें, जाहिल दुकानदार, अदना तबक़ों के अहले हर्फ़ तक ऐसी बर्जस्तः फ़ब्तियाँ कह जाते हैं कि बाहर वालों को हैरत हो जाती है। एक साहब करबला-ए-मुअ़ल्ला की ज़ियारत करके वापस आए और बुर्राक़ कपड़े पहन के दोस्तों में आके बैठे ही थे कि एक लौंडे ने कहा "ऐं, यह फ़ुरात[३] का बगुला कहाँ से आ गया ?" एक बूढ़े दूल्हा ख़िज़ाब करके दुल्हन ब्याहने को आए और बड़ी धूम की बरात लाए। ज़नाने से निकल के वह महफ़िल में आ रहे थे। जूता उतारने के लिए झुके और चन्द क़दम फ़र्श पर घुटने टेक के चले। किसी के ज़बान से निकला; दूल्हा कहाँ हैं ? शोख़-मिज़ाज रंडी जो खड़ी मुजरा कर रही थी, हँस के बोली; ऐ वह 'मैंयों-मैंयों' चला तो आता है। एक कबड़िया चौक में पौंडे बेच रहा था, सदा[४] यह थी कि—अरे भई, यह कनकव्वे कौन लूटेगा ? क्या इससे ज़ियादः बामज़ाक़ कोई इस्तिआ़रः[५] हो सकता है ? नाज़ुक तरीन इस्तिआ़रः वह है जिसमें मुशब्बः और मुशब्बह-बिही[६] दोनों का नाम न लिया जाए, सिर्फ़ मुशब्बह की कोई ख़ुसूसियत बता के कलाम में लुत्फ़ पैदा कर दिया जाए। इसकी इससे बेहतर मिसाल कौन हो सकती है कि न पौंडे का नाम लिया, न लग्गे का जिससे कनकव्वे लूटे जाते हैं, और फिर इतना कहके "कनकव्वे कौन लूटेगा ?" यह बता दिया कि यह पौंडे लग्गों के बराबर हैं, जिनसे कनकव्वे लूटे जाते हैं। और फिर इससे ज़ियादः मुनासिब और बाज़ारी लोगों के मज़ाक़ की कोई तश्बीह[७] नहीं हो सकती। इसी तरह की सद्हा हज़ारहा मिसालें हैं जो यहाँ की सुहबतों में उठते-बैठते हर वक़्त सुनी जाती हैं।

दूसरा "ज़िलअ़"[८] है यह दरअस्ल शाअ़िरानः रिआ़यत है जिसने अ़वाम की बात-चीत और मज़ाक़ की गुफ़्तगू में आके ख़ास रंग पैदा कर लिया है। ज़िलअ़ में कोशिश की जाती है कि जिस चीज़ का तज़्किरः आ जाए उसके तमाम मुतअ़ल्लिकात[९]

---

१ श्रोतागण २ चुटकी लेना, व्यंग्य-विनोद ३ इराक की एक नदी जिसके किनारे हज़रत इमामहुसैन शहीद किये गये थे। ४ आवाज़ ५ एक वस्तु कह कर दूसरी वस्तु को मूर्तिमान करना ६ उपमेय और उपमान ७ अर्थालंकार, मिलान ८ ज़ूमानिया, दो माने के शब्द या वाक्य कहकर विनोद करना ९ सम्बन्धित।

आपने फ़रमाया, जो मैं जानता हूँ अगर तुम जान लो† तो कम हँसो और ज़ियादः रो। असहाबे रसूलुल्लाह (स०) पर ऐसा गिर्यः[1] तारी हुआ कि उन्होंने अपने चेहरों को छुपा लिया।

और एक रिवायत में है कि आँहज़्रत (स०) को अपने असहाब के मुतअ़ल्लिक़ किसी बात की ख़बर पहुँची। आपने ख़ुतबा फ़रमाया।

फ़रमाया कि मुझ पर जन्नत व दोज़ख़ पेश की गयी। मैंने उस दिन की तरह बुराई-भलाई नहीं देखी अगर तुम जान लो जो मैं जानता हूँ तो ज़ियादः रो और कम हँसो। पस रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के असहाब पर इससे ज़ियादः सख़्त दिन नहीं गुज़रा। अपने चेहरों को छुपा लिया और रोने से आवाज़ न निकलती थी।

हदीस ७ सूरज का क़ुर्ब[2]

हज़्रत मिक़दाद (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है क़ियामत के दिन सूरज मख़्लूक़[3] से क़रीब कर दिया जायेगा। यहाँ तक कि उनसे एक मील§ के फ़ासला पर होगा। लोग अपने आमाल के बक़दर पसीने में होंगे। उनमें से कुछ ऐसे होंगे जिनका पसीना टख़्नों तक होगा; कुछ ऐसे होंगे जिनके घुटनों तक होगा; बाज़ ऐसे होंगे जिनके मुँह तक आ जायेगा। फिर आपने दस्ते मुबारक से मुँह की तरफ़ इशारः किया। [मुस्लिम]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया क़ियामत के दिन लोग पसीना-पसीना होंगे यहाँ तक कि उनका पसीना ज़मीन में सत्तर हाथ जायेगा और मुँह तक आ जायेगा। यहाँ तक कि कानों तक पहुँच जायेगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हदीस ८ जहन्नम की गहराई

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ थे। आपने एक धमाका सुना। फ़रमाया,

† मौत की सख़्तियों, क़ब्र की तकलीफ़ों, क़ियामत के हौलनाक मन्ज़र और दोज़ख़ की मुसीबतों की तरफ़ इशारः है।

§ सलीम बिन आमिर इसके रावी हैं। वह मिक़दाद से रिवायत करते हैं, कहा ख़ुदा की क़सम मैं नहीं समझता कि मील की मसाफ़त से आपकी क्या मुराद है। आया ज़मीन का मील या सलाई जिससे आँखों में सुर्मा लगाया जाता है।

१ रोना २ समीपता ३ सृष्टि।

जानते हो यह क्या है। हमने अ़र्ज़ किया अल्लाह और उसके रसूल ज़ियादः जानते हैं। आप (स़०) ने फ़रमाया, यह एक पत्थर है। जो दोज़ख़ में सत्तर साल से फेंका गया था। अब जाकर वह आग में गिरा है। यहाँ तक कि उसके पेटे में पहुँच गया जिसका तुमने धमाका सुना।
[मुस्लिम]

९/३७६ सदक़ा जहन्नम से बचा सकता है

हज़्रत अ़दीं (र०) बिन हातिम से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम में हर एक से अल्लाह बात करेगा। उसके और अल्लाह के दर्मियान कोई तरजुमान न होगा। जब वह अपनी सीधी जानिब देखेगा तो वही नज़र आयेगा जो आगे भेजा है। और बायें तरफ़ देखेगा तो वही नज़र आयेगा जो आगे भेज चुका और जब अपने आगे देखेगा तो उसके मुँह के सामने आग होगी। पस आग से बचो। अगरचिः एक खजूर के टुकड़े ही से क्यों न हो।
[बुख़ारी-मुस्लिम]

१०/३७७ ख़ौफ़ॅ ख़ुदा के अस्बाब

हज़्रत अबू ज़र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया जो तुम नहीं देखते वह मैं देखता हूँ। आसमान चरचराता है। और उसको चरचराने का हक़ है। उसमें चार उंगल की भी जगह नहीं है मगर एक फ़िरिश्ता अपनी पेशानी अल्लाह तआ़ला के सामने सिज्दे की हालत में रक्खे है अगर तुम जान लो जो मैं जानता हूँ तो कम हँसो और ज़ियादः रो। और तुमको अपने घरों में बिस्तरों पर मज़ा न आये। तुम चीख़ते और चिल्लाते हुए मैदान में निकल जाओ।
[तिर्मिज़ी]

११/३७८ क़ियामत में चार सवाल

हज़्रत अबू बरज़ः! असलमी (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किसी बन्दे के क़दम न हटेंगे जब तक कि (चार बातों के मुतअ़ल्लिक़) न पूछ लिया जायेगा। (१) उसकी उम्र के मुतअ़ल्लिक़ कि किस में फ़ना की। (२) अ़मल के मुतअ़ल्लिक़ कि क्या काम किये। (३) माल के मुतअ़ल्लिक़ कि कहाँ से कमाया और कहाँ ख़र्च किया और (४) जिस्म के मुतअ़ल्लिक़ कि किसमें पुराना किया।
[तिर्मिज़ी]

१७२ ज़मीन की गवाही

हज़रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह आयत पढ़ी 'यौमअिजिन् तुहदिद्सु अख़्बारहा' ‡ फ़रमाया, जानते हो इसकी ख़बरें क्या हैं। उन्होंने अ़र्ज़ किया अल्लाह और उसके रसूल ज़ियादः जानते हैं। आपने फ़रमाया, वह हर बन्दे और बन्दी पर गवाही देगी जो कुछ उसकी पुश्त पर है। कहेगी कि फ़लाँ दिन ऐसा हुआ फ़लाँ रोज़ ऐसा हुआ। यही इसकी ख़बरें हैं।

[तिर्मिज़ी]

१७३ क़ुर्बे क़ियामत

हज़रत अबू सअ़ीद (र०) ख़ुदरी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया मैं कैसे अ़ैश करूँ। सूर फूँकने वाला मुँह में सूर लिये है और इजाज़त पर कान लगाये है—कब फूँकने की इजाज़त हो कि फूँके। यह बात रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथियों को भारी मालूम हुई। आपने फ़रमाया 'हस्बुनल्लाहु निअ़मल्-वकील' कहो।

१७४ क़ियामत का खटका

हज़रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया जिसको खटका लगा वह रात ही रात निकल जायेगा और जो निकल गया वह मन्ज़िल को पहुँच जायेगा। सुन लो अल्लाह का सौदा बहुत गराँ है। सुन लो अल्लाह का सौदा जन्नत[छ] है।

[तिर्मिज़ी]

१७५ मैदाने हश्र

हज़रत आयशः (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है कि लोग क़ियामत में नंगे पाँव और नंगे बदन जमा किये जायेंगे। मैंने कहा या रसूलल्लाह मर्द औरत सब, उनमें एक दूसरे को देखेंगे। आपने फ़रमाया, मुआ़मला ऐसा सख़्त होगा कि किसी को उसकी फ़िक्र न होगी। [बुख़ारी-मुस्लिम]

‡ उस दिन वह ख़बरें देगी।

छ यह सौदा राहतें तलबी और तनें आसानी के साथ नहीं हो सकता इसके लिए जद्दुजिहद और बाज़ औक़ात ख़ून पसीना एक करने की ज़रूरत होती है।

मताअ़ें वस्ल जानाँ बस गरानें सत
गर इँ सौदा बजाँ बूदे च बूदे

उम्मीद व रजा

आयात

क़ुल् या अिबादियल्लजीन अस्रफ़ू अला अन्फ़ुसिहिम् ला तक़्नतू मिर्रह्मत्तिल्लाहि ॥ अिन्नल्लाह यग़्फ़िरुज्जुनूब जमीअन् ॥ अिन्नहु हुवल्ग़फ़ूरुर्रहीमु ।

कह दो ऐ मेरे बन्दो जिन्होंने अपनी जानों पर (कुफ़्र व शिर्क करके) ज्यादती की है अल्लाह की रहमत से नाउम्मीद मत हो। बिल्यक़ीन अल्लाह तआला तमाम गुनाहों को बख़्श देगा। बेशक वह बख़्शने वाला रहमत वाला है। [सू० ज़ुमरि, रु० ६ आ० ५३]

…व हल् नुजाज़ी अिल्लल्-कफ़ूर ।

क्या हम बदला देंगे मगर नाशुकरों को। [सू० सबा, रु० २ आ० १७]

…क़द् ऊहिय अिलैना अन्नल्अज़ाब अला मन् कज्जब व तवल्ला ।

हमारी तरफ़ वहीय की गयी कि उस शख़्स पर अज़ाब है जिसने झुटलाया और मुँह मोड़ा। [सू० ताहा, रु० २ आ० ४८]

…रह्मती वसिअत् कुल्ल शैअिन् ॥ … ।

मेरी रहमत हर चीज़ पर हावी है।

[सू० अड़राफ़ि, रु० १६ आ० १५६]

इटइ सिद्क़ दिल से ला इलाह इल्लल्लाहु कहना और तमाम नबियों और जन्नत व दोज़ख़ को बरहक़ समझना जन्नत के दरवाज़े की कुंजी है

हज़्रत उबादह (र०) बिन सामित से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया जिसने गवाही दी कि ख़ुदा के सिवा कोई माबूद नहीं, वह एक है, उसका कोई शरीक नहीं, और मुहम्मद (स०) उसके बन्दे और उसके रसूल हैं। और हज़्रत ईसा (अ०) अल्लाह के बन्दे, रसूल और उसका कलिमः हैं। उसको मरयम की तरफ़ डाल दिया और उसकी रूह हैं। और जन्नत व दोज़ख़ हक़ हैं। तो अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा। चाहे उसने जो अमल किये हों। [बुख़ारी-मुस्लिम]

मुस्लिम की एक रिवायत में है कि जिसने गवाही दी कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद (स०) उसके रसूल हैं, तो अल्लाह ने उसपर दोज़ख़ हराम की।

हदीस ३ अल्लाह अ़ज़्ज़ व जल्ल का इनआ़म

हज़रत अबू ज़र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह अ़ज़्ज़ व जल्ल का इरशाद है कि जो भलाई करेगा उसको दस गुना सवाब मिलेगा। या उससे ज़ियादः। और जो बुराई करेगा तो उसकी जज़ा उसके मिस्ल होगी या मैं बख़्श दूँगा। और जो मुझसे एक बालिश्त क़रीब होता है मैं उससे एक हाथ क़रीब होता हूँ और जो मुझसे एक हाथ क़रीब होता है मैं उससे दो हाथ क़रीब होता हूँ और जो मेरी तरफ़ चलकर आता है मैं उसकी तरफ़ दौड़कर आता हूँ और जो मुझसे ज़मीन भर गुनाहों के साथ मिले लेकिन मेरा शरीक न ठहराया तो मैं उससे उतनी ही बख़्शिश के साथ मिलूँगा।

[मुस्लिम]

हदीस ४ अल्लाह का शरीक न ठहराने वालों पर जन्नत वाजिब है

हज़रत जाबिर (र०) से रिवायत है कि एक अ़राबी ने नबी (स०) की ख़िदमत में हाज़िर होकर अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह कौन सी दो चीज़ें वाजिब करने वाली हैं§। आपने फ़रमाया, जो इस हाल में मर गया कि अल्लाह के सिवा किसी को शरीक न ठहराया वह जन्नत में दाख़िल होगा। और जो इस हाल पर मरा कि अल्लाह का शरीक ठहराया उस पर दोज़ख़ वाजिब होगी।

[मुस्लिम]

हदीस ५ आँ हज़रत (स०) का ख़ुशख़बरी देना

हज़रत अनस (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ऊँट पर सवार थे और हज़रत मआ़ज़ (र०) आपके पीछे थे। आपने फ़रमाया, ऐ मआ़ज़! अ़र्ज़ किया, हाज़िर हूँ या रसूलल्लाह। फ़रमाया, ऐ मआ़ज़! अ़र्ज़ किया, हाज़िर हूँ या रसूलल्लाह। फ़रमाया, ऐ मआ़ज़! अ़र्ज़ किया, हाज़िर हूँ या रसूलल्लाह। फ़रमाया कोई बन्दः सच्चे दिल के साथ गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मुहम्मद (स०) उसके बन्दे और रसूल हैं। तो अल्लाह ने उसपर दोज़ख़ हराम की। मआ़ज़ ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह! क्या मैं इसकी ख़बर लोगों को दे

§ उस शख़्स को यह तो मालूम था कि दो ख़सलतें जन्नत व दोज़ख़ को वाजिब करने वाली हैं। मगर यह न मालूम था कि वह ख़सलतें कौन-कौन सी हैं।

दूँ, जिससे वह ख़ुश हो जायें। आपने फ़रमाया, नहीं, वह भरोसा करने लगेंगे तो हज़रत मआज़ (र०) ख़ामोश हो गये। लेकिन अपनी वफ़ात के वक़्त अिल्म छुपाने के गुनाह से डर कर लोगों को ख़बर दे दी।

दिल सिद्क़ से[1] 'ला इलाह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाहि' कहना जन्नत में दाख़िल करेगा

हज़रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि ग़ज़वए तबूक[2] के दिन लोगों पर फ़ाक़ों की नौबत आ गयी। लोगों ने अर्ज़ किया, या रसूलल्लाह! हमको इजाज़त दीजिए कि हम अपने ऊँटों को ज़िबह करके खायें और उनकी चर्बी लगायें। आपने इजाज़त दे दी। हज़रत उमर (र०) आये और अर्ज़ किया, या रसूलल्लाह! या रसूलल्लाह! अगर आपने ऐसा किया तो सवारी की कमी हो जायेगी। आप यह कीजिए कि उनके सामानों को मँगवाइये और उसमें उनके लिए अल्लाह तआ़ला से बर्कत की दुआ़ कीजिए। शायद अल्लाह तआ़ला उसमें बर्कत अ़ता फ़रमाये। आपने फ़रमाया, हाँ, आपने एक चमड़ा मँगाया और उसको बिछा दिया; फिर उनके सामानों को मँगाया। कोई एक मुठ्ठी ज्वार लाया, कोई एक मुठ्ठी खजूर, और कोई एक टुकड़ा लाया। इस तरह चमड़े पर थोड़ा-बहुत जमा हो गया। फिर आपने बर्कत की दुआ़ की और फ़रमाया, अपने बर्तनों को भरो। लोगों ने भरना शुरू किया; यहाँ तक कि पूरे लश्कर ने अपने-अपने बर्तन भर लिये और इतना खाया कि सेर हो गये[3], और फिर भी कुछ बच रहा। आपने फ़रमाया, मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद[4] नहीं और मैं उसका रसूल[5] हूँ। जो अल्लाह का बन्दा इन दोनों के साथ अल्लाह से इस हालत पर मिलेगा कि शक करने वाला न हो तो उसके लिए जन्नत वाजिब है। [मुस्लिम]

हज़रत अुतबान (र०) बिन मालिक से रिवायत है कि मैं अपनी क़ौम बनी सालिम को नमाज़ पढ़ाता था। मेरे और उनके दर्मियान एक नाला था। जब बारिश होती थी तो उसको पार करके मस्जिद पहुँचना बहुत मुश्किल मालूम होता था। मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आया और अर्ज़ किया, या रसूलल्लाह! मेरी बसारत[6] कम हो गयी। मेरे और मेरी क़ौम के दर्मियान एक नाला है जो बहता है। जब बारिश आती है तो मुझे उसके पार करने में बड़ी दिक़्क़त

---

१ शुद्ध हृदय से २ तबूक के धर्मयुद्ध में ३ पेट भर गया ४ पूज्य ५ सन्देष्टा, ईश्वर-दूत ६ दृष्टि।

होती है। मैं चाहता हूँ कि आप मेरे घर तशरीफ़ लाकर एक जगह नमाज़ पढ़ाएँ। फिर मैं उसी को अपनी नमाज़ की जगह बना लूँ। आपने फ़रमाया, अच्छा मैं इन्शाअल्लाह आऊँगा। दूसरे दिन रसूलुल्लाह (स०) और हज़रत अबूबक्र (र०) खूब दिन चढ़े तशरीफ़ लाये। रसूलुल्लाह (स०) ने अन्दर आने की इजाज़त चाही। मैंने अर्ज़ किया तशरीफ़ लाइए। आप तशरीफ़ लाये और बैठने से पहले पूछा, अपने घर में नमाज़ के लिए कौन सी जगह तजवीज़ की है। मैंने जिस जगह नमाज़ पढ़ाने का इरादः किया था उसी की तरफ़ इशारः किया। आप खड़े हो गये और तक्बीर[1] कही। हमने आपके पीछे सफ़ें[2] बाँधीं; आपने दो रक्अत नमाज़ पढ़कर सलाम फेरा। मैंने आपके लिए हरीरः तैयार कराया था इसलिए मैंने आपको तशरीफ़ रखने की ज़हमत दी। जब मुहल्ला वालों ने सुना कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मेरे घरों में तशरीफ़ रखते हैं तो लोग आने लगे। इस तरह बहुत लोग जमा हो गये। एक आदमी ने कहा कि मालिक[3] को क्या हुआ, मैं उनको यहाँ नहीं देखता। दूसरे साहब बोले वह तो मुनाफ़िक़ है, उसको अल्लाह और उसके रसूल से कोई मुहब्बत नहीं। आपने फ़रमाया, यह न कहो क्या तुम इसको नहीं देखते हो कि यह ला इलाह इल्लल्लाहु कहता है। और इसकी वजह से अल्लाह की रिज़ा[4] चाहता है। कहा अल्लाह और उसके रसूल ज़ियादः जानते हैं। लेकिन हम तो यही देखते हैं कि उसकी दोस्ती व मुहब्बत और सारा बोलना-चालना मुनाफ़िकों[5] से है। आपने फ़रमाया, जिसने अल्लाह की रिज़ा चाहते हुए ला इलाह इल्लल्लाहु कहा, अल्लाह ने उस पर दोज़ख हराम की। [बुख़ारी-मुस्लिम]

अल्लाह तआला माँ बाप से ज़ियादः शफ़ीक़[6] है

हज़रत उमर (र०) बिन अल्ख़त्ताब से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के ज़माने में कुछ क़ैदी आये; उन क़ैदियों में एक औरत को देखा कि जिस बच्चे को देखती है तो दौड़ती है और उसको उठाकर चिमटा लेती है। आपने फ़रमाया, भला ऐसी चाहने वाली औरत अपने बच्चे को आग में डालने की रवादार हो सकती है? हमने अर्ज़ किया ख़ुदा की क़सम, नहीं। आपने फ़रमाया, अल्लाह को अपने बन्दों पर इससे ज़ियादः शफ़क़त[7] है, जितनी इस औरत को अपने बच्चे से है।

---

१ 'अल्लाहो अक्बर' कहना २ क़तारें, पंक्तियाँ ३ एक सहाबी (सत्संगी) का नाम ४ प्रसन्नता ५ पाखण्डियों ६ दयालु, दोस्त ७ प्यार।

६७ अल्लाह की रह्मत उसके ग़ुस्सा पर ग़ालिब[1] है

हज़्रत अबू हुरैरः ! (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जब अल्लाह तआ़ला ने मख़लूक़[2] को पैदा किया तो किताब में जो उसके पास अ़र्श पर है लिख दिया—बेशक मेरी रह्मत मेरे ग़ुस्से पर ग़ालिब है। और एक रिवायत में है कि [मेरी सबक़त] मेरे ग़ुस्से पर सबक़त ले गयी। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सुना है कि अल्लाह के लिए सौ रह्मतें हैं। निन्नानबे हिस्से अपने पास रक्खे और एक हिस्सा दुनिया में उतारा। उस एक हिस्से की बदौलत मख़लूक़ आपस में मुहब्बत करती है। यहाँ तक कि जानवर अपने बच्चे से अपना खुर इस डर से उठा लेता है कि उसके लग न जाये।

एक रिवायत में है कि अल्लाह के लिए सौ रह्मतें हैं। उसमें से एक हिस्सा जिन व इन्सान, जानवरों और कीड़ों में उतारा गया। उसी के सबब एक दूसरे पर नर्मी करते हैं, एक दूसरे का लिहाज़ करते हैं, और एक दूसरे पर रहम करते हैं, और उसी की वजह से जानवर अपने बच्चों पर नरमी करते हैं। अल्लाह तआ़ला ने रह्मत के निन्नानबे हिस्से क़ियामत के लिए रक्खे हैं। क़ियामत में अपने बन्दों पर उसके ज़रीये रहम करेगा। [मुस्लिम]

एक रिवायत में है कि अल्लाह तआ़ला ने जिस दिन आसमान व ज़मीन को पैदा किया उसी दिन रह्मत को भी पैदा किया। उनमें एक रह्मत ज़मीन है जिसके सबब माँ अपने बच्चों पर रहम करती है और जानवर वग़ैरः एक दूसरे पर। जब क़ियामत का दिन होगा तो वह एक दुनिया की रह्मत भी निन्नानबे रह्मतों में मिला क़र पूरी सौ कर लेगा।

६८ तौबः गुनाह का कफ़्फ़ारः[3] है

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला इरशाद फ़रमाता है—जब बन्दः कोई गुनाह करता है और कहता है, ऐ अल्लाह ! मेरा गुनाह बख़्श दे, तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाता है, मेरे बन्दे ने गुनाह किया और उसको यक़ीन है कि उसका एक रब है जो गुनाह बख़्श भी देता है। और पकड़ता भी है। फिर वह गुनाह करता है और कहता है कि ऐ मेरे रब मुआ़फ़ कर दे।

---

१ अधिक प्रबल २. सृष्टि ३ प्रायश्चित्त।

मुखर रसना—शब्दायमान किंकिणियाँ, मुख-निःसृत ध्वनि, उलुध्वनि (ळू ळ ध्वनि); (श्लेष)। (१४)

बारासन नळ प्राय निषेध अधिप।
बाजिबारे राजि बाद्य सादिङ्क स्वरूप य़े। १५।

सरलार्थ—उस समय द्वारपाल लोग आगन्तुकों को अन्दर जाने से निषेध करने के कारण 'निषेध' के अधिपति नल राजा के सदृश खड़े हुए हैं। नल राजा निषेध (निषध) देश के अधिपति हैं। ये द्वारपाल निषेध अर्थात् वारण या मना करने के अधिपति हैं, फिर बाद्य-समूह के बजने से वे अश्वों से सुशोभित अश्वारोहियों की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। अश्वारोही बाजी (घोड़ों) बारे (समूह) से सुशोभित होते हैं। ये बाद्य बाजि बारे (बजने से) सुशोभित हो रहे हैं। (१५)

वारासन—द्वारपाल; बाजिबारे—घोड़ों से, बजने से; राजि—समूह, शोभा पाकर; सादि—अश्वारोही, घुड़सवार। (श्लेष) (१५)

बन्धुराए चाहुँछन्ति घण्टिमृग परि।
विशिष्ट-भवन-जन्य शम्बरकु धरि य़े। १६।

सरलार्थ—शिकारी के द्वारा बजी घंटी की आवाज सुनकर हिरन जिस प्रकार ताकता रहता है, उसी प्रकार बन्धु राजा इन कन्याओं की 'ळूळू' ध्वनि सुनकर इनकी ओर ताक रहे हैं। वन में शिकारी अतिशय शोभायुक्त वनजात शम्बरों, हिरनों आदि को पकड़ते हैं। उसी प्रकार यहाँ ब्राह्मण कन्याओं ने प्रधान-प्रधान कुलीन व्यक्तियों के घरों से संवर (जल) का संग्रह करके उसे धारण किया। (विवाह-जल गाँव के कुछ संभ्रान्त व्यक्तियों के घरों से संगृहीत किया जाता है। इसे जलोत्तलन कर्म कहा जाता है।) (१६)

बन्धुराए—बन्धु राजा; चाहुँछन्ति—ताक रहे हैं; विशिष्ट-भवन-जन्य शंवर—वनजात विशिष्ट (उत्कृष्ट) सांभर; प्रधान—प्रधान कुलीन भद्र व्यक्तियों के घरों से संगृहीत जल। (श्लेष) (१६)

बन्दिले देवी देवङ्कु परस्परे य़ाइ।
वरकन्या गन्धषिले गन्धपुष्प देइ य़े। १७।

सरलार्थ—जलोत्तलन क्रिया के उपरान्त कन्याओं ने जाकर देव-देवियों की बन्दना की। तिस पर वरकन्या को गन्ध पुष्प आदि देकर मंगलाचार का विधान किया। (१७)

विय़ोग निद्रारे भृत्ये निशा थाउँ य़ामे ।
बुड़ बिहि परभृत पराकृत नामे य़े । १८ ।

सरलार्थ—भृत्य लोगों ने निशावसान के एक प्रहर के पहले जगकर कोकिल के प्राकृत नाम से युक्त 'बुड़' अर्थात् 'कोइलि बुड़' का विधान किया । (नौकरोंने पौ फटने के समय वरकन्या का 'कोइलि बुड़' स्नान-विधान किया ।) (१८)

यामे—एक प्रहर; बुड़—डूब; परभृत—कोकिल (कोइलि—प्राकृत नाम); कोइलिबुड़—वरकन्या का विवाह पूर्व प्रत्पुष-स्नान-विधान । (१८)

विजन स्थाने पूजार लवण चामरी ।
व्रताचारी परि करि चारि सुकुमारी य़े । १९ ।

सरलार्थ—तदुपरान्त सीता आदि चार कुमारियों के प्रति व्रता-चारिणियों के सदृश—एकान्त में लवणचामरी आदि पूजा-विधान किया गया । (१९)

लवण चामरी—लावा-परछन, वर कन्या के परस्पर एक वस्त्र की ओट में प्रथम दर्शन का विधान । (१९)

बेगे य़ाउ दिवस ए वश वरकन्या ।
विरक्त हेउँ ए रक्तवन्ते भानु धन्या य़े । २० ।

सरलार्थ—'शीघ्र ही दिवस का अवसान हो'—इस कामना से वशीभूत होकर जब वरकन्या ने विरक्ति प्रकट की तो यह बात सूर्यदेव ने जान ली और रक्तवर्ण विशिष्ट हो अस्ताचल में जा डूबे । सुतरां वे वरकन्या धन्य हैं जिनकी विरक्ति से (विशेष रक्तिमा से) सूर्य भी रक्तवर्ण विशिष्ट हो जाते हैं । (२०)

व्यासक्त अनुरागरे सविता ए काळे ।
बळिपुष्ट बोलि निज निवासकु चळे य़े । २१ ।

सरलार्थ--इस समय सूर्य को रक्तवर्ण के प्रति विशेष आसक्त होते देखकर 'स्नेह के प्रति विशेष आसक्त हो' यह सबसे बोलकर, कौए अपने-अपने घोंसलों को उड़ गये । (२१)

अनुरागरे—रक्त वर्ण से, स्नेह से; सविता—सूर्य; बळिपुष्ट—कौआ । (२१)

बुड़ाइ कि सिन्धुजळे ताम्रपात्र रवि ।
विभा सीता रामर निकट धाता भावि य़े । २२ ।

सरलार्थ—सूर्य को डूबते देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो यह सोचकर कि सीताराम का विवाह निकट आ गयाा है, विधाता ने रविरूपी ताम्बे के पात्र को समुद्र-जल में डुबो दिया हो । (२२)

उत्प्रेक्षालंकार । (२२)

बारिधिज उदे अङ्क दूर्वादळ भरि ।
बन्दाइब रूपास्थाळी प्राचीनारी धरि य़े । २३ ।

सरलार्थ—उस समय चन्द्रोदय हुआ । चन्द्र को देख ऐसा प्रतीत हुआ मानो पूर्व दिशारूपिणी नारी कलंक रूपी दूब (घास) को चन्द्ररूपी चान्दी की थाली में रखकर उस थाली से रामसीता की वन्दना करेगी । (चन्द्र चान्दी की थाली और तन्मध्यस्थ कलंक दूर्वादल से उपमित है ।) (२३)

वारिधिज—चन्द्र; अंक-दूर्वादल--कलंकरूपी दूबघास । (उत्प्रेक्षा) (२३)

विभवे उत्सव हेला बेनि राजा द्वारे ।
वर्षाऋतु मूर्त्तिमन्ते किवा अनुसरे य़े । २४ ।

सरलार्थ—दशरथ और जनक दोनों राजाओं के द्वारों पर बड़े ठाठ-बाट से उत्सव मनाया गया । ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वर्षा ऋतु मूर्त्तिमती होकर वहाँ उपस्थित हुई । (२४)

वृन्द-वृन्द दिशिले जळद करीवर ।
व्योमपूर्ण स्तनित पट्टह नाद तार य़े । २५ ।

सरलार्थ—दल-दल होकर जाते हुए श्रेष्ठ हस्ती-समूह का दृश्य मेघ-माला के समान दिखाई पड़ा । मेघ-गर्जनतुल्य पट्टह (नगाड़ों) आदि के निनाद से गगन पूर्ण हो उठा । (२५)

जळद—मेघ; करीवर—हस्त्री श्रेष्ठ; स्तनित—मेघगर्जन; पट्टहनाद—नगाड़ों आदि का शब्द । (२५)

विगळित जळधारा य़हिँ दानजळ ।
बज्रनिर्घोष नागरा वादन चहळ य़े । २६ ।

सरलार्थ--हस्तियों की कनपटी से झरता हुआ मदजल (अथवा विवाह के उपलक्ष में ब्राह्मणों के हाथ उठा दिया जाने वाला दान जल) वर्षाधाराओं के सदृश प्रतीत हुआ और बजते हुए नगाड़ों का निनाद बज्र-निर्घोष के सदृश प्रतीत हुआ। (२६)

व्यूह भयाळुहिँ अश्व चञ्चळ हुअन्ति।
वैशम्पायनङ्क चिन्ता मागधङ्क स्तुति ग्रे। २७।

सरलार्थ--नगाड़ों के अत्युच्च निनाद से घोड़े इस प्रकार चंचल हो उठे, जैसे बज्र के निर्घोष से भयातुर जनसमूह चंचल होते हैं। बज्रभय से रक्षा पाने के लिए लोग वैशंपायन मुनि की चिन्ता करके उनका नामोच्चारण करते हैं। उसी प्रकार यहाँ बाद्य-भय से रक्षा के निमित्त चारणों के स्तुति-पाठ का विधान किया गया। (२७)

व्यूह—समूह; मागध—स्तुति पाठ करनेवाले, चारण, भाट। (२७)

वल्मीक नळीज इन्द्रकोदण्ड हाबेळि।
वह्निकणा जात कि खद्योत दिशे झळि ग्रे। २८।

सरलार्थ--इस समय नलियों से उत्पन्न हवाई बान (आतिशबाजियाँ) बाँबी से निकलनेवाले इन्द्रधनुष के सदृश प्रतीत हुए। हवाई बानों से निःसृत चिनगारियों ने जुगनुओं के समान दिशाओं को उज्ज्वल किया। (अर्थात् हवाई आतिशबाजियों के लगने से दिशाएँ उजाली हो गयीं।) (२८)

बल्मीक—बाँबी, बिभोर; नळीज—नली से उत्पन्न; इन्द्रकोदण्ड—इन्द्र-धनुष; हाबेळि—हवाई आतिशबाजी; खद्योत—जुगनू। (२८)

विद्युत चञ्चळ पीत चीराळ प्रचळ।
विभ्रमे चातकपन्ति चूत लोणामाळ ग्रे। २९।

सरलार्थ--पवन से उड़ती हुई पीली पताकाओं का समूह वर्षाकालीन बिजलियों की झलक के समान दिखाई दिया। आमपत्रों की तोरण-मालाएँ पपीहों के इधर-उधर भटकने की तरह दिखाई दीं। (२९)

पीत चीराळ—पीली पताकाएँ; चूत—आम। (२९)

वक शंख दात्यूह मधुरी कंक भेरी।
वर्षाभू टमक नादे दशदिश पूरि ग्रे। ३०।

सरलार्थ—वर्षा के समय बगुलों, पपीहों, कंक पक्षियों तथा मेंढ़कों आदि की बोलियों से दस दिशाएँ भर जाती हैं। वहाँ बजते हुए शंख बगुलों के स्वर, महुवरियाँ पपीहों के स्वर, भेरियाँ कंक-पक्षियों के स्वर एवं डुगडुगियों की आवाज मेंढ़कों के गर्जन के समान प्रतीत हुई। (३०)

दात्यूह—पपीहा; वर्षाभू—मेंढ़क; टमक—टमकियाँ, डुग्गियाँ। (३०)

व्याख्यान शामुक नाद दासी हुळहुळि।
विळसिता इन्द्रगोप वेश्या पाटचोळी ये। ३१।

सरलार्थ—दासियों की उलुध्वनि सीपों के निनाद की तरह सुनाई पड़ी। नृत्यकारिणी वेश्याओं के लाल रंग के रेशमी चोले इन्द्र-बधुओं के सदृश प्रतीत हुए। (३१)

व्याख्यान—कथित, अभिहित; शामुक—सीप; हुळहुळि—शुभकार्य के अवसर पर स्त्रियों के होठों के प्रान्त-भागों में जीभ के संचालन-जनित ध्वनि, (उलूलु शब्दज); इन्द्रगोप—इन्द्रवधू, वीरबहूटी। (३१)

विशद शिळीन्द्र छत्र सहजे दिशिले।
वाणादि जाई युई त सत फुटिगले ये। ३२।

सरलार्थ—वहाँ के सफ़ेद छत्र बरसात में जमीन पर उगनेवाले कुकुरमुत्तों की तरह दिखाई दिये और आतिशबाजियों पर आग लगाते समय उनकी चिनगारियाँ बरसात में खिलने वाले जूही तथा चमेली के फूलों की तरह दिखाई दीं। (३२)

शिळीन्द्र—कुकुरमुत्ता; जाई—चमेलियाँ; जुई—जूही। (३२)

वरहिण नर्त्तक नर्त्तन प्रकाशित।
व्यापे दुर्दिन कुहुक जालिकरे सत ये। ३३।

सरलार्थ—बरसात में मोरों के नृत्य की तरह यहाँ पर नर्त्तकगण नृत्य कर रहे हैं। ऐन्द्रजालिकों के इन्द्रजाल से मेघाच्छन्न दिवस के समान चारों ओर अन्धकार फैल गया। (३३)

वरहिण (बर्हिण)—मयूर-समूह; दुर्दिन—मेघाच्छन्न दिवस, कुहुक—जादू; जालिक—ऐन्द्रजालिक, जादूगर। (३३)

वर्षोपळ पात दाता रजत प्रदान।
बाहार पुर-गिरिरु हेले झस्सैन्य ये। ३४।

सरलार्थ—बरसात में करका पात होता है अर्थात् ओले बरसते हैं। यहाँ दाताओं का (खास करके दशरथ तथा जनक—दोनों राजाओं का) चाँदी-मुद्राओं का दान करकापात के समान प्रतीत हुआ। नगर रूपी पर्वत से झरने के सदृश सैन्य निकले। (३४)

वर्षोपळ—करका, ओले; रजत—चाँदी की मुद्राएँ। (३४)

विबर्द्धन राजमार्ग नदी हेला तहिँ।
विभरण उष्णीष हिण्डीरमान य़हिँ य़े। ३५।

सरलार्थ—सैन्यों रूपी झरनों के द्वारा राजपथरूपी नदी की बृद्धि हुई। सैनिकों के मस्तकों की पगड़ियाँ बाढ़ के समय पानी पर उतरानेवाले फेनों के समान पूर्णाकार में दिखाई पड़ीं। (३५)

उष्णीष—पगड़ियाँ; हिण्डीरमान—फेनोंका समूह। (३५)

वीरतरु पुष्पवन्त होइ समधुप।
बेनिकूळ बेनि पाशे स्थित वृक्ष-दीप य़े। ३६।

सरलार्थ—बरसात में नदी के दोनों किनारों पर भ्रमर-चुम्बित तथा पुष्प-समन्वित अर्जुनवृक्ष शोभित होते हैं। यहाँ पर राजमार्ग के दोनों ओर दीवट दीपों रूपी पुष्पों से शोभित हैं। वे दीवट धुएँ के सहित जलते हुए से दिखाई देते हैं। (३६)

वीरतरु—अर्जुन-वृक्ष; वृक्षदीप—दीपाधार, दीवट, फ़तीलसोज। (३६)

वीचिवेगरे गमन लभिला से शान्ति।
बन्ध सिंहद्वाररे एमन्त व्युतपत्ति य़े। ३७।

सरलार्थ—जिस प्रकार लहरों से युक्त नदी वेग से दौड़ती-दौड़ती बाँध आने पर रुक जाती है, उसी प्रकार लहरों की सी गति से जाते-जाते सैनिकगण भी जनकजी के सिंहद्वार रूपी बाँध पर अटक गये। (३७)

वीचि—लहरें। (३७)

विदेशी पान्थ प्रधान जनतरी जान।
वहन तेजिकले से सदन गमन य़े। ३८।

सरलार्थ—जिस प्रकार विदेशी पथिक नदी को पार करने के बाद नौका छोड़कर अपने-अपने घर या लक्ष्य की ओर चल पड़ते हैं। उसी प्रकार

बरात में आये हुए विशिष्ट व्यक्ति डोलियों आदि यानों का परित्याग करके शीघ्र जनकजी के घर में गये। (३८)

पान्थ—पथिक, राहगीर; तरी—नौका। (३८)

वेश्मस्था मृदुसुलीए निउञ्छाइ अन्न।
बरिले वर शाळके दिशिले तेसन य़े। ३९।

सरलार्थ—अनन्तर दासियों ने पुरस्त्रियों की भाँति वरों की अन्न से वन्दना की। वरों को वरण करते वक्त शालकों द्वारा ऐसा प्रतीत हुआ मानो कुछ श्रेष्ठ व्यक्तियों का स्वागत किया जा रहा हो। (३९)

वेश्मस्था—घर में स्थिता; मृदुसुली—('मृदुशीला' शब्दज)—दासियाँ, दाइयाँ, आयाएँ, निउञ्छाइ—वन्दना की; शाळके—शालक, साले; दिशिले—दीखे; तेसन—उसी प्रकार। (३९)

विवाह स्थानरे वरवेशे बसाइले।
ब्रह्मा आचार्य्य वेदिके य़ुगय़ुग हेले य़े। ४०।

सरलार्थ—उसके बाद वरों को वरवेशों में बिवाह-स्थानों पर बैठाया गया। हर वेदी पर ब्रह्मा तथा आचार्य—इस तरह दो-दो व्यक्ति पुरोधा बन बैठे। (४०)

वेदिके—हर वेदी पर। (४०)

वशिष्ठ शतानन्द, काश्यप कउशिक।
वामदेव गउतम, जावाळि वाल्मीक य़े। ४१।

सरलार्थ—वशिष्ठ-शतानन्द, काश्यप-कौशिक, वामदेव-गौतम एवं जावालि-वाल्मीकि—इस प्रकार चार वेदियों में से प्रत्येक पर दो-दो पुरोहित ब्रह्मा तथा आचार्य बन के बैठे। (४१)

विहि रचित शाळके धुाअइले पद।
विहि अनिळ गमने चमरी विनोद य़े। ४२।

सरलार्थ—पुरोहितों ने विधि-विधानानुसार सालों के द्वारा वरों के पैर धुलाये। तदनन्तर जैसे चमरीमृग पवनगति से क्रीड़ारत होकर आनन्द उपभोग करते हैं, वैसे वर-कन्याओं ने लवण-चामरी (लावा परछन) विधान में परमानन्द भोग किया। (४२)

विदृष्टि अन्तर पाट कुज्झटि वशरे।
विभावसु पद्मिनीर होए परस्परे य़े। ४३।

सरलार्थ—वर-कन्याओं की देखा-देखी न होने के लिए पट्टवस्त्र का व्यवधान (परदा) दिया गया था। कुहरे के कारण सूर्य तथा पद्मिनी लताकी देखा-देखी नहीं हो सकती। उसी तरह सूर्यवंशी रामचन्द्र तथा पद्मिनी-जातीया स्त्री सीता की देखादेखी पट्टवस्त्र-व्यवधान के कारण नहीं हो सकी। (४३)

कुज्झटी—कुहरा; विभावसु—सूर्य। (४३)

बरगिले सुयज्ञोपवीत दूती तहिँ।
विप्रलब्धा होइथिले आणिले बोधाइ ये। ४४।

सरलार्थ—पुरोहितों के द्वारा वरों से मन्त्र-संस्कृत, उत्तम यज्ञोपवीत भेजने के बाद कन्याएँ वेदी पर आयीं। यह देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो विप्रलब्धा नायिकाओं को समझा-बुझाकर, (उनका क्रोध-उपशमपूर्वक) यज्ञोपवीत रूपिणी दूती यहाँ ले आई हो। (४४)

बरगिले—भेजा; विप्रलब्धा—विरहिणी नायिका (नायिकाओं के आठ भेदों में से एक भेद)। (४४)

वाञ्छा-कळ्पद्रुम पाशे कामधेनु मिळे।
वामनेत्रा दक्षिण कराइ बसाइले ये। ४५।

सरलार्थ—कामना-पूरणकारी कल्पद्रुम के पास कामधेनु की उपस्थिति की तरह वरों के पास कन्याएँ आकर उपस्थित हुईं। पुरोहितों ने उन वामलोचना कन्याओं को वरों के दाहिनी ओर बैठाया। (४५)

वसुन्धरा प्राये से अङ्गण नवखण्डे।
विभावरी कि अम्बरे तारापन्ति रुण्डे ये। ४६।

सरलार्थ—जनकजी के भवन का आँगन पृथिवी सदृश है। पृथिवी के नवखण्डों (नौ टुकड़ों) की तरह वह आँगन भी चारवेदियों तथा पाँच अन्तरस्थानों में विभक्त हुआ है। उस आँगन पर नाना मणिमुक्ता-खचित चन्द्रातप (चँदोवा) मनोहर तारका-खचित नभोमण्डल से सुशोभित यामिनी की तरह दिखाई दिया। (४६)

वसुन्धरा—पृथिवी; अंगण—आँगन; नवखण्ड—पौराणिक भूगोल के अनुसार पृथिवी के नौ भाग; यथा—भरतखण्ड, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य और कुश; अम्बर—आकाश, वस्त्र; तारापन्ति—नक्षत्र-समूह, मुक्तापंक्ति। (४६)

दाटले पूर। कीं गंधर्वनगर सविस्तर। रचिलें दिसे परी मिथ्या। ५९ हें वोडंबरीचें लेणें पूर्ण। कीं स्वप्नींचें राज्य-सिंहासन। कीं चित्रींचा हुताशन। ज्वाळा अद्भुत दीसती। ६० कीं दर्पणींचा दिव्य हार। कीं मृगजळामाजी वंध्यापुत्र। शुक्तिका-रजताचें करोनि पात्र। रात्रीस मीन धरीतसे। ६१ नयनांतील पुतळी। गर्भांधें पदरीं धरिली। कीं कल्पांतविजू गिळिली। मशकें केवीं घडे हें। ६२ पांगुळ धांवे अंतराळीं। तेणें आकाशाची साल काढिली। प्रभंजनाची चिंधी फाडिली। साच बोली काय हे। ६३ कीं कुहूचे काळोखें भरिलें। तें दिवा दोहों प्रहरां वाळूं घातलें। कीं उरगाचे पाय बांधिले। सिकता-तंतूकरूनियां। ६४ काढोनि दीपाचा रंग। वस्त्रें रंगवलीं सुरंग। कीं वडवानळामाजी काग। खेळती काय घडे हें। ६५ हें सर्व जैसें असत्य। तैसी माया मिथ्याभूत। साच कीं लटकी इत्यर्थ। ब्रह्मादिका नव्हेची। ६६ मायेचें परम विंदाण।

माया के द्वारा (उत्पन्न) जो समस्त विकार हैं, वे मृगमरीचिका के जल में आयी बाढ़ हैं, (अर्थात् जहाँ वस्तुतः पानी नहीं है, वहाँ बाढ़ कैसी ?) अथवा वे विशाल गन्धर्व-नगर हैं, जो निर्मित तो दिखते हैं, पर होते हैं मिथ्या। ५९ यह सब जादूगर द्वारा निर्मित आभूषण (जैसा) है अथवा सपने में पाया हुआ राज्य-सिंहासन है, अथवा चित्र में अंकित (ऐसी) अग्नि है जिसकी ज्वालाएँ अद्भुत दिखायी देती हैं। ६० अथवा यह दर्पण में दिखायी देनेवाला दिव्य हार है; अथवा कोई वन्ध्या (बाँझ) का पुत्र मृग-मरीचिका (के पानी) में, सींप की चाँदी से बने पात्र में रात के समय मछली पकड़ता हो। ६१ गर्भान्ध ने आँख की पुतली को दामन में धर रखा हो, अथवा मक्खी ने कल्पान्त की बिजली को निगल डाला हो। —यह कैसे हो सकता है ? ६२ (यह ऐसा हुआ मानो) पंगु मनुष्य अन्तराल में दौड़ता है और उसने आकाश का छिलका निकाल लिया, तेज़ हवा की धज्जियाँ बना लीं। क्या यह उक्ति सत्य है ? ६३ अथवा रात के अंधेरे से भरा हुआ वस्त्र दिन में दुपहर के समय सूखने के लिए रखा; अथवा बालू के तन्तुओं से साँप के पाँवों को बाँध दिया; अथवा दीपक के रंग निकालकर (उनमें) वस्त्र अच्छी तरह रंग दिये; अथवा बड़वाग्नि में कौए खेलते हैं—क्या यह (सम्भव) हो सकता है ? ६४-६५ यह सब जैसे असत्य है, वैसे माया मिथ्या है। परन्तु ब्रह्मा आदि की (भी) समझ में नहीं आता कि सचमुच यह सत्य है अथवा मिथ्या है। ६६ माया की

थोरथोरांसी न कळे पूर्ण । तरी मायेची कथा सांगेन । ऐक सावधान श्रीरामा । ६७ जेणें न्यायशास्त्र निर्मिलें पूर्ण । तो गौतम ऋषि परम प्रवीण । त्याचा शिष्य अति सुजाण । गाधि नाम तयाचें । ६८ त्यास चोहों वेदांचें अध्ययन । षट्शास्त्रीं परम निपुण । तेणें केलें दिव्य अनुष्ठान । जाहला प्रसन्न श्रीविष्णु । ६९ मग बोले इंदिरानाथ । प्रसन्न जाहलों माग इच्छित । यावरी तो ब्राह्मण बोलत । काय तें ऐक श्रीरामा । ७० गाधि म्हणे हृषीकेशी । मज दावीं तुझी माया कैशी । तिनें ठकविलें बहुतांसी । मज वेगेंसीं पाहूं दे । ७१ ऐकोनि हांसला नारायण । मायापाश परम दारुण । तोडीं म्हणोनि येती शरण । तूं तीस पाहीन कां म्हणसी । ७२ दिसतें तें अवघें असत्य । हेंची मायेचें रूप यथार्थ । जैसा दोरीवरी सर्प भासत । कीं शुक्तिकेवरी रजत जैसें । ७३ कीं

(ऐसी) परम (अद्भुत) कारीगरी बड़े-बड़ों की पूर्णतः समझ में नहीं आती । फिर भी, हे श्रीराम ! मैं माया की कथा कहूँगा । सावधान होकर सुनो । ६७

जिन्होंने सम्पूर्ण न्यायशास्त्र की रचना की वे गौतम ऋषि परम प्रवीण थे । उनके एक अति सुज्ञानी शिष्य थे । उनका नाम 'गाधि' था । ६८ उन्होंने चारों वेदों का अध्ययन किया था । वे छहों शास्त्रों में परम निपुण थे । (एक समय) उन्होंने दिव्य अनुष्ठान किया, (जिससे) भगवान् विष्णु (उनसे) प्रसन्न हो गये । ६९ तदनन्तर इन्दिरापति श्रीविष्णु (उनसे) बोले—'(मैं) प्रसन्न हुआ; (अतः) इच्छित (वस्तु) माँगो ।' हे श्रीराम ! वह सुनो कि इस पर उस ब्राह्मण ने क्या कहा । ७०

गाधि ने कहा—'हे हृषीकेशी (विष्णु) ! मुझे दिखाओ—अपनी माया कैसी है । (सुनते हैं कि) उसने बहुतों को ठग लिया है । मुझे शीघ्रता से (उसे) देखने दो । ७१ (यह) सुनकर श्रीनारायण हँस पड़े और बोले—'माया का पाश बड़ा दारुण होता है । मैं उसे काटता हूँ—इसलिए (लोग) मेरी शरण में आते हैं । उसे देखने की बात क्यों करते हो ? (देखना क्यों चाहते हो ?) ७२ जो दिखायी देता है, वह समग्र असत्य (आभास) है—माया का यही यथार्थ रूप है । जैसे रस्सी में साँप (का अस्तित्व) जान पड़ता है अथवा सींप में चाँदी का आभास होता है, वैसे (ही वस्तुतः कुछ नहीं होने पर भी) दिखायी देता है कि कुछ है । ७३

खुंट तोचि चोर। भ्रांतासी भासे साचार। जैसें स्वप्नींचें सैन्य अपार। जागृतींत मिथ्या तें। ७४ गाधि म्हणे वैकुंठराया। तूं मिथ्यारूप सांगसी माया। तरी मार्कंडेयऋषिवर्या। ब्रह्मादिकां भुलविलें। ७५ तरी ते मज क्षणभरी। सर्वोत्तमा दावीं नेत्रीं। हांसतसे वैकुंठविहारी। बोल ऐकोन तयाचे। ७६ हरि म्हणे माया देखून। समूळ जासी तूं भुलोन। तुझे कासावीस होतील प्राण। मग कोण सोडवील। ७७ तुझी भ्रंशेल सकळ मती। पडसील महा आवर्तीं। मग गाधि म्हणे जगत्पती। वर निश्चित देईं मातें। ७८ मी कासावीस जेव्हां होईन। तेव्हां तूं मज आठव दे येऊन। तुझें करितांचि नामस्मरण। पुढती भेटें ऐसाचि। ७९ अवश्य म्हणोनि जगन्निवास। जाता जाहला स्वस्थानास। कांहीं एक लोटले दिवस। ऐकें सर्वेशा राघवा। ८० जान्हवीतीरीं अरण्यांत। गाधि राहिला स्त्रियेसहित। एकदां माध्यान्ही आला आदित्य।

अथवा भ्रम में पड़े हुए व्यक्ति को खूँटा ही वस्तुतः चोर मालूम होता है, (लेकिन वस्तुतः वह चोर नहीं है), अथवा सपने में दिखायी देनेवाली अपार सेना, जागृत अवस्था में मिथ्या (सिद्ध) होती है। (वैसे ही माया के प्रभाव से चारों ओर की वस्तुएँ सत्य प्रतीत होती हैं, परन्तु ज्ञान का उदय होने पर विदित हो जाता है कि वस्तुतः उनका अस्तित्व नहीं है।) ७४ (तब) गाधि ने कहा—'हे वैकुण्ठ-राज! तुम माया को मिथ्या रूप बताते हो। फिर उसने मार्कण्डेय जैसे श्रेष्ठ ऋषि तथा ब्रह्मा आदि को कैसे मोहित किया? ७५ इसलिए हे सर्वोत्तम भगवान्! मुझे क्षण-भर के लिए (वह दिखाओ) मेरे नेत्रों से दिखा दो (देखने दो)।' उनके वचन सुनकर वैकुण्ठविहारी श्रीविष्णु हँसते हैं। ७६ (फिर) श्रीहरि कहते हैं—'माया को देखकर तुम पूर्णतः मोहित हो जाओगे। तुम्हारे प्राण व्याकुल हो जाएँगे। फिर तुम्हें कौन मुक्त करेगा? ७७ तुम्हारी समस्त मति भ्रम में पड़ेगी, तुम बड़े भँवर में फँस जाओगे।' तब गाधि ने कहा—'हे जगत्पते! मुझे ऐसा निश्चित वर दो—मैं (गाधि) जब व्याकुल हो जाऊँगा, तो तुम आकर मुझे स्मरण दिलाओगे, नाम स्मरण करते ही तुम मिल जाओगे।' ७८ 'अवश्य, ऐसा ही होगा'—कहकर जगन्निवास श्रीविष्णु अपने स्थान (के प्रति) चले गये। हे सर्वेश श्रीराम! सुनो, कुछ-एक दिन बीत गये। ८०

गंगा के तट पर एक अरण्य में गाधि स्त्री-सहित रहते थे। एक

ऋषि जात स्नानातें । ८१ प्रवेशतां गंगाजीवनीं । मनांत म्हणे माया अझुनी । मज कां न दावी चक्रपाणी । कैसी करणी तयाची । ८२ अघमर्षण करी ब्राह्मण । तों मायेनें मांडिलें विदाण । गाधीस वाटे आलें मरण । व्यथा दारुण जाहली । ८३ तों पातले यमदूत । तिहीं प्राण काढिले त्वरित । यमापाशीं मारीत । गाधि नेला तेधवां । ८४ तों तेथें यम जाचणी दारुण । कुंभीपाकीं घालिती नेऊन । असि-पत्रवनीं हिंडवून । तप्त स्तंभासी बांधिती । ८५ इतुकीं दुःखें विप्र भोगित । परी आपण उभा जान्हवींत । मग तो जन्मला चांडाळयोनींत । कंटज नाम तयाचें । ८६ पंचवीस वर्षेपर्यंत । स्त्रीपुत्र जाहले बहुत । वाटा पाडोन असंख्यात । द्रव्य अपार जोडिलें । ८७ नानापरींच्या हिंसा करी । गोब्राह्मण जीवें मारी । तों तेथें आली महामारी । सर्वही मेलीं

दिन सूर्य दिन के मध्य भाग में आया अर्थात् जब दुपहर हो गयी, तो (वे) ऋषि स्नान के लिए चले गये । ८१ गंगा के पानी में प्रवेश करने पर उन्होंने मन में कहा (सोचा)—चक्रपाणि भगवान् मुझे अब भी माया क्यों नहीं दिखाते ? कैसी उनकी करनी है ? ८२ जब वह ब्राह्मण अघमर्षण (विशिष्ट मंत्र के पाठ के साथ की जानेवाली, वैदिक संध्या के अन्तर्गत जल-प्रक्षेप रूप एक पाप-नाशिनी क्रिया) कर रहे थे, तो माया ने (अपनी लीला दिखाने की) ठान ली । तब गाधि को प्रतीत हुआ कि मौत आ गयी और उसे भीषण व्यथा (अनुभव) हुई । ८३ इतने में यमदूत आ धमके । उन्होंने शीघ्र ही (गाधि के) प्राणों को (खींच) निकाला और गाधि को (तब) पीटते-पीटते वे यम के पास ले गये । ८४ वहाँ तो यम का दारुण उत्पीड़न था । उन्हें ले जाकर (दूतों ने) कुम्भीपाक (नामक नरक) में डाल दिया । (तदनन्तर, जहाँ के पेड़ों के पत्ते तलवार की धार के समान तेज होते हैं, ऐसे) असि-पत्र (नामक) वन में घुमा-फिराकर तप्त खम्भे से बाँध दिया । ८५ वह ब्राह्मण (गाधि) इतने दुःख भोग रहा था, फिर भी (वस्तुतः) स्वयं गंगा में खड़ा था । फिर वह चण्डाल योनि में उत्पन्न हुआ । (तब) उसका नाम 'कण्टज' था । ८६ पचीस वर्षों तक (वहीं रहते हुए) उसके बहुत स्त्री-पुत्र हुए । अनगिनत डकैतियाँ डालकर उसने अपार धन जोड़ लिया । ८७ उसने नाना प्रकार की हत्याएँ कीं; गौओं और ब्राह्मणों को जान से मार डाला । तब वहाँ महामारी फैल गयी और उसमें (उसके) परिवार के सब लोग मर गये । ८८

कुटुंबींचीं । ८८ बाप माय स्त्री सुत । एकदांचि पावलीं मृत्य । कंटज विचारी मनांत । होऊं विरक्त येथोनियां । ८९ रडे कंटज नाम महार । आतां न मिळे म्हणे संसार । मग अतीत होऊन दुराचार । देशोदेशीं हिंडतसे । ९० आला केरळ देशाप्रती । तों तेथींचा मृत्यु पावला नृपती । त्यास नाहीं पुत्रसंतती । मग प्रधान करिती विचार । ९१ मग शुंडादंडीं माळ देऊन । शृंगारूनी हिंडविती हस्तीण । तंव कंटजाचे कंठीं आणोन । माळ घातली अकस्मात । ९२ सहा वर्षें राज्य करून देख । भ्रष्टविले सकळ लोक । घरीं जेऊं घातले सकळिक । सोइरे केले बहुतचि । ९३ एके दिवशीं तो निर्लज्ज । एकला जात बाहेर कंटज । प्रधानादि सेवक सहज । पाठीं धांवती रायाचे । ९४ अवघियांस दटाविलें रागें । म्हणे येऊं नका मज मागें । प्रधान गुप्त पाहती वेगें । कोठें जातो म्हणोनियां । ९५ तों ते गांवींचे अनामिक । परम उन्मत्त मद्यप्राशक । ते वाटेसी भेटले सकळिक । कंटजासी तेधवां । ९६ तिहीं कंटज ओळखिला सत्वरा । म्हणती आमुचा हा सोयरा ।

(उसके) पिता, माता, स्त्री, पुत्र—एकदम मृत्यु को प्राप्त हो गये, तो कण्टज ने मन में विचार किया कि अब से मैं विरक्त हो जाऊँगा । ८९ कण्टज नामक यह चण्डाल रो रहा है—कहता है कि अब घर-गिरस्थी नहीं मिलेगी । फिर उससे दुराचार दूर हो गया (छूट गया) और वह देश-देश घूमता रहा । ९० (घूमते-घूमते जब) वह केरल देश में आ गया, तब वहाँ का राजा चल बसा । उसके कोई पुत्र-सन्तान न थी, तब प्रधानों (मंत्रियों) ने विचार (विनिमय) किया । ९१ फिर सूँड़ में (पुष्प) माला देकर, एक हथनी को सजाकर, वे उसे घुमाते रहे । तब उस हथनी ने सहसा माला कण्टज के गले में डाल दी (पहना दी) । ९२ और देखो, छः साल राज्य करते हुए उसने सब लोगों को भ्रष्ट कर डाला । सबको अपने घर में भोजन कराया और बहुत से लोगों को रिश्तेदार बनाया । ९३ एक दिन वह निर्लज्ज कण्टज अकेला बाहर जा रहा था, तो मंत्री आदि सेवक स्वाभाविक रूप में अपने राजा के पीछे दौड़ते हैं (चलने लगे) । ९४ (तब) उसने क्रोध से सबको डाँटा और कहा—मेरे पीछे मत आओ । तो मंत्री गुप्त रूप में देखते रहे कि वह कहाँ जा रहा है । ९५ तब उस गाँव के वे सब अन्त्यज, जो परम उन्मत्त और मद्यपी थे, रास्ते में कण्टज से मिले । ९६ उन्होंने झट से कण्टज को पहचाना और कहा कि यह (तो)

येणें लोक भ्रष्टविले एकसरा। नाहीं कळलें कोणासी हें। ९७ त्यांसी कंटज दटावी देखा। म्हणे ही गोष्ट बोलूं नका। नाहीं तरी तुम्हां सकळिकां। शिक्षा करीन साक्षेपें। ९८ तें प्रधानवर्गीं ऐकिलें। म्हणती राज्य समस्त बुडविलें। कंटजासी मारून बाहेर घातलें। मग विचारीं बैसले समस्त। ९९ श्रेष्ठीं काढिला शास्त्रार्थ। घ्यावें देहांत प्रायश्चित्त। मग अग्नि प्रवेश समस्त। लोक करिती नगरींचे। १०० प्रधानादि अष्टाधिकारी। स्त्रीपुरुष ते अवसरीं। भस्म जाहले अग्नि-भीतरीं। बाळें नगरीं उरलीं तैं। १०१ ऐसें कंटजें देखिलें। म्हणे थोर पाप मज घडलें। तेणेंही तेव्हां सरण रचिलें। वरी आपण निजेला। १०२ तों अग्निशिखा ते वेळीं। वामांगीं येऊन झगटली। कंटजें हांक फोडिली। उडी घातली खालती। १०३ तों इकडे गाधि ब्राह्मण। बाहेर निघाला हांक फोडून। फोड आला तरतरोन। वामांगासी देखिला। १०४ म्हणे मी गाधि ब्राह्मण। जान्हवींत करितां स्नान। करीत

हमारा सगा है। (परन्तु) इसने सब लोगों को एकदम भ्रष्ट किया--यह किसी को मालूम नहीं हुआ। ९७ (तब) देखो, (कैसे) कण्टज उन्हें डाँटता है और कहता है--यह बात (किसी से) न कहो। नहीं तो मैं तुम सबको अवश्य दण्ड दूँगा। ९८ मंत्रीवर्ग ने यह सुना और कहा--इसने समूचे राज्य को डुबो दिया। फिर उन्होंने कण्टज को (राज्य के) बाहर निकाल दिया। (तदनन्तर) वे सब परामर्श करने बैठे। ९९ श्रेष्ठ पुरुषों ने शास्त्रार्थ निकाला कि (इस पाप के लिए) सब देहान्त प्रायश्चित्त करें। (उसके अनुसार) फिर नगर के सब लोग अग्नि में प्रवेश करते हैं (कर गये)। १०० उस समय मंत्री आदि आठों अधिकारी तथा स्त्री-पुरुष (नागरिक) अग्नि में (जलकर) भस्म हो गये, तो नगर में केवल बच्चे शेष रहे। १०१ कण्टज ने (जब) ऐसा देखा तो कहा (सोचा)--मुझसे बड़ा पाप (घटित) हो गया। उसी ने तब चिता बनायी और वह उसपर लेट गया। १०२ तो उस समय आग की लपट उसके बाएँ अंग में छू गयी, तब कण्टज चिल्ला उठा और नीचे की ओर कूद पड़ा। १०३

त्यों ही इधर (गंगाजल में खड़े) गाधि ब्राह्मण चीखकर (जल में से) बाहर निकल पड़े। उन्होंने बाएँ अंग में (जल जाने के कारण) फूला हुआ फोड़ा देखा। १०४ उसने कहा—मैं गाधि (नामक) ब्राह्मण हूँ। गंगा में

असतां अघमर्षण । दुःखें दारुण भोगिलीं । १०५ सूर्यसुतें मज गांजिले । चांडाळयोनींत जन्मविलें । सहा वरुषें राज्य केलें । लोक भ्रष्टविले सर्वही । १०६ मृत्यु पावले असंख्य जन । जरी हें असत्य म्हणावें स्वप्न । तरी फोड आला तरतरोन । करी रुदन विप्र तो । १०७ विसरला तप अनुष्ठान । नाठवे संध्या वेदाध्ययन । आश्रमासी आला परतोन । चिंतार्णवीं पडियेला । १०८ स्त्री विनवी भ्तारालागून । तुमचे वामांगीं कां झोंबला अग्न । तंव तो विलापें ब्राह्मण । म्हणे माझेनि हें न सांगवे । १०९ तों गाधीचा गुरुबंधु अकस्मात । आला तीर्थें करीत करीत । गाधि तयासी क्षेम देत । म्हणे कृश कां बहुत जाहलासी । ११० तेणें सांगितलें वर्तमान । मज एक पाप घडलें दारुण । केरळ देशीं एक नगर संपूर्ण । बाळेंचि तेथें नांदती । १११ एकाचे घरीं म्यां घेतलें अन्न । मग त्यांसी पुशिलें वर्तमान । ते म्हणती कंटज महार येऊन । ग्राम आमुचा भ्रष्टविला । ११२ समस्तांचे घेऊन प्राण । मग तो गेला येथून । ऐसें पापी नगर तें पूर्ण । तेथें भोजन

स्नान करते समय अघमर्षण करते हुए दारुण दुःखों का भोग किया । १०५ सूर्य-पुत्र यम ने मुझे सताया, चण्डाल योनि में मुझे उत्पन्न कराया, छः साल मैंने राज्य किया और सभी लोगों को भ्रष्ट किया । १०६ (मेरे कारण) असंख्य लोग मृत्यु को प्राप्त हुए । यदि इसे असत्य (अर्थात्) स्वप्न कहें, तो (सत्य यह है कि) फोड़ा फूल (उठ) आया । इस पर वह ब्राह्मण रोता है (रहा) । १०७ वह तप और अनुष्ठान भूल गया । उसे संध्या और वेदों का अध्ययय याद नहीं आ रहा । यह आश्रम में लौट आया । वह तो चिन्ता के सागर में पड़ गया । १०८ स्त्री ने पति से विनम्रता-पूर्वक पूछा—तुम्हारे बाएँ अंग में आग कैसे छू गयी ? तब वह ब्राह्मण विलाप करने लगा । उसने कहा—मुझसे यह कहा नहीं जा सकता । १०९ तब गाधि का गुरु-बन्धु तीर्थ-यात्रा करते-करते अकस्मात् वहाँ आया । उसे स्नेह-पूर्वक गले लगाते हुए गाधि ने पूछा—तुम बहुत कृश (दुबले-पतले) क्यों हुए हो ? ११० (तब) उसने यह समाचार कहा—मुझसे एक दारुण पाप (घटित) हुआ । केरल देश में एक सम्पूर्ण नगर ऐसा है जहाँ केवल बच्चे ही रहते हैं । १११ (किसी) एक के घर में मैंने अन्न ग्रहण किया । फिर उनसे समाचार पूछा, तो उन्होंने कहा—कण्टज (नामक एक) अन्त्यज ने आकर हमारे नगर को भ्रष्ट किया । ११२ सब के प्राण लेकर बाद

घडलें मज । ११३ तो दोष जावया संपूर्ण । द्वादश वर्षें करितों तीर्थाटन । ऐसें तो गुरुबंधु सांगोन । गेला पुढें वाराणसीं । ११४ प्रचीत पहावया समस्त । गेला आपण गाधि तेथ । तों अवघ्या खुणा यथार्थ । प्रत्यया आल्या सर्वही । ११५ आपण जेथें जन्मला होता महार । तेथेंही घेतला समाचार । तंव ते अनामिक सांगती समग्र । कंटज येथेंचि जन्मला । ११६ तेणें सहा वरुषें राज्य करोनी । केरळ नगर भ्रष्टवूनी । मग काळें तोंड घेवोनी । गेला नेणों कोणीकडे । ११७ गाधि आश्रमासी आला परतोन । घेतलें क्षितीवरी घालून । म्हणे आतां कैचें ब्राह्मणपण । गेलों बुडोन रौरवीं । ११८ शोकें कपाळ आदळी क्षितीं । म्हणे मी गौतम-शिष्य विख्यात जगतीं । मज हे कैसी घडली गती । कोणासी स्थिति पुसों हे । ११९ असत्य जरी म्हणावें वहिलें । तरी सर्वही प्रत्ययास आलें । जन्मकर्मदुष्कृत-फळें । पाहोनि आलों स्वनयनीं । १२० सत्य कीं असत्य पूर्ण । मज कोण सांगेल उकलोन । कोणासी मी जाऊं शरण । कैंचें ब्राह्मण्य

में वह यहाँ से चला गया । वह सम्पूर्ण नगर ऐसा पापी है । वहाँ मुझसे भोजन किया गया । ११३ उस दोष के सम्पूर्ण निकल जाने के लिए मैं बारह वर्ष तीर्थाटन कर रहा हूँ । वह गुरु-बन्धु ऐसा कहकर आगे वाराणसी (की ओर) चला गया । ११४ (उसके कथन की) जाँच-पड़ताल कर देखने के लिए गाधि स्वयं वहाँ गये, तो सभी चिह्न यथार्थ रूप में उसे अनुभव हुए । ११५ जहाँ वह अन्त्यज स्वयं उत्पन्न हुआ था, वहाँ भी उसने पूछताछ की, तो उन सभी अनामिकों (चण्डालों) ने कहा--कण्टज वहीं जन्मा था । ११६ उसने छः वर्ष राज्य करके केरल (के एक) नगर को भ्रष्ट किया और न जाने काला मुँह लेकर कहाँ चला गया ? ११७ (तदनन्तर) गाधि आश्रम में लौट आये । ज़मीन पर लोटते हुए वे सोचते हैं-- अब कैसा ब्राह्मणत्व ! मैं (तो) रौरव (नरक) में डूब गया । ११८ वह शोक से (करते हुए) ज़मीन पर सिर पटकते हैं और कहते हैं--गौतम के शिष्य के रूप में मैं जगत् में विख्यात हूँ । मेरी यह कैसी दशा हुई ? मैं इस स्थिति के बारे में किससे पूछूँ । ११९ यदि इसे सचमुच असत्य कहूँ, तो यह सभी तो अनुभव हुआ । जन्म-कर्म तथा पाप के फल अपनी आँखों से देख आया । १२० मुझे यह सुलझाकर कौन कहेगा कि यह सत्य है अथवा पूर्णतः असत्य है ? मैं किसकी शरण में जाऊँ ?

राघवर निकट चापिया बरबाला * सादरे माथात दिला सुवर्णर माला
बरिल रामक आनन्दर नाहि पार * चरणत धरि करिलन्त नमस्कार २६
देखि रामचन्द्रे पाचे सीताक आश्वासि * आपोनार पाशक चपाइला प्रभु हासि
प्रकाशन्त सीता सती राघवर पाशे * चन्द्रर पाशत येन रोहिणी आकाशे २७
लक्ष्मी-नारायण दुइ भैल एकथान * जगतर भैल आसि परम कल्याण
समस्त लोकर भैल परम मंगल * जय जय बुलि जोकारन्त सर्ब्बजन २८
आकाशत थाकि देवगण असंख्यात * पुष्प बरिषिला राम-सीतार माथात
दुन्दुभि बजाया देवे करे जय जय * मुख्य मुख्य अपेस्वरा काछिया नाचय २९
त्रिजगत लोकर मिलिल महोत्सव * दशोदिश छानि मात्र शुनि जयरव
सार्थक लभिल बर माव सीता सती * भैलन्त आनन्द आति जनक नृपति ३०
राजागणे देखे सीता रामक बरिल * बज्रपात भैल येन सम्यके मरिल
सीताक चाहिया सबे तेजिल निश्वास * कि कारणे बरिषेक खाटिलो प्रबास ३१
सीतात नैराश हुया यत राजाचय * महा मर्म्मे सबे तेजिलेक लाज भय
कोपे अपमाने आति प्रज्वलित भैल * जनक राजाक आति गर्ज्जबाक लैल१२३२

राम लक्ष्मणर सैते रजाबिलाकर युद्ध

देखा देखा केने बुढ़ा जनकर काज * माति आनि समस्त राजाक दिला लाज
जीथारीक आनक दिबेक येवे जाने * किसक आमाक दूत पठाइ माति आने१२३३

राघव के निकट पहुँच कर उस श्रेष्ठकन्या ने उनके गले में सोने की माला पहना दी। उन्होंने राम का वरण कर लिया—उनके आनन्द की कोई सीमा नहीं रही। चरण छूकर उन्होंने नमस्कार किया ॥ १२२६ ॥ इसके पश्चात् रामचन्द्र ने सीता जी को आश्वस्त किया। प्रभु ने हँसकर अपने पास बिठा लिया। सती सीता राम के बगल में यों शोभा पा रही हैं मानों चन्द्र के बगल में रोहिणी शोभा पा रही है ॥ १२२७ ॥ लक्ष्मी और नारायण दोनों एक स्थान पर हो गये। संसार का बड़ा कल्याण हुआ। सभी लोगों को बड़ा मंगल हुआ। सब लोग जय-जय की ध्वनि करने लगे ॥ १२२८ ॥ असंख्य देवता आकाश में स्थित होकर राम-सीता के सिर पर पुष्प-वर्षा करने लगे। दुन्दुभि बजाते हुए देवता जय-जयकार करने लगे। मुख्य-मुख्य अप्सराएँ सुसज्जित हो नाचने लगीं ॥ १२२९ ॥ त्रिलोक के लोग महोत्सव मनाने लग गये। दशों दिशाओं में जय-शब्द सुनायी पड़ने लगा। सती सीता माता को सार्थक वर प्राप्त हुआ। राजा जनक अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १२३० ॥ राजाओं ने देखा कि सीता ने राम का वरण कर लिया। उनपर मानों बज्र आ गिरा और वे सचमुच मर गये। सीता को देखकर सब लोगों ने ठंडी साँस ली। किस कारण उन लोगों ने सालभर से प्रवास में क्लेश उठाया ॥ १२३१ ॥ जितने राजा थे सभी सीता से निराश हुए; तो सभी ने बड़े दुख से लज्जा और भय त्याग दिये। क्रोध और अपमान से वे तमतमा उठे और राजा जनक पर गरज पड़े ॥ १२३२ ॥

राम-लक्ष्मण के साथ समस्त राजाओं का युद्ध

देखो भला इस बूढ़े जनक का काम देखो, बुलाकर सारे राजाओं को लज्जित किया। जब जानता था कि बेटी को किसी और को ही देना है तो उसने दूत भेजकर आखिर बुला क्यों भेजा ॥ १२३३ ॥ राजर्षि होते हुए भी यह बड़ा ही निर्बोध है।

राजऋषि हुया भैल परत अज्ञान * बर बर राजाक दिलेक अपमान
धरि आन बुढ़ाक सकले मान सारो * चाहो कोने राखे आक बेढ़ि सबे मारो ३४
तेवेसे हियार शाल गुचिब आमार * कपट जपट भांगो रामन बुढ़ार
आमाक आनिया दुख दिल बरिषेक * सबाके बंचिया सीता टामक दिलेक ३५
नाहिके बुढ़ार दोष केहो बोले बाणी * किसक मारिबे खोजा आहांक नजानि
बिचारि चाहिले दोष केवले कन्यार * करिलेक आशाभंग सकले राजार ३६
आति निदारुणी कन्या कठिन हृदय * सबाको बंचिया शिशु छवाक बरय
माणिक एरिया काछ करिलेक सार * एइक आने निब हुनु आगत आमार ३७
यत राज्यभार भार्या पुत्र एरि आश * एइर निमित्ते मरो खाटिया प्रबास
महाकोप करि उठि बोले कतो जने * धरि आन आंफालिया मारोहो एखने ३८
सीताक मारिबे चाहो राखे कोन बीर * केहो जने बोले दोष नाहि जानकीर
कैर हन्ते आसिल छवाल मन्दबुद्धि * आमार भार्य्या निबे चास कात सुधि ३९
हेनसे अबध्य सब जीवन जानय * मत्त सिंहसमूहक हाते हेम्पोचय
जला जुइर माजत फरिंग झास करे * जाम्प दिया पार हुइबे खोजय सागरे ४०
जीवन्त यमर मुखे परि तोले हास * वेखा केनमत इटो छवालर सास
बर बर राजागण आछो सावधाने * पिसिया मारिबो आभि ताहाक नजाने ४१
एकोके नजाने आति शिशु अल्पमति * सीताक निबेक देखो काहार शकति
प्राणे येवे बर्त्तिबेक एरोक सीताक * नुहि तेवे भालमते नपठाइनो ताक ४२

इसने बड़े-बड़े राजाओं का अपमान किया है। बूढ़े को सब लोग पकड़ कर लाओ और उसका सम्मान समाप्त करो। देखें, कौन इसकी रक्षा करता है, सब लोग इसको घेर कर मारो ॥ ३४ ॥ तभी मेरे मन का काँटा दूर होगा। इस छोटे-से बूढ़े की धोखा-धड़ी तोड़ दो। इसने मुझे बुलाकर साल-भर कष्ट दिया। सब लोगों को वंचित कर सीता राम को दे दी ॥ ३५ ॥ किसी ने कहा, बूढ़े का कोई दोष नहीं, बिना जाँच-पड़ताल किये क्योंकर उसे मारोगे। यदि विचार कर देखो तो दोष केवल कन्या का है। उसने सभी राजाओं की आशा भंग की ॥ ३६ ॥ यह कन्या बड़े ही कड़े मन की और निर्दय है। सबको वंचित कर इस बालक का वरण कर रही है। माणिक्य को त्याग कर काँच को कैसे सारवस्तु समझती है। इसको भला मेरे सामने दूसरा कोई कैसे ले जायेगा ॥ ३७ ॥ राज्य का भार, स्त्री-पुत्र सभी छोड़ कर इसी की आशा में इसी के निमित्त प्रवास में कष्ट उठाते रहे। कितने ही लोग अत्यन्त क्रोध से उठ कर बोले, पकड़ कर ले आओ और यहाँ पटक कर मारो ॥ ३८ ॥ सीता को मारना चाहूँ तो कौन वीर उसकी रक्षा कर सकता है। कोई कहता है कि जानकी का कोई दोष नहीं। जाने कहाँ से एक दुष्ट बालक आ गया और मेरी भार्या को ले लेना चाहता है ॥ ३९ ॥ ऐसा वह अपने जीवन को अवध्य समझता है। वह तो मत्त सिंह-समूह के सम्मुख मात्र नेवले के समान है। जलती हुई आग में पतिंगे टूट पड़ते हैं। छलाँग मार कर पार करने के लिए समुद्र ढूँढ़ते हैं ॥ ४० ॥ जीते-जागते यम के चंगुल में पड़कर भी यह हँसता है। देखो, भला इस बालक का साहस कितना है! हम बड़े-बड़े राजा सावधानी से हैं। हम लोग उसे पीसकर मार डालेंगे, यह वह नहीं जानता ॥ ४१ ॥ यह एक को भी नहीं जानता है, अभी अल्पबुद्धि बालक ही है। देखता हूँ कि किसकी शक्ति है जो सीता को ले जाये। अगर प्राणों से बचना चाहता है तो सीता को छोड़ दे वर्ना इसको कुशल से जाने नहीं दूँगा ॥ ४२ ॥ कितने ही दुष्ट राजा अहंकार करने लगे, देखने-भालने की

कतो दुष्ट राजागणे करे अहंकार * चाहिबे नलागे आक मुछरिया मार
चाहो आक मारन्ते राखय कोन जन * एहि बुलि उठिला सकले राजागण ४३
ससैन्ये धाइलेक हाते अस्त्र शस्त्र तुलि * धरमार बुलि आति करे हुलस्थूलि
हेन देखि महाभये नृपति जनक * आथे बेथे पलाइ गैला ऋषिर माजक ४४
मिथिलार लोक वशोदिशक पलाइल * देखि रामचन्द्रे हासि लक्ष्मणक चाइल
देखियो लक्ष्मण राजासकलर टाइ * उठा झांटे समस्तरे दर्प करो छाइ ४५
सिंहक जोकावे आसि शृगालर पाले * तार होज होज ठाइ लगायो सकले
रामर आदेश बाणी दुनिया लक्ष्मणे * प्रणामि रामक डठिलन्त तावक्षणे ४६
मारो आजि राजागण दारुणय समरे * बान्धिला अक्षय तण पिठिर उपरे
प्रचंड धनुक बामहाते तुलि धरि * धाइलन्त मृगक येन प्रमत्त केशरी ४७
आइस बुलि राव तेजिलन्त बीरबर * सागरर ढउ येन राखिल काखर
सिंह येन शशार आगत भैल थिव * समस्त राजार देखि डरि गैल जीव ४८
करिलन्त टंकार धनुत पाक दिया * राजा समूहर भये चमकिल हिया
हासिया लक्ष्मणे शर बरषिबे लैला * निरन्तरे राजा फुटि जर्ज्जरित भैला ४९
उरु शिर नासिका ललाट मुख काणे * बाह बक्ष स्थल गल फुटिल सन्धाने
पेट पिठि शालिलेक आंजरे पांजरे * छेदिलेक हाथ भरि लक्ष्मणेर शरे ५०
कारो माज कंकालत छिंडिलन्त बाणे * परिया बागरे कतो आधा काटा माने
करिलन्त लंडभंड लक्ष्मणर बाणे * कदलौ बनक येन पाइलन्त पवने ५१

आवश्यकता नहीं, इसको मरोड़-मरोड़ कर मारो। इसको मारना चाहूँ तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है। यह कह कर सारे राजा उठकर खड़े हो गये ॥ ४३ ॥ हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर अपनी सेना के साथ वे दौड़ पड़े। पकड़ो-मारो, यह शब्द करते हुए वे काफी कोलाहल मचाने लगे। ऐसा देखकर राजा जनक बड़े भय से ऋषियों के बीच में भाग गये ॥ ४४ ॥ मिथिला के लोग दशों दिशाओं में भाग खड़े हुए। यह देखकर रामचन्द्र ने हँस कर लक्ष्मण की ओर देखा। लक्ष्मण ! इन राजाओं का बढ़-चढ़ कर बातें करना देखो। उठकर झटपट इन सभी का घमण्ड चूर करो ॥ ४५ ॥ गीदड़ों का झुण्ड आकर सिंह को तंग कर रहा है। इनकी हों-हों को ठिकाने से लगा दूँ। राम का आदेश-वाक्य सुनकर लक्ष्मण तत्क्षण राम को प्रणाम कर उठ खड़े हुए ॥ ४६ ॥ आज राजाओं को भयंकर युद्ध में मारूँगा—ऐसा सोच कर उन्होंने पीठ पर अक्षय तूण बाँध लिया। बायें हाथ में प्रचण्ड धनुष उठा लिया, मानों मद-मत्त सिंह मृग की ओर लपका हो ॥ ४७ ॥ वीरवर लक्ष्मण ने आओ कह कर सब राजाओं को ललकारा, मानों समुद्र की लहरों को लंगर ने सँभाला। सिंह मानों खरगोश के सामने आकर स्थित हो गया। उन्हें देखकर सारे राजाओं के प्राण उड़ गये ॥ ४८ ॥ धनुष को घुमाते हुए उन्होंने टंकार शब्द किया, जिसे सुनकर राजाओं के समूह का मन चौंक पड़ा। लक्ष्मण हँसकर बाण बरसाने लगे, बाणों से बिंध कर राजा लोग जर्जर हो गये ॥ ४९ ॥ बाणों का निशाना साधकर मारने से राजाओं के जाँघ, सिर, नाक, माथा, मुख, कान, बाँह, सीना और गले छिद गये। पेट-पीठ अंजर-पंजर सब छिद गये। लक्ष्मण के बाणों से हाथ-पैर भी कट गये ॥ ५० ॥ किसी की कमर बाण से छिन्न हो गयी। कितने ही अधकटी दशा में पीड़ा से छट-पटा रहे हैं। लक्ष्मण के बाणों ने चारों ओर भाग-दौड़ मचा दी, मानों पवन को केले के वृक्षों का वन मिल गया हो ॥ ५१ ॥ लक्ष्मण का काम देखकर सभी को बड़ा विस्मय हुआ। सभी लोगों ने शाबाश-शाबाश कहकर उनकी प्रशंसा की। बालक

लक्ष्मणर कर्म्म देखि परम विस्मय * साधु साधु बुलि सब्बंजने प्रशंसय
शिशुमति हुया कर्म्म करिलन्त भाल * कतो बोले नोहे शिशु एन्ते यमकाल ५२
शरे फुटि आति बर बर राजाचय * क्रोधे ज्वलि गैला आठु बाहु कामोरय
छावागोटे एत बर करिले आमाक * एकेबारे धाइलेक सब राजाजाक ५३
चतुरंग सेनागण धाइलेक लगत * राहुति दिलेक चुटि उठि घोटगत
हस्ती स्कन्धे चड़ि साजे माहुत सकले * बेगे रथ गति करि रथीसब चले ५४
पदाति कटके वाजु धरि पाटोवारि * धाते क्रोध करि बारु खाण्डाक झंकारि
धनुशर धरि धावे धानुकी सकल * नसहे धरणी खंड करे टलमल ५५
एकेबारे धावे मुख्य मुख्य राजागण * कटाक्ष नाहिके चाहि आछन्त लक्ष्मण
करे धर मार सेना सागर सङ्काश * हासन्त लक्ष्मणे एको नाहि भय त्रास ५६
धनु धरि राजा सबे टंकार करिल * पृथिवी आकाश दिश शबदे पूरिल
ढालिलेक लक्ष्मणक शर बरिषणे * पर्ब्बतक येन आवरिला मेघगणे ५७
नानाविध बाण बरिषय अबिच्छेद * देखि देवासुर नर मुनि करे खेद
निदारुण राजागण परम दुर्ज्जय * मारिबेक लक्ष्मणक बुलि भैल भय ५८
रामर कनिष्ठ बीर लक्ष्मण कुमार * रणत सुजान आतिशय अनिर्ब्बार
राजागणे शर बरिषय यत यत * खान खान करिया काटय आकाशत ५९
समस्ते शरक छन्न करिला लक्ष्मणे * शिशिर शुषिल येन रविर किरणे
शरचय बिनाशि लक्ष्मणे अनन्तरे * गोटे गोटे राजाक ताड़िला निज शरे ६०
शर छोटे फुटि महाकोप करि मने * लक्ष्मणक मध्य करि बेढ़िला तेखने
एकेश्वर लक्ष्मण अनेक राजागण * रामचन्द्र देखन्ते बिषय भैल रण ६१

होते हुए भी इसने काम अच्छा किया। किसी ने कहा, यह बालक नहीं—यह तो भयंकर यम है ॥ ५२ ॥ बहुत बड़े-बड़े राजा बाणों से छिदकर क्रोध से अपने हाथ-पैर दाँतों से काटने लगे। मामूली बालक ने हम लोगों की यह दशा कर दी। एक साथ सारे राजा टूट पड़े ॥ ५३ ॥ उनके साथ उनकी चतुरंग सेना भी दौड़ पड़ी घुड़सवार घोड़े पर सवार हो दौड़ पड़े। हाथियों के कन्धों पर सारे महावत सुसज्जित होने लगे। जितने सारथी थे, वे अपने रथ वेग से चलाने लगे ॥ ५४ ॥ पैदल सेना ढूह की आड़ लेकर खड्ग को झनझनाते हुए क्रोध से आगे दौड़ी। सारे धनुर्धर धनुष और बाण लेकर दौड़ पड़े। धरती यह सहन नहीं कर सकी, डगमगाने लगी ॥ ५५ ॥ मुख्य मुख्य सारे राजा एक साथ दौड़ पड़े। लक्ष्मण ने उनको कटाक्ष-मात्र भी नहीं देखा। समुद्र के समान सेना मारो-मारो कहने लगी। लक्ष्मण हँसने लगे, उनको जरा भी भय-त्रास नहीं हुआ ॥ ५६ ॥ धनुष थाम कर राजाओं ने टंकार शब्द किया। धरती, आकाश और दिशाएँ शब्द से भर गयीं। लक्ष्मण पर उन्होंने इस प्रकार बाणों की वर्षा की मानों बादलों ने पर्वत को ढक लिया ॥ ५७ ॥ वे निरन्तर कितने ही प्रकार के बाण बरसाने लगे। यह देखकर देव-असुर, नर, मुनि आदि खेद करने लगे। ये राजा बड़े ही दुर्ज्जन व निर्दय हैं। लक्ष्मण को ये मार डालेंगे, ऐसा भय होने लगा ॥ १२५८ ॥ राम का कनिष्ठ भाई वीरवर लक्ष्मण संग्राम में अतिशय अचूक योद्धा है। राजा जितने भी बाण बरसाते, उनको वह आकाश ही में काट कर गिराने लगा ॥ ५९ ॥ सारे बाणों को लक्ष्मण ने ध्वंस कर दिया, मानों रवि की किरणों ने ओस सोख ली। बाणों को नष्ट करने के बाद लक्ष्मण ने एक-एक राजा को अपने बाणों से मारा ॥ ६० ॥ छुटते हुए बाणों से बिधकर मन में महा क्रोध करते हुए राजाओं ने लक्ष्मण को बीच में करके घेर लिया।

उठिला तेखने कोप करिया मनत * सीताक थैलन्त विश्वामित्रर पाशत
नमस्कार करि रामे बुलिला ऋषिक * तोमार हातत समर्पिलो जानकीक ६२
शिष्यगण समन्तिते राखिबा सीताक * शरे हानि समरत मारो राजाजाक
राम हाते धनु धरि पिठित चोखर * पवन संचारे लाग लैला लक्ष्मणर ६३
जनक नृपति आसि चतुरंग दले * राम लक्ष्मणर लाग लैला कौतूहले
एके लक्ष्मणर रणे नाइ भये भीत * रामे लग पाइल गैया जनक सहित ६४
एक थान हुया पाचे तिनि बीरबर * पंच लक्ष राजा समे करन्त समर
आम्फाल करिला तिनिजने आतिशय * तिनिरो आन्दोले महीमंडल कम्पय ६५
करिलन्त सिंहनाद महा भयंकर * त्रास हुया कम्पिल सकले चराचर
तिनि महाबीरे धनु धरि खरतर * नलक्षय केहो केतिक्षणे करे शर ६६
यत यत शर प्रहारिला राजाजाक * पथते कांटिल तिल सम करि ताक
पाचे तिनि शर करि छानिल गगन * रात्रि येन भैल नाहि रबिर किरण ६७
अबिच्छेदे मेघे येन करे बरिषण * सहिमते शर प्रहारिला तिनिजन
निरन्तरे राजागणे फुटि शरचोटे * परम बिह्वल भैला सेपको नोढोके ६८
बोम्बाले रूधिर बहे शरीर ढाकिया * सेनागण सकले भागिल फाट दिया
शरे फुटि राजागणे उठिल किटाया * ज्वलिल पावक येन घृत दान पाया ६९
धनु धरि टंकारिला बीरनाद करि * कर्ण ताल हानिल कम्पिल वसुन्धरी
करिलेक निरन्तरे शर बरिषण * भैल अन्धकार ढाकि रबिर किरण ७०

लक्ष्मण अकेला और राजा बहुत सारे, रामचन्द्र ने जब यह देखा तो मन में दुखी हो गये ।। ६१ ।। तब रामचन्द्रजी मन में कोप करते हुए उठे। जानकी को विश्वामित्र के पास रख दिया। राम ने नमस्कार कर ऋषि से कहा, तुम्हारे हाथों में जानकी को सौंप रहा हूँ ।। ६२ ।। अपने शिष्यों के साथ सीता की आप रक्षा करना। बाण मारकर सारे राजाओं को मैं मारता हूँ। बायें हाथ में धनुष थामकर और पीठ पर तरकस बाँधे पवन की गति से वे लक्ष्मण के पास पहुँचे ।। ६३ ।। अपनी चतुरंग सेना के साथ जनक आकर राम लक्ष्मण के साथ हो गये। एक तो लक्ष्मण युद्ध से कोई भयभीत नहीं, फिर उसको राम-सहित जनक का संग भी मिल गया ।। ६४ ।। तीनों वीरवर एक साथ होकर फिर पाँच लाख राजाओं से युद्ध करने लगे। तीनों भयानक रूप से उछले। तीनों के आन्दोलन से पृथ्वीमंडल काँपने लगा ।। ६५ ।। उन्होंने महाभयंकर सिंहनाद किया। सारा चराचर (संसार) भय से काँप उठा। तीनों महावीर प्रचण्ड धनुष लेकर यों बाण चलाने लगे कि किसी ने भी नहीं देखा कि कौन कितने बाण चला रहे हैं ।। ६६ ।। राजाओं के समूह ने जितने भी बाण चलाये, उनको पथ में ही काट कर तिल बराबर कर दिया। बाद में तीनों ने बाण चालकर आकाश को यों ढक दिया कि सूर्य की किरणें छिप गयीं, मानों रात्रि आ गयी हो ।। ६७ ।। मानों मेघ से निरन्तर वर्षा हो रही है, इस प्रकार तीनों ने बाणों की वर्षा की। बाणों के निरन्तर प्रहार से राजा विह्वल-से हो गये—उनसे लार भी घूंटते न बना ।। ६८ ।। शरीर-भर से सोते की तरह खून निकलने लगा। सारी सेना भाग खड़ी हुई। बाणों से बिंधकर राजा अपने बचाव में अस्त्र लेकर सन्नद्ध हो गये, मानों घी पाकर अग्नि जल उठा हो ।। ६९ ।। उन्होंने वीरनाद कर धनुष टंकारा। कान बहरे हो गये और पृथ्वी काँप उठी। उन्होंने निरन्तर बाणों की वर्षा की। सूर्य की किरणें ढक गयीं और अन्धेरा छा गया ।। ७० ।। बड़े-बड़े बाणों से तीनों वीर घायल हुए। खून बहने लगा और उनके शरीर स्थिर नहीं रहे।

महाशर चोटे फुटिलन्त तिनिबीर * बहवे रुधिर थिर नुहिके शरीर
ब्रद्ध राजा जनक भैलन्त अचेतन * शरे लाल काल आति भैलन्त लक्ष्मण ७१
रामो आशकत हुया थाकि कतोक्षण * कोपे प्रज्वलित भैला येन हुताशन
बज्रसम धनुखानि नाम हाते धरि * बहुबार फुराइलन्त चक्राकार करि ७२
परम आटोपे कोपे कटिल टंकार * त्रैलोक्यर लोकर लागिल चमत्कार
पंचलक्ष राजाक धाइलन्त कोप करि * मृग देखि धाइल येन प्रमत्त केशरी ७३
देखिया रामक राजागण भैला भय * कुपित यमक देखि येन प्रजाचय
पाक दिया धनुखानि करिया कुंडली * घोर शरचय प्रहारिला महाबली ७४
दारुण सन्धाने राजागणे तेजे प्राण * ढाकिल बिदिश दिश हानि कुशबाण
घोरतर आटास तेजिल भयंकर * कर्णत हानिल ताल समस्त लोकर ७५
निरन्तरे लोक रहि आछिल यथात * महाभये फुरि फुरि पटिल तथात
भै गैल तबध लोक येन बज्रपाते * कदली बनक येन निदलिल बाते ७६
रामशरे फुटि राजागण समुदाय * भैल अचेतन धारे तेज बहि जाय
काहाको माजते काटि करिल दुखान * कतो राजागण मरि गैल यमथान ७७
राघवर शरचय परम प्रचण्ड * दीघल बर्त्तुल स्थूल येन यमदण्ड
आकर्ण पूरिया टानि करन्त प्रहार * हस्ती घोरा रथपति काटिला अपार ७८
करिलन्त रामचन्द्रे दुर्धोर समर * रुधिरे बहिल नदी महा भयंकर
कतो शुनि देखि हेन राम बिपरीत * पलाइ राजा प्रजागण हुया भयभीत ७९

वृद्ध राजा जनक अचेत हो गये। बाणों से लक्ष्मण का शरीर रक्तमय और पीड़ा से स्याह पड़ गया ॥ ७१ ॥ कुछ देर तक राम भी अशक्त बने रहे। फिर क्रोध से तमताते हुए जलती हुई अग्नि के समान बन गये। बायें हाथ में बज्र के समान धनुष को पकड़कर बहुत बार उन्होंने उसको चक्राकार घुमाया ॥ ७२ ॥ बड़े ही दर्प और क्रोध से उन्होंने धनुष पर टंकार किया। त्रैलोक्य के लोग आश्चर्य करने लगे। गुस्से में वे पाँच लाख राजाओं की ओर दौड़ पड़े, मानों मृग को देखकर प्रमत्त सिंह दौड़ पड़ा हो ॥ ७३ ॥ राम को देखकर राजाओं को इस प्रकार भय हुआ, जिस प्रकार कुपित यमराज को देखकर प्रजा भयभीत होती है। धनुष को चक्कर लगाकर और उसको नवा कर महाबली राम ने भीषण बाणों से प्रहार किया ॥ ७४ ॥ उनके अचूक शर-सन्धान से राजाओं ने अपने प्राण दे दिये। कुश के बने बाणों से दिशा-विदिशाएँ सभी ढक गयीं। भयंकर व घोर शब्द फूट पड़ा। सारे लोगों के कान बहरे हो गये ॥ ७५ ॥ जहाँ पर भी जो व्यक्ति था, वह भीषण भय से चक्कर खाकर वहीं गिर पड़ा। लोग मानों गाज गिरने से भौंचक्का हो गये हों। केले के वन को मानों पवन ने रौंद दिया हो ॥ ७६ ॥ राम के बाणों से बिंध कर राजाओं का समूह अचेतन हो गया। उनके शरीरों से रक्त की तेज धारा बहने लगी। किसी को बीच से काट कर दो टुकड़े कर दिये। कितने ही राजा मर कर यम के घर पहुँच गये ॥ ७७ ॥ राम के बाण बड़े ही प्रचण्ड हैं मानों लम्बे, गोलाकार और मोटे यमदण्ड हों। कान तक धनुष खींचकर वे प्रहार करते और असंख्य हाथी, घोड़े और रथपतियों को मार डालते ॥ ७८ ॥ रामचन्द्र ने घोर युद्ध किया। खून से महा भयंकर नदी बहने लगी। कितना ही देखा-सुना, किन्तु यह रण कुछ विचित्र ही है। राजा-प्रजा सभी भयभीत हो भागने लगे ॥ ७९ ॥ बाप-बेटा, कोई भी ठहर न सके, भय से भाग खड़े हुए। सारी दिशाओं में बस 'गिरा-गिरा' शब्द सुनने को मिलता। महाराज शुभदत्त ने जो

बापे पोवे नसम्बरे लवरे भयत * गिर गिर मात्र शुनि समस्त दिशत
पलाया प्रजा देखि शुभदत्त महाराज * राघवक धाइले कोपे संग्रामर माज ८०
रामे शुभदत्तक धाइलन्त कोपमने * हस्तीक देखिया येन धाइला पंचानने
दुयोबीरे धनु धरि करन्त आस्फाल * दुइहानो आन्दोले आति जाय भूमिचाल ८१
धनुक टंकारि दुयो प्रहारिला बाण * दुयो शर आकाशत भैल एकथान
शरत परिया शर बह्नि ज्वलि गैल * सहि बह्नि ज्वलि दुयो शर भस्म भैल ८२
पाचे रामे प्रहारिला दशपाट शर * शुभदत्त दश शर काटिला रामर
आन दश शरे भेदिलेक राघवक * दुर्ज्जय शरीर रामे सहिला शरक ८३
शर पाया राघवर क्रोध ज्वलि गैला * कुरिपाट शर तूण हन्ते बाछि लैला
गुणत चड़ाया टानि आनि कर्णमाने * शुभदत्त नृपतिक हानिल सन्धाने ८४
बाज हुया गैला शर परि हृदयत * आरो तिनिपाट भेदिलन्त ललाटत
ध्वजगोट काटि सारथिर लैला प्राण * चारि घोरा मारि भांगिलन्त रथखान ८५
धनुखान काटिलन्त मरि क्षुरबाण * कृपायुत हुया तार नगैल पराण
लालकाल हुया आति रामर शरत * आधामरा हुया पलाइ गैला शुभदत्त ८६
हेन देखि शतधनु राजा कोपमने * नाइस बुलि तार लाग लैलन्त लक्ष्मणे
सुमित्रार तनय प्रचण्ड धनुर्द्धर * करिलन्त सिंहनाद आति भयंकर ८७
दिश पाश आकाश पृथिवी कम्पि गैला * महा मनत्रासे रिपुगण भय भैला
मृगपाल शुनि येन सिंहर आटास * प्राण राखि शत्रुगण पलाइ दिश दिश ८८
देखि कोप करि शतधनु बिपरीत * रथे चड़ि लक्ष्मणर आगे उपस्थित
भूमित लक्ष्मण रथे शतधनु बीर * लागिल दारुण रण रथी बिरथीर ८९

प्रजा को भागते हुए देखा तो संग्राम के बीच क्रोध से टूट पड़ा ॥ ८० ॥ राम भी क्रोधित हो शुभदत्त की ओर दौड़ पड़े मानों हाथी को देखकर सिंह टूट पड़ा हो। दोनों वीर धनुष थामे टंकार करने लगे। दोनों के आन्दोलन से भूचाल-सा आ गया ॥ ८१ ॥ दोनों ने धनुष पर टंकार कर बाणों का प्रहार किया। दोनों बाण आकाश में एक स्थान पर पहुँच गये। बाण से बाण टकराने से आग जल उठी। उसी आग से जल कर दोनों बाण भस्म हो गये ॥ ८२ ॥ इसके पश्चात् राम ने दस बाणों का प्रहार किया। शुभदत्त ने राम के दसों बाण काट गिराये। और दस बाणों से उसने राम को बींध दिया। अपना दुर्जय शरीर लिये राम ने उन बाणों को सह लिया। ८३ ॥ बाण खाकर राम का क्रोध जल उठा। उन्होंने तरकस से बीस बाण चुन लिये। प्रत्यंचा पर चढ़ा कर उन्होंने उसे कान तक खींचा, फिर शुभदत्त राजा पर निशाना साध कर फेंका ॥ ८४ ॥ बाण शब्द करते हुए जाकर शुभदत्त के हृदय पर पड़े। तीन और बाणों ने उसके माथे को भेदा। ध्वजा को काटकर उसने सारथी के प्राण ले लिये। चारों घोड़े मारकर रथ को चूर्ण कर दिया ॥ ८५ ॥ क्षुरबाण चलाकर उसके धनुष को काट गिराया, कृपावश ही उसके प्राण नहीं लिये। राम के बाणों से वह लाल और काला हो गया। अधमरा-सा होकर शुभदत्त भाग खड़ा हुआ ॥ ८६ ॥ यह देखकर राजा शतधनु ने 'आ जाओ' कहा तो लक्ष्मण ने उसका मुकाबला किया। सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण प्रचंड धनुर्धर है। उसने भयंकर सिंहनाद किया ॥ ८७ ॥ आकाश पृथ्वी और चारों दिशाएँ सब काँप उठे। भीषण त्रास से शत्रु भय-भीत हो गये। सिंह का गर्जन सुनकर हिरणों के झुण्ड के समान शत्रुगण प्राण लेकर चारों ओर भागने लगे ॥ ८८ ॥ यह देखकर शतधनु को बड़ा क्रोध आया। रथ पर सवार होकर

देखि राजा जनकर मने नसहय * मातिया बोलन्त पुत्र शुनियो अजय
रथ साजि जाण्टे लक्ष्मणर लैयो लाग * ताते चड़ि शत्रु मारन्तोक महाभाग ९०
हुयोक सारथि रथी हैबन्त लक्ष्मण * करिया समर भारियोक रिपुगण
मइ लाग लैबो चतुरंग दले साजि * राजासकलक रणे जिनियोक आजि ९१
अजय कुमारे शुनि पितृर बचन * दशगोटा घोड़ारे साजिल रथखान
आति चमत्कार करिलन्त रथबर * बान्धिला बिजय ध्वज रथर उपर ९२
नाना अस्त्र शस्त्रचय निबन्धिया थैल * बायुबेगे गैया लक्ष्मणर लाग लैल
लक्ष्मणक बुलिलन्त बचन बिनय * मोहोर अजय नाम जनक-तनय ९३
चड़ियोक रथे मइ सारथि तोमार * करियोक लीलाये शत्रुक बुन्दामार
लक्ष्मणे शुनिया पाचे बाणी अजयर * डेव दिया चड़िलन्त रथर उपर ९४
प्रकाशन्त लक्ष्मण रथत हुया थिव * राजासकलर देखि उड़ि गेल जीव
पवन संचारे रथ फुरांत अजय * नमनिय रथबेगे पृथिवी काम्पय ९५
धूलाये ढाकिल रण--धरणीसकल * पाचे रथखान थिर करि महाबल
राखिलन्त निया शतधनुर पाशत * लक्ष्मणक शतधनु देखिया आगत ९६
आति आड़म्बरे साज भैला युजिबाक * दुयो महाबीर धनु धरि दिला पाक
दुयो दुइको शर प्रहारन्त एकेबारे * आकाशत चले शर विद्युत संचारे ९७
दुइरो शर बरिषणे ढाकिल गगन * भैल अन्धकार नाहि रबिर प्रसन्न
सकले आकाशखान देखि शरमय * सुरासुर नर मुनि भैल महाभय ९८

वह लक्ष्मण के सम्मुख जा उपस्थित हुआ। लक्ष्मण भूमि पर और वीर शतधनु रथ पर, इस प्रकार रथी और बिना-रथी में घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ ८९ ॥ यह देखकर राजा जनक का मन न सह सका। पुकार कर उन्होंने अपने पुत्र से कहा, अजय, झट रथ सजाकर लक्ष्मण के पास ले आओ। उस पर सवार होकर यह महाभाग शत्रु का निधन करें ॥ ९० ॥ तुम सारथी बनना, लक्ष्मण रथी होंगे। युद्ध कर शत्रुओं को मारना। मुझसे सुसज्जित चतुरंगिनी सेना लेना और सारे राजाओं को आज युद्ध में पराजित करना ॥ ९१ ॥ पिता के वचन सुनकर कुमार अजय ने दस घोड़ों से रथ को सजाया। श्रेष्ठ रथ को अति चमत्कारपूर्ण बनाया। रथ के ऊपर विजय-ध्वज भी बाँध दिया ॥ ९२ ॥ उसमें विभिन्न अस्त्र-शस्त्र ढंग से रख दिये। फिर वायु की गति से लक्ष्मण के पास पहुँच गया। लक्ष्मण से उसने सविनय यह वाक्य कहा कि मेरा नाम अजय है, मैं जनक का पुत्र हूँ ॥ ९३ ॥ तुम रथ पर सवार हो जाओ, मैं तुम्हारा सारथि हूँ। खेल-खेल में शत्रु का ध्वंस कर डालो। इसके बाद अजय की बात सुनकर लक्ष्मण उछल कर रथ पर चढ़ गये ॥ ९४ ॥ लक्ष्मण रथ पर स्थिर बैठे दिखायी पड़ने लगे, उन्हें देखकर सारे राजाओं के प्राण उड़ गये। पवन-गति से अजय रथ को घुमाने लगा। आँखों से ओझल हो जानेवाले रथ के वेग से पृथ्वी काँपने लगी ॥ ९५ ॥ सारी रण-भूमि धूल ने ढक ली। इसके पश्चात् उसी महाबली ने रथ को स्थिर कर शतधनु के पास ले जाकर खड़ा कर दिया। शतधनु ने लक्ष्मण को आते देखा तो—॥ ९६ ॥ बड़े आडम्बर से जूझने के लिए तैयार हो गया। दोनों महावीरों ने धनुष पकड़कर घुमाया। दोनों ने एक साथ ही दोनों पर बाण से प्रहार किया। आकाश में विद्युत्-गति से बाण चलने लगे। दोनों के बाणों की वर्षा से आकाश ढक गया। अँधेरा छा गया और सूर्य उज्ज्वल न रहा। सारे आकाश को बाणों से ढका देखकर सुर, असुर, नर, मुनि सभी अत्यन्त भयभीत हो गये ॥ ९८ ॥ दोनों एक-दूसरे के बाणों से निरन्तर बिंध से रहे।

अध्यासनो अपवाद करतां, ऊगरे जे रूप,
ते तमो सत्य स्वरूप छो, ब्रह्मांड केरा भूप । ३७ ।
श्रीरामने गुरुए कह्युं, ते ज्ञानसिंधु अपार,
में मंदबुद्धिए करी, किंचित् कर्यो विस्तार । ३८ ।
अध्यात्मज्ञान गुरु थकी, सांभळ्युं श्रीरघुवीर,
त्यारे अंतर्लक्षमां गई वृत्ति, थया पोते स्थिर । ३९ ।
समाधिस्थ थई ठर्या, निज रूपमां निरवाण,
समाधि थई रामने ते, एक आसन जाण । ४० ।
अष्टादश दिन वही गया, नव जुए बोले राम,
समाधिमां भूली गया अवतार कारण काम । ४१ ।
त्यारे राय दशरथ थया दुःखिया शोचे कौशिक मुन्य,
सहु सभा चिंतातुर थई, बोल्या विश्वामित्र वचन । ४२ ।
हे वसिष्ठ रामने बोलावो तो, सरवेने थाये सुख,
राय दशरथ करे चिंता, पामे छे घणुं दुःख । ४३ ।
वसिष्ठ वळता राम पासे, आवी बोल्या वचन,
रघुवीर राजाधिराज हावे, उघाडो लोचन । ४४ ।

अध्यासन का अपवाद करके जो शेष रहता है, वह (हे श्रीराम !) तुम वही सत्य-स्वरूप और ब्रह्माण्ड के राजा हो । ३७ । गुरु वसिष्ठ ने श्रीराम को वह ज्ञान-रूपी अपार सागर बता दिया । (गिरधर कवि कहते हैं कि) मन्दबुद्धि मैंने किंचित् विस्तार कर लिया । ३८ । श्रीरघुवीर राम ने (इस प्रकार) गुरु से अध्यात्म ज्ञान सुना, तब उनकी वृत्ति अन्तर्लक्ष्य में (पैठ) गयी (और) वे स्वयं स्थिर हो गये । ३९ । निश्चय ही वे अपने आत्म-रूप में समाधिस्थ होकर रहे, श्रीराम की समाधि (अवस्था) हो गयी । उन्हें एक-आसन समझो । ४० । (इस स्थिति में) अठारह दिन व्यतीत हो गये । (इस अवधि में) श्रीराम न देखते हैं—न बोलते हैं । समाधि (अवस्था) में अपने अवतरित होने का कारण और कार्य भूल गये । ४१ । तब राजा दशरथ दुखी हो गये । विश्वामित्र भी चिन्तित हो गये । समस्त सभा चिन्तातुर हो गयी, तो विश्वामित्र ने (यह) वचन कहा । ४२ । हे वसिष्ठ! श्रीराम को बुलावो तो सबको सुख होगा । राजा दशरथ चिन्ता कर रहे हैं, वे बहुत दुःख को प्राप्त हो रहे हैं । ४३ । (तदनन्तर) वसिष्ठ मुनि मुड़ते हुए श्रीराम के पास आकर यह बात बोले, हे राजाधिराज रघुवीर राम ! अब (अपने) नेत्र खोलो । ४४ । चंचलता

तमो ज्ञान समाधिरूप छो विक्षेप आव्रणरहित,
भगवंत निज गुणवंत छो सच्चिदानंद सहित । ४५ ।
हवे यज्ञकरण करो जईने, असुरवधनुं काज,
देव बंधी पड्या छे ते छोडावो महाराज । ४६ ।
एम घणां वचन गुरुए कह्यां त्यारे उठ्या थई सावधान,
लोचन उघाडी मधुर हासे हस्या श्रीभगवान । ४७ ।
प्रदक्षिणा करीने नम्या, बे मुनिने तेणी वार,
राजा दशरथ हरख पाम्या, थया जयजयकार । ४८ ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

जयजयकार थयो तदा, पछे स्नान दान बहु आचर्यां,
राजा मुनिवर बंधु साथे, श्रीरामे भोजन कर्यां । ४९ ।

* * *

(भ्रम अथवा मन की व्यग्रता) के आवरण से मुक्त (रहित) होकर तुम ज्ञानयुक्त समाधि-रूप में हो। तुम अपने गुणों से युक्त और सच्चिदानन्द-सहित भगवन्त हो। ४५। अब (ऋषियों के) यज्ञकार्य में जाकर असुरों के वध का कार्य सम्पन्न करो। देव बन्दी होकर (पड़े) रहे हैं। हे महाराज! उन्हें छुड़ाओ। ४६। इस प्रकार गुरु वसिष्ठ ने बहुत बातें कहीं तब सावधान होकर श्रीराम उठ गये। भगवान् श्रीराम ने आँखें खोल लीं, और वे मधुर भाव से हँस दिये। ४७। उस समय उन्होंने प्रदक्षिणा करके मुनि वसिष्ठ का नमन किया। (यह देखकर) राजा दशरथ आनन्द को प्राप्त हो गये। (तब श्रीराम का) जयजयकार हो गया। ४८।

तब जयजयकार हो गया। तदनन्तर श्रीराम ने स्नान करके बहुत दान दिया। (फिर) राजा दशरथ, श्रेष्ठ मुनियों, तथा बन्धुओं सहित श्रीराम ने भोजन किया। ४९।

* * *

अध्याय—२५ (गंगोत्पत्ति-वर्णन)

राग सामेरी

श्रीराम लक्ष्मण सत्वर थया, धर्यां वस्त्र आभूषण सार,
माथा धनुष लेई आज्ञा मागी, रायनी तेणी वार। १।
गुरुने चरणे नमी चाल्या, विश्वामित्रनी साथ,
रामवियोगने दुःखे करी, थया व्याकुळ अवधीनाथ। २।
वळावी आव्या गंगा सुधी, सुमंत ने वसिष्ठ राय,
पछे रामलक्ष्मण वीर, विश्वामित्र साथे जाय। ३।
रथ मांहे बेसी परवार्या, मुनि सहित बंन्यो वीर,
वायुवेगे रथ चलाव्यो, आव्या गंगातीर। ४।
श्री गंगाजीमां स्नान कर्युं मध्याह्न संध्याकर्म,
पछी नावथी ते ऊतर्या, रथमांहे बेठा पर्म। ५।
रघुवीर पूछे मुनिने, ते गंगानी उतपत्य,
क्यां थकी आवी कोण लाव्युं? कहो मुजने सत्य। ६।
श्रीरामनां वायक सुणी, बोल्या विश्वामित्र वचन,
उत्पत्ति कहुं गंगा तणी, रघुवर धरज्यो मन। ७।

अध्याय—२५ (गंगा-उत्पत्ति-वर्णन)

श्रीराम और लक्ष्मण तैयार हो गये, उन्होंने सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों को धारण किया। उस समय उन्होंने तरकस और धनुष लेकर राजा से आज्ञा माँगी। १। गुरु वसिष्ठ के चरणों का नमन करके वे विश्वामित्र के साथ चल दिये। (इधर) श्रीराम के वियोग के दुःख से राजा (दशरथ) व्याकुल हो गये। २। वसिष्ठ, राजा दशरथ और सुमन्त उन्हें गंगा नदी तक पहुँचाकर (बिदा करके लौट) आये। तदनन्तर वीर राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ (आगे) चल देते हैं। ३। मुनि (विश्वामित्र) के साथ दोनों वीर रथ में विराजमान हो चले। वायु गति से रथ चला दिया और वे गंगाजी के तट पर आ गये। ४। उन्होंने श्रीगंगाजी में स्नान किया; मध्याह्न काल को संध्या कर्म किया। फिर वे नाव से (गंगा पार) उतर गये और रथ में बैठ गये। ५। श्रीरघुवीर राम ने मुनि विश्वामित्र से उस गंगा नदी की उत्पत्ति पूछी। (उन्होंने पूछा)—वह कहाँ से आ गयी? उसे कौन लाया? हे मुनि! मुझे सत्य (वृत्तान्त) कहो। ६। श्रीराम का (यह) वचन (प्रश्न) सुनकर विश्वामित्र यह (बचन) बोले—'हे रघुवीर! मैं गंगा की उत्पत्ति

एक समे श्रीमहादेवजीए, कर्यो पूर्वे जाग,
त्यारे मळ्या सरवे देवता, विष्णु विधि महाभाग । ८ ।
कैलासमां सहु आविया, मोटा मळ्या मुनिजन,
दीक्षा लेई महादेव बेठा, थवा मांड्यो जग्न । ९ ।
त्या देव मुनिवर सिद्ध चारण, लोकपति सहु जेह,
ब्रह्मा विष्णु आदि सुर, यज्ञमां बेठा तेह । १० ।
पूर्णाहुति पूजा समे, आवियां उमिया त्यांहे,
शणगार अद्‌भुत चीर चोळी, धर्यां अंग ज मांहे । ११ ।
त्यारे वायु वायो ते समे, उमिया करे पूजन,
सती अंगथी अंबर खस्युं, ने थयुं ऊघाडुं तन । १२ । १२ ।
ते अंग जोई उमिया तणुं, विधि थया विह्‌वळ मन,
कामातुर परमेष्ठि पोते, भान भूल्या तन । १३ ।
कुदृष्टिए जोयुं विधाता, दीठुं सरवे एह,
त्यारे देव मुनिवर विष्णु शिव, सहु कहेवा लाग्या तेह । १४ ।
अरे ब्रह्मा तमो अहींथी, ऊठी बेसो दूर,
तमे कुदष्टि करी सती उपर, थया पापी पूर । १५ ।

(की कथा) कहता हूँ । मन लगाओ (मनःपूर्वक सुनो) । ७ । पूर्वकाल में एक समय श्रीशिवजी ने (एक) यज्ञ सम्पन्न किया । तब महाभाग श्रीविष्णु, ब्रह्मा तथा सब देवता उपस्थित हो गये । ८ । सब महान ऋषि कैलाश में आ गये—वहाँ मिल गये, उपस्थित हो गये । दीक्षा ग्रहण करके श्रीशिवजी बैठ गये । उन्होंने यज्ञ आरम्भ किया । ९ । वहाँ देव, मुनिवर, सिद्ध, चारण, सब लोकपति, ब्रह्मा, विष्णु आदि देव यज्ञ (स्थान) में बैठ गये । १० । पूर्णाहुति और पूजा के समय वहाँ उमाजी आ गयीं । उन्होंने अद्‌भुत साज-शृंगार, वस्त्र, चोली अंग में धारण किया (था)। ११ । तब उस समय हवा चली । (इधर) उमाजी पूजन करती हैं । तब (हवा से उन) सती के अंग पर से वस्त्र खिसक गया और उनका शरीर निरावरण हो गया । १२ । उमाजी के उस अंग को देखकर ब्रह्माजी मन में व्याकुल हो गये । वे परमेष्ठी ब्रह्मा कामातुर हो गये (और) देह-भान भूल गये । १३ । विधाता (ब्रह्मा) ने (उमाजी को) बुरी दृष्टि से देखा, यह सबको दिखायी दिया । तब देव मुनिवर, विष्णु, शिव सब उनसे यों कहने लगे । १४ । 'हे ब्रह्माजी, तुम यहाँ से उठ (जा) कर दूर बैठो । तुमने सती उमाजी पर बुरी दृष्टि की (बुरी दृष्टि से देखा), तुम बहुत पापी हो गये । १५ । (यह सुनकर) प्रजापति ब्रह्मा मन में बहुत

प्रजापति पस्ताय छे, घणी लाज आणी मन,
देव मुनिवर विष्णु साथे, बोल्या दीन वचन । १६ ।
हवे शिक्षा द्यो मुंने सर्व मळी, अनुग्रह करो स्वामिन,
सरवे मळी पछे विचार्युं बोल्या न्याय वचन । १७ ।
अरे विधि सरवे तीरथनुं, सहु तत्त्व केरुं सार,
ते मेळवी करो स्नान त्यारे, थशो शुद्ध अपार । १८ ।
पछे ब्रह्माए मेळव्युं सरवे, तीरथ केरुं सार,
सहु तत्त्वकेरुं तत्त्व लेई, निचोवी काढ्युं वार । १९ ।
पवित्र वस्तु जेटली, औषधि पावन जेह,
एम सार सरवे तणुं लेईने, भर्युं कमंडळ तेह । २० ।
पछे स्नान कीधुं प्रजापति, पावन थया तेणी वार,
सहु दोष दूर थयो तदा, वरतियो जयजयकार । २१ ।
पछी स्नान करतां जळ वध्युं ते, कमंडळ मोझार,
विधि लेई गया ने सत्य लोके, राखियुं शुभ ठार । २२ ।
केटला दिवस गया पछी, हरि थया वामन रूप,
बळीरायने घेर आविया, भूदान आप्युं भूप । २३ ।

लज्जा लाते (अनुभव करते) हुए पछताते हैं। वे देवों, मुनिवरों, और श्रीविष्णु से (यों) दीन वचन बोले । १६ । 'हे मुनिवरो ! अब (मुझे) सब मिलकर दण्ड दो। हे स्वामी ! (मुझ पर) अनुग्रह करो।' अनन्तर सब ने मिलकर विचार किया और न्याय (संगत) वचन कहा । १७ । 'हे विधाता ! सब तीर्थों और सब तत्त्वों का सार मिलाकर (इकट्ठा कर उसमें) स्नान करो, तो तुम बहुत ही शुद्ध हो जाओगे' । १८ । फिर ब्रह्मा ने सब तीर्थों का सार इकट्ठा किया। सब तत्त्वों का तत्त्व लेकर, (उन्हें) निचोड़कर पानी निकाल लिया । १९ । जितनी पवित्र वस्तुएँ हैं, जो-जो पवित्र औषधियाँ हैं, उन सबका इस प्रकार सार लेकर उन्होंने कमंडल भर लिया । २० । अनन्तर (उसमें) स्नान करके प्रजापति ब्रह्मा उस समय पावन, शुद्ध हो गये। (उनका) सारा दोष दूर हो गया; तब जय-जयकार हो गया । २१ । स्नान करने के पश्चात् वह समस्त जल कमंडल में लेकर ब्रह्मा सत्यलोक में गये (और उसे) उन्होंने पवित्र स्थान पर रख दिया । २२ । कितने ही (बहुत) दिन बीत गये तो बाद में श्रीविष्णु वामन रूप (में अवतरित) हो गये। वे बलिराज के घर आ गये; राजा ने उन्हें भूमि दान में दी । २३ । तब श्रीविष्णु पृथ्वी को भरने (व्याप्त करने) के लिए विश्वरूप हो गये। (अर्थात्) श्रीमहाराज विष्णु

त्यारे त्रिविक्रम थया विश्वरूपे, पृथ्वी भरवा काज,
विराट रूपे विस्तर्या, बळी छळ्यो श्री महाराज । २४ ।
वामपद पाताळ, दक्षण, सत्य लोक ज ज्यांहे,
ते चरण जोई विष्णु तणो, विधि हरखिया मनमांहे । २५ ।
पेला कमंडळमां जळ हतुं जे, सार केरुं सार,
ते जळे विष्णुचरण विधिए पखाळ्यो तेणी वार । २६ ।
ते जळ घणुं विस्तार पाम्युं, कहेता न आवे पार,
प्रजापतिए करी पूजा, थयो जयजयकार । २७ ।
ते चरणजळ अति थयुं पावन, पड्युं गंगा नाम,
विष्णु पदना स्पर्शथी वाध्युं अधिक अभिराम । २८ ।
जेम मुमुक्षु मळे मुक्त गुरुने थाय पूरण काम,
एम विष्णुपद नखस्पर्शी जळ, थई पावन गंगा नाम । २९ ।
विष्णुचरणजा एम थयां, रह्यां सत्यलोक ज मांहे,
घणी स्तुति ब्रह्माए करी, फळ अमित महिमा ज्यांहे । ३० ।
एम प्रगट गंगाजी थयां, रह्यां ब्रह्मलोक मोझार,
हावे पृथ्वी उपर आव्यां ज्यम, तेनो करुं विस्तार । ३१ ।

विराट् रूप में विशाल हो गये और उन्होंने बलिराजा को छल लिया (धोखा दिया) । २४ । (उनका) बायाँ पाँव पाताल में और दायाँ पाँव (जहाँ) सत्यलोक (है उसी) में था । श्रीविष्णु के उन चरणों को देखकर ब्रह्मा मन में आनन्दित हो गये । २५ । सारों का सार जो पहला जल कमंडल में था, उस जल से उस समय विधाता ने श्रीविष्णु के चरणों का प्रक्षालन किया (धोया) । २६ । वह जल बहुत वृद्धि को प्राप्त हो गया—उसका पार कहने में नहीं आता । प्रजापति ने (श्रीविष्णु के चरणों का) पूजन किया । (तब) जय-जयकार हो गया । २७ । वह चरण-जल अति पावन हो गया । उसका नाम 'गंगा' पड़ गया । श्रीविष्णु के पद-स्पर्श से वह जल अधिक सुन्दर हो गया । २८ । जिस प्रकार मुमुक्षु (मुक्ति का अभिलाषी) मुक्त गुरु से मिलता है और (उससे) पूर्णकाम हो जाता है, उसी प्रकार श्रीविष्णु के चरण-नख के स्पर्श से गंगा-जल पावन होकर गंगा नामक नदी (भी) पवित्र हो गयी । २९ । इस प्रकार गंगाजी 'विष्णु चरणजा' (श्रीविष्णु के चरणों से उत्पन्न) हो गयीं । वे सत्यलोक ही में रहीं । (फिर) ब्रह्मा ने बहुत स्तुति की, जिसका फल एवं माहात्म्य अपरिमित है । ३० । इस प्रकार गंगाजी प्रकट (उत्पन्न) हो गयीं; और

वलण (तर्ज़ बदलकर)

विस्तार करुं ज्यम आव्यां गंगा, पृथ्वीतळ मोझार रे,
विश्वामित्र कहे रामने, सुणो दशरथराजकुमार रे। ३२।

ब्रह्म (सत्य) लोक में रहीं। वे जिस प्रकार पृथ्वी पर आ गयीं, उसका विस्तार (पूर्वक वर्णन) मैं अब करता हूँ। ३१।

विश्वामित्र श्रीराम से कहते हैं—'हे दशरथकुमार श्रीराम! सुनो, जिस प्रकार गंगाजी पृथ्वी-तल में (पर) आ गयीं, उसका विस्तार (पूर्वक वर्णन) मैं करता हूँ'। ३२।

* * *

अध्याय—२६ (भागीरथ के साथ गंगागमन)

राग मारु

बोल्या कौशिक सुणो रघुराय, कहुं पावन पुण्यकथाय,
पूर्वे तमारा कुळमांहे, थया सगर भूपति त्यांहे। १।
तेने राणीओ बे शुभ-मन, ऋषिवचन थकी थया तन,
एक राणीने साठ हजार, एकने थयो एक कुमार। २।
नाम असमंजस अभिराम, साठ सहस्त्रनां कहे कोण नाम?
राये सगर सुधरमी अपार, अश्वमेध आरंभ्या सार। ३।
नव्वाणुं थया पूरण ज्यारे, शतमो अश्व मूक्यो त्यारे,
इंद्रने थई चिंता मन, मारुं लेशे इंद्रासन। ४।

अध्याय—२६ (भगीरथ के साथ गंगागमन)

विश्वामित्र ऋषि ने कहा—'हे रघुराज! सुनो। मैं (गंगा के बारे में एक) पवित्र और उत्तम फलदायी कथा कहता हूँ। पूर्वकाल में तुम्हारे कुल में सगर नामक (एक) राजा हो गये। १। उनके शुभमना (पवित्र मनवाली) दो रानियाँ थीं, जिनके (किसी) ऋषि के (आशिष) वचन के फलस्वरूप पुत्र (उत्पन्न) हो गये। एक रानी के साठ हज़ार पुत्र हो गये, तो एक (दूसरी) के एक (मात्र)। २। उस पुत्र का सुन्दर नाम था—असमंजस। अन्य साठ हज़ार पुत्रों के नाम कौन बताए? अत्यधिक सद्धर्मी सगर राजा ने सुन्दर अश्वमेध यज्ञों का आरम्भ किया। ३। जब

आव्यो इंद्र अदृश्य ते ठार, तेणे हरण कर्यो तोखार,
पूरव सागर कपिलाश्रम, तप आचरे पूरण ब्रह्म । ५ ।
तप भंग करे जन जेह, भस्म थाय बळीने तेह,
ते ठेकाणे बांधी तोखार, गयो सुरपति स्वर्ग मोझार । ६ ।
पुत्र सगरना साठ हजार, खोळे अश्वने ठारोठार,
स्वर्ग मृत्यु ने पाताळ, गिरि सरिता सर वनजाळ । ७ ।
महाजोद्धा वीर अभंग, वज्र सरीखां जेनां अंग,
खणी पृथ्वी अपार अघात, तेना सिंधु थया छे सात । ८ ।
सहु खोळीने थाक्या एह, नव जड्यो यज्ञवाजी तेह,
एवे मळिया नारद मुन्य, तेनी साथे बोल्या वचन । ९ ।
पूर्व सिंधुनी तीरे सार, कपिलाश्रम बांध्यो तोखार,
एवुं कही गया मुनि स्वर्ग मांहे, सगरात्मज आव्या त्यांहे । १० ।
दीठो अश्वने तेने स्थान, मुनि बेठा धरे छे ध्यान,
दीठो अश्व बांधेलो ज्यारे, बोल्या क्रोध करीने त्यारे । ११ ।

निन्यानबे यज्ञ पूर्ण हो गये, तो उसने सौवें यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया। (तब) इन्द्र को मन में यह चिन्ता (अनुभव) हुई कि यह मेरे इन्द्रासन (इन्द्र-पद) को लेगा । ४ । इन्द्र उस स्थान पर अदृश्य रूप में आया और उसने (उस) घोड़े का अपहरण कर लिया। पूर्व समुद्र (के तट) पर कपिल मुनि का आश्रम था; (जहाँ) वे पूर्णब्रह्म के साक्षात्कार के लिए तपस्या करते हैं, (थे) । ५ । जो व्यक्ति (उनके) तप का भंग करता है (था), वह जलकर भस्म हो जाता है (था), उस स्थान पर घोड़े को बाँधकर इन्द्र स्वर्गलोक में चला गया । ६ । (तदनन्तर) सगर राजा के (वे) साठ हज़ार पुत्र स्वर्ग, मृत्यु और पाताल में, पर्वतों, नदियों, सरोवरों, वन-जालों में स्थान-स्थान पर अश्व की खोज करते हैं (थे) । ७ । वे महायोद्धा तथा अभंग अर्थात् अजेय वीर हैं (थे), जिनके शरीर बज्र के समान थे। उन्होंने अति बहुत आघात करके पृथ्वी को खोद डाला। उससे सात समुद्र हो गये हैं (बने हैं) । ८ । ठीक से खोज करने पर वे थक गये, परन्तु उन्हें यज्ञ का घोड़ा नहीं मिला। उस समय उन्हें नारद मुनि मिले। उन्होंने (सगर के पुत्रों ने) उनसे (यह) बात कही । ९ । तो 'पूर्व समुद्र के तट पर कपिल मुनि के सुन्दर आश्रम में (इन्द्र ने) घोड़े को बाँधा (है)' ऐसा कहकर नारद मुनि स्वर्गलोक में गये। (तदनन्तर) सगर के पुत्र वहाँ (कपिलाश्रम के पास) आ गये । १० । उन्होंने उस स्थान पर अश्व को देखा।

नी पुण्यधेनुवु नी जाल' ननिन । ना पूर्णबलुडु विश्वामित्रुडलिगि

विश्वामित्रुडु वसिष्ठुनि कामधेनुवु गोम्पोजूचुट

'यिम्मनि बतिमालि ये वेडनेल? । र'म्मनि भटसहस्रंबुलु दानु
गोवु नुद्धति बट्टिकोनिपोव बोव । बोवक यदि मुनिपुंगवु जूचि
'यनघ! वसिष्ठ संयमिचंद्र! नन्नु ।गोनिपोवुचुन्नाडु ग्रोव्वि कौशिकुडु;
वारिंपवकट! दुर्वारुंडवय्यु; । नूरक तगुनय्य! योप्पिप नन्नु?'
ननघात्म! नीयेड नपराधिगानु;। ननु नुपेक्षिचुट नायमे नीकु ?'
ननुडु धेनुवुमाट का वसिष्ठुंडु । मनमुन गृपवुट्टि मरुमाट वलिकें:
'ने नेल विडुतु निन्नेन्तयु बलिमि । भूनायकुडु गोनिपोयेडु गानि;
क्षत्रियुलुद् - दंडचारित्रुलैन । धात्रीसुरोत्तमुल् दारेंतवार ?
ली क्षोणिकधिपति यी गाधितनयु। डक्षौहिणीबलंबमरु नीतनिकि:
१५९०
ने विधंबुन गेल्तु नितनि ने' ननिन । ना वसिष्ठुनितोड ना धेनुवनियें;

इस पुण्यधेनु को नहीं दे सकूँगा'। (ऐसा) कहने पर वे पूर्ण बलवान् विश्वामित्र रुष्ट हो गये।

विश्वामित्र का वसिष्ठ की कामधेनु को ले जाने का प्रयत्न करना

—बोले—'गाय दीजिए, इस प्रकार मैं अनुनय कर प्रार्थना क्यों करूँ' ? (यह कहकर) अपने हज़ारों सैनिकों के साथ उद्धतभाव से गाय को पकड़ कर ले जाने का प्रयत्न किया। वह (गाय) उनके साथ न जाकर, मुनि-पुंगव को देखकर बोली—'हे अनघ ! संयमिचन्द्र ! वसिष्ठ ! मत्तभाव से कौशिक मुझे ले जा रहा है। दुर्वार होते हुए भी हाय ! (आप उसे) रोकते नहीं। आपका चुप रहना (और) मुझे सौंप देना क्या उचित है ? हे अनघात्मा ! मैं आपके प्रति अपराधी नहीं हूँ। मेरी उपेक्षा करना क्या (आपके लिए) न्यायसंगत है' ? (ऐसा) कहने पर धेनु के वचनों से मन में कृपा के उत्पन्न होने से उन वसिष्ठ ने उत्तर दिया—'मैं तुम्हें क्यों छोड़ दूँगा ? तुम्हें तो बलपूर्वक भूनायक (राजा) ले जा रहा है। यदि क्षत्रिय उद्दंड चरित्रवाले बन जाएँ तो धात्रीसुरोत्तम (ब्राह्मणश्रेष्ठ) (उनके समक्ष) किस गिनती के हैं ? यह गाधितनय इस क्षोणि (पृथ्वी) का अधिपति है। इसके पास अक्षौहिणी सेना है। ॥ १५९० ॥

—मैं इसे कैसे हरा सकूँगा'। ऐसा कहने पर उस वसिष्ठ से वह धेनु यों बोली—'हे मुनिनाथ ! नृपतेज की अपेक्षा सराहनीय विप्रतेज ही अधिक

'मुनिनाथ! नृपतेजमुनकंटे नेन्दु । विनुतिंप नेक्कुडु विप्रतेजंबु:
गावुन नीकंटे गौशिकुंडेक्कु । डेवेंन्ट गाकुंडुटे नेरुंगुदुनु:
बनुपुमु ननु; वीनि बलमुलनेल्ल । मुनुमिडि द्रुंचेद मुनिनाथ! यनिन
ना वसिष्ठुडु धेनु नपुडु 'सैन्यमुल । गाविपु; बलमुल खंडिपुमुरक'
यन विनि हुंकार मडरिंचुटयुनु । गनुकनि धेनुहुंकारमात्रमुन
घनवाललतयंदु गर्णबुलयंदु । दनुरुहंबुलयंदु दंतंबुलयंदु
खुरमध्यमुलयंदु गोम्मुलयंदु । नुरुलोचनमुलयंदु नूपुलयंदु
मोनय जंघलयंदु मोकाळ्ळयंदु । ननुवोन्द दोडलंदु नधरंबुनंदु
गाढतरंबैन गंगडोलयंदु । रूढिगा गूडिन रोमकूपमुल १६००
गेरलु रंकेलनु सक्थिप्रदेशमुन । बोरि नुद्भविंचिरि भुवनभीकरुलु
कैरात पल्लव कांभोज यवन । वीरुलु पेक्कंड्रु विषमविक्रमुलु:
चित्ररूपाढ्युलु चित्रायुधुलुनु । जित्रविलोचनुल् चित्रहुंकृतुलु
नै वीरुलै धीरुलै महोदारु । लै वारु सेनासहायुलै मरियु
हरुलतो गरुलतो नंदंद गडिमि । बरगि विश्वामित्रु बलमुल द्रुंप
जूचि या कौशिकु सुतुलु नूर्वुरुनु । नेचि नानाहेतिहतुलु निगुड

(महत्त्वपूर्ण) है। अतः आपसे किसी भी रूप में गाधेय अधिक (श्रेष्ठ) नहीं है, इस बात को मैं जानती हूँ। मुझे भेज दीजिए। हे मुनिनाथ! सामना करके इसकी समस्त सेना का वध कर दूँगी'। (ऐसा) कहने पर उस वसिष्ठ ने तब धेनु से कहा—'सेना उत्पन्न करो, (शत्रु-) सेना का संहार कर दो, भगा दो'। यह सुनकर (कामधेनु ने) हुँकार भर दिया। इच्छा से किये गये धेनु के हुँकार मात्र से (उसकी) घन (बड़ी) वाल- (पूँछ रूपी) लता से, कानों से, रोंगटों से, दाँतों से, खुर के मध्य भाग से, सींगों से, उरु (बड़े) नेत्रों से, श्वासों से, अतिशयता के साथ जाँघों से, घुटनों से, उचित रूप से जांघों से, अधरों से, घने गलकंबल से, प्रशस्त रोमकूपों से ॥ १६०० ॥

—विजृंभित हुँकारों से, ऊरुप्रदेश से क्रमशः भुवनभीकर और विषम-विक्रम हो अनेक कैरात, पल्लव, काम्भोज, यवनवीर उत्पन्न हुए। चित्ररूपाढ्य, चित्रायुध वाले, चित्रविलोचन वाले, चित्रहुँकार वाले वीर हो, धीर हो, महोदार हो, वे सेना की सहायता से युक्त हो, घोड़े, हाथियों के साथ रणोत्साह से परिव्याप्त होकर विश्वामित्र के बल (सेना) का संहार करने लगे। यह देख उस कौशिक के सौ पुत्र अतिशयता से नाना प्रकार के आयुधों से लैस हो आकर वसिष्ठ का वध करने का प्रयत्न कर, उसकी हुँकार मात्र से भस्म हो गए। तब (विश्वामित्र अपनी) अखिल

वच्चि वसिष्ठुनि वधियिंप गडगि । यच्चट भस्मैरतनि हुंकृतिकि;
नंत विश्वामित्रु डखिल सैन्यमुलु । नंतकु वीटिकि नरिगिन वगचि
यतुलपराक्रमुलगुचुन्न तनदु । सुतुल चावुनु जूचि शोकिंचि यंत
दनराज्यमुन नॊक्कतनयुनि नुनिचि।चनि हिमाचलमुन जलमुन निलिचि
१६१०
त्रिपुरारि गूर्चि यतिप्रयत्नमुन । दपमॊनरिंप ब्रत्यक्षमौटयुनु

विश्वामित्रुडीश्वरुनिचे नस्त्राद्दुलु वडसि वसिष्ठुनितो बोरट

हरुचेत विविध शस्त्रास्त्रमुल् वडसि। युरुवडि जनुदॆन्चि युग्रुडै कडगि
मॊगि वसिष्ठाश्रमंबुन वह्निशिखलु। नॆगय बॆल्लेसॆ नाग्नेय बाणमुन;
नप्पुडा बाणाग्नुलाश्रमंबॆल्ल । गप्पि मंडुटयुनु गनि वसिष्ठुंडु
गालदंडमु गॊन्न कालुडो यनग । गेलदंडमु दाल्चि किनुकतो वॆडलि
'योरि विश्वामित्र! योरि पापात्म! । भूरिपुण्याश्रमंबुलु गाल्पदगुनॆ ?
येनय नीवॆक्कड ने नॆक्क' डनिन । घनरोषचित्तुडै कौशिकुंडडरि
यतनि पै रौद्रंबु नैंद्रंबु बाशु । पतमु नैषिकमु जृंभणमु शोषणमु
जटुल मोहनमुनु संतापनंबु । बटुतर वज्रंबु ब्रह्मपाशंबु

(समस्त) सेना के अन्तक (यम) के घर जाने पर दुखी हुए, अतुल पराक्रम सम्पन्न अपने पुत्रों की मृत्यु पर शोक किया। तब अपने राज्य में एक पुत्र को रख (राज्य का भार सौंपकर) हिमाचल जाकर, जलमध्य में खड़े होकर ॥ १६१० ॥

—त्रिपुरारि (शिवजी) के प्रति अति प्रयास से युक्त तपस्या करने पर वे प्रत्यक्ष हुए,

विश्वामित्र का ईश्वर से अस्त्र आदि प्राप्त कर वसिष्ठ के साथ युद्ध करना

—हर (शिव) से विविध शस्त्र-अस्त्र प्राप्त कर, शीघ्रता से आकर, उग्र होकर सप्रयत्न संरम्भ के साथ वसिष्ठाश्रम पर अधिक वेग से आग्नेय बाण चलाया जिससे अग्नि की शिखाएँ उठीं। तब उन बाणाग्नियों से समस्त आश्रम को जलते देख वसिष्ठ हाथ में दण्ड लेकर क्रोध से यों निकल पड़े मानों कालदण्ड हाथ में लिए कालपुरुष हों। (वसिष्ठ ने) कहा—'अरे विश्वामित्र! रे पापात्मा! भूरि पुण्याश्रमों को जला देना उचित है? तुलना करने पर तुम कहाँ और मैं कहाँ?' (ऐसा) कहने पर घन (अधिक) रोष से भरे चित्त वाले कौशिक ने विजृम्भित होकर उस पर (वसिष्ठ पर) रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत, नैषिक, जृम्भण, शोषण, चटुल मोहन,

गनलु पैशाचंबु गालपाशंबु । घनविष्णुचक्रंबु गालचक्रंबु १६२०
वारुण गांधर्व वायव्य सौर । घोरास्त्रमुलु कोटिकोटुलेयुटयु
गलयंग विस्फुलिंगंबुलु सेदर । बलुवडि नुग्गाडे ब्रह्मदंडमुन ।
नलुक विश्वामित्रुडंत ब्रह्मास्त्र । मलवड संधिंचि यार्चि येयुटयु
सकल गीर्वाणुलु सकलसंयमुलु । सकल गंधर्वुलु सकल पन्नगुलु
सकल भूतंबुलु सकल दिक्पतुलु । सकल तारकमुलु जंद्रसूर्युलुनु
सकल लोकंबुलु जलनंबु नोन्द । सकल दिक्कुलु मंड जटुल वेगमुन
ब्रह्मांड मद्रुवंग बलुवडि नेगडि । ब्रह्मदंडमु दाटि पर्तेर जूचि
बह्मादुलकु नड्डुपडरानियट्टि । ब्रह्मास्त्र मवलील बट्टुक म्रिंगे ।
सुरुचिर ब्रह्मतेजोमूर्ति वेलुग । नरुदार नम्मुनियंग रोममुल
नेर्रमंटलेगय ननेक बाणंबु । लर्रिमुर्रि वेडलि विश्वामित्रु दाकि १६३०
चुरुपुच्च दौडगिन स्रुक्कि कौशिकुडु। नेर्रिसेडि येन्तयु निजसत्त्वमेडलि
'तरमिडि या ब्रह्मदंड मोक्कटने । वरशस्त्रकोटुलु वम्मुलै पोलिसे;
नस्तस्त, मचल मीयन ब्रह्मबलमु । क्षत्रबलंबिदि काल्पने' यनुचु

सन्तापन, पटुतर वज्र, ब्रह्मपाश, उग्र पैशाच, कालपाश, घन विष्णु चक्र, कालचक्र ॥ १६२० ॥

—वारुण, गान्धर्व, वायव्य, सौर (आदि) घोर अस्त्र करोड़ों की संख्या में प्रयोग किया। वसिष्ठ ने (उन सभी को) ब्रह्मदण्ड से तत्क्षण विध्वस्त किया जिससे सर्वत्र विस्फुलिंग (चिनगारियाँ) बिखर पड़े। तब विश्वामित्र ने क्रोध के मारे उद्यत होकर, सिंहनाद करके ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। (तब) सकल गीर्वाण (देवता), सकल संयमी, सकल गन्धर्व, सकल पन्नग, सकल भूत, सकल दिक्पति, सकल तारक, चन्द्र-सूर्य, सकल लोक कम्पित हो उठे, सकल दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं, ब्रह्माण्ड काँप उठा, समधिक प्रकाश से उस ब्रह्मास्त्र को ब्रह्मदण्ड को पारकर आते देख, उस ब्रह्मास्त्र को जिसे ब्रह्मादि (देवता) भी रोक नहीं सकते, (वसिष्ठ) आसानी से पकड़ निगल गए। सुरुचिर ब्रह्म तेजोमूर्ति (वसिष्ठ) प्रदीप्त हो उठी। विस्मयकारी रूप से उस मुनि के अंगरोमों से प्रदीप्त ज्वालाओं के साथ अनेक बाण शीघ्रता से निकलकर, विश्वामित्र को लगे ॥ १६३० ॥

—(और) उसे जलाने लगे (तो) कौशिक डर गए, कमज़ोर हो गए, अपने सत्त्व से हीन हो गए। (यह) कहते हुए कि 'क्रम से उस एक ब्रह्मदण्ड से ही वर शस्त्र समूह व्यर्थ हो, नष्ट हो गया। उनका ब्रह्मबल अलस्त (और) अचल है। यह क्षत्रबल जलाने योग्य है। (अर्थात् बेकार है।)'

ब्रह्मर्षिपदमुनकै विश्वामित्रुनितपमु

जेनटियै मगुडि कौशिकुडालु दानु । जनि घोरतपर्मथि जलुपुचुनुंडे ।
नटमीद सुतुल विश्वामित्रमौनि । पटुसत्त्ववंतुल बडसे नल्वुरनु
विनु मधुष्यंद हविष्यंद नामु । लन दृढनेत्र महारथुलनग;
ज्रलमुडिपक वेक्कु संवत्सरम्मु । ललघुनिष्ठनु दपंबटुसेय मेच्चि,
वनजसंभवुडंत वच्चि कौशिकुनि । गनुगोनि येन्तयु गरुणिचि पलिके;
'नीतपंबुन मेच्चि यिच्चिति नीकु । ब्रीतिमै निट राजऋषिपदंबनघ!"
यनि पोव गाधेयुडतिदीनुडगुचु । 'नेनयंग ने दपंबेन्तसेसिननु १६४०
गडपट ब्रह्मर्षि गानेरनैति; । नेडपडि चेडिपोये नी युग्रतपमु;
नी राजऋषिपदंबेनोल्ल' ननुचु । घोरतपंबु गैकोनि सेयुचुंडे ।
नंत निक्ष्वाकु कुलाग्रणियैन । संततकीर्ति त्रिशंकुडन् राजु
तनुवुतोडनु गूडि ता नाकमुनकु । नोनरंग जन जन्नमोनरिंप दलचि
भक्ति वसिष्ठुनि पालि केतेन्चि । युक्तमार्गंबुन नुपचरिंचुचुनु
'दिविज लोकमुन की देहंबुतोड । जवरगा जन नोक्क सवनंबु मीर

ब्रह्मर्षि पद के लिए विश्वामित्र का तप

—कुत्सित भाव से फिर से कौशिक अपनी पत्नी के साथ जाकर, उत्साह-पूर्वक घोर तप करने लगे। उसके बाद मौनी विश्वामित्र ने पटु सत्त्वशाली चार पुत्रों को प्राप्त किया। सुनो, उनके नाम हैं, मधुष्यन्द, हविष्यन्द, दृढनेत्र (और) महारथ। हठ न छोड़कर अनेक वर्ष अलघु निष्ठा से तपस्या की। उससे प्रसन्न हो वनजसम्भव (ब्रह्मा) आकर, कौशिक को देख अधिक करुणा (कृपा) से बोले—'तुम्हारे तप से प्रसन्न होकर हे अनघ! तुम्हें प्रेम से राजर्षि का पद दिया है'। (यह) कह (ब्रह्मा) चले गए (तो) गाधेय ने अतिदीन होते हुए सोचा—'साधना कर, मैं कितना भी तप करूँ ॥ १६४० ॥

—तब भी अन्त में ब्रह्मर्षि न बन सका। यह उग्रतप बिगड़ (विफल हो) गया है। मैं राजर्षि के इस पद को नहीं चाहता'। (ऐसा) सोचकर वे घोर तपस्या में लीन हो गए। तब (उस समय) इक्ष्वाकु कुलाग्रणी (कुल में श्रेष्ठ) (और) सन्तत कीर्तिशाली त्रिशंकु नामक राजा ने शरीर के साथ नाक (स्वर्ग) को अतिशयता से जाने में समर्थ कराने वाला यज्ञ करना चाहा। भक्ति (भाव) से वसिष्ठ के पास पहुँचकर (जाकर), समुचित रूप से उपचार (सेवा) करते हुए कहा—'हे अनघ! स्वर्गलोक को इस देह के साथ मनोज्ञ रूप से जाऊँ, ऐसा एक यज्ञ आप मुझसे प्रेम के

लनुरक्ति गाविंपुडनघ! ना चेत;। मुनुल रप्पिपुडु मुदमॊप्प' ननिन
'नरनाथ! यॊंडलितो नाकलोकमुन। करुग नसाध्य मी यवनीशुलकु'।
अनवुडु राजन्युडट दक्षिणमुन। घननिष्ठ दपमॊप्प गविंचुचुन्न
चिरपुण्युलैन वसिष्ठपुत्रुलकु। गरमर्थि ब्रणमिल्लि करमुलु मॊगिंचि
१६५०

'देवलोकमुन कीदेहंबुतोड। बोवच्चु यागंबु बूनि ना चेत
जेयिंपु'डनिन 'वसिष्ठु' 'डी तॆऱगु। सेयुडि' यननेनि जेयिंतु 'मनुडु
ना राजचंद्रुडिट्लनियॆ:' वसिष्ठु। 'डॆ राजुलुनु जेयरी क्रतु' वनुडु
मीकड किटु राक; मीरैन नन्नु। जेकॊंनि जन्नंबु सेयिंपवलयु;
नरय बुरोहितुलगुवारु गारॆ। धरणीशुलकु सर्वधर्मसाधकुलु'।
अनिन वासिष्ठुलायवनीशु जूचि। 'घनुडु वसिष्ठुंडु गादन्न तॆऱगु
निर्मलमति नॊरुल् नेर्तुरे सेय ?। दुर्मतिवगु नीकु दोपदु गाक'।
यनि पल्क निर्विण्णुडै संयमींद्रु। तनयुलनीक्षिचि धरणीशुडनियॆ;

साथ कराइए। (तदर्थ) आनन्द से मुनियों को बुलाइए'। ऐसा कहने पर (वसिष्ठ) ने जवाब दिया--'हे नरनाथ! इन राजाओं के लिए शरीर के साथ स्वर्गलोक जाना असाध्य है'। (ऐसा वसिष्ठ के) कहने पर वह राजन्य वहाँ से दक्षिण में घन (बड़ी) निष्ठा के साथ श्रेष्ठ तप करनेवाले चिरपुण्यशाली वसिष्ठपुत्रों के पास जाकर अधिक इच्छा से प्रणाम कर, हाथ जोड़कर ॥ १६५० ॥

--बोले--'इस देह से देवलोक को (पहुँचाने वाला) यज्ञ मुझसे प्रयत्नशील हो कराइए'। (ऐसा) कहने पर (उन्होंने) कहा--'यदि वसिष्ठ इस प्रकार से करने के लिए कहें (आदेश दें) तो कराएँगे'। तब उस राजचन्द्र ने इस प्रकार कहा--'वसिष्ठ के यह कहने पर कि 'कोई भी राजा इस क्रतु (यज्ञ) को नहीं करता (कर सकता)' मैं आपके पास आया हूँ। (कम से कम) आपको तो मुझे ग्रहण कर (मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर) यज्ञ कराना चाहिए। विचार कर देखें तो राजाओं के लिए पुरोहित ही तो सर्वधर्मसाधक हैं'। (ऐसा) कहने पर वासिष्ठों (वसिष्ठ के पुत्रों) ने उस अवनीश को देखकर कहा--'महान् वसिष्ठ के नकार देने पर, इस ढंग से अन्य कौन निर्मलमति वाला (इस यज्ञ को) करा सकता है ? दुर्मति होने के कारण यह बात तुम्हें सूझती नहीं'। ऐसा कहने पर निर्विण्ण होकर संयमीन्द्र के तनयों को देखकर राजा (त्रिशंकु) ने कहा--'आपके पिता ने निराश (अस्वीकार) कर दिया। आप भी किसी भी प्रकार से यह यज्ञ नहीं करा रहे हैं। मेरे हित की बुद्धि

'मी तंड्रि निरसिंचे; मीरुनु जेय । रैति रे तेऱगुननैन नी क्रतुवु;
हितबुद्धि लेनि मीरेल नार्किक ?। नितरुलचेत जेयिंचेदगाक' ।१६६०
यनिन 'जंडालुंड वगु' मंचु नलुक । गनुगोनि पल्कि राघनपुण्यु; लंत
भासुरंबगु भूमिपालु तेजंबु । वासिष्ठ कोपाग्नि वडि गालै ननग
नारय नीलदेहंबुनु नीलि । चीरयु जुंजुरुशिखयुनु दनर
नंटिन शुद्धंबुनैन मालिन्य । मंटिचु नी रूपमनुभंगि दोप
ब्रणुतवर्णस्फूर्ति बरगिन कनक । मणिभूषणमु लयोमयमुलै तनर
नोजमै गष्टनामोक्तिभेदमुल । ना जाति कनुरूपमैन रूपमुन
जननाथुडतिघोरचंडालभाव । मौनरंग जेड्पडियुन्न वीक्षिंचि
पौर भृत्यामात्यबंधुवर्गंबु । ला राजु वर्जिंचि; रंत ना राजु
नोदविन भयमुन नोय्यमेट्टुचुनु । नोदुगुचु जनुलकु नोसरिंचुचुनु
जनि महामहुनि विश्वामित्रु गनिन । गनिकरंबोदव ना गाधि तनूजु
१६७०
'डिल नयोध्यापुरंबेलेडि नीकु । नेलमि जंडालत्वमेल वाटिल्लें ?

न रखने वाले आप से मेरा क्या सम्बन्ध ? अब मैं दूसरों से (यज्ञ) कराऊँगा । ॥ १६६० ॥

—(ऐसा) कहने पर क्रोध से उसे देख उन घनपुण्य वाले (वसिष्ठ के पुत्रों) ने कहा—'तुम चण्डाल बन जाओ' । तब मानों वह प्रकाशमान राजतेज वासिष्ठों की कोपाग्नि से जल गया, वह राजा नीलीदेह, नीले वस्त्र, और बिखरे केशों वाला हो गया । ऐसा लगा मानों मनोहरता से स्पर्श करने पर शुद्ध (वस्तु) को भी यह रूप मलिन कर देगा । प्रसिद्ध वर्णस्फूर्ति से प्रवर्तित कनक-मणि के भूषण अयोमय (लोहे के) हो गए । क्रम से कष्ट नाम, उक्ति भेद से, उस जाति (चण्डाल जाति) के अनुरूप रूप (धारण कर) (वह) जननाथ अतिघोर चण्डाल भाव को प्राप्त हुआ । ऐसे उस राजा को देखकर पौर (नागरिक) भृत्य, अमात्य बन्धु वर्गों ने वर्जित कर (त्याग) दिया । तब उस राजा ने प्राप्त भय से धीरे से कदम रखते हुए, संकोच करते हुए, प्रजा से दूर हटते हुए, जाकर महा-तेजस्वी विश्वामित्र को देखा । (उस पर) करुणा के उत्पन्न होने पर उस गाधितनूज ने (कहा) ॥ १६७० ॥

—'(इस) पृथ्वी पर अयोध्यापुर पर शासन करनेवाले तुम्हें चण्डालत्व

नेतेरंगुन वच्चे? नेरिगिंपु' मनिन । नातंडु मुकुळितहस्तुडै पलिके;
'निरवौन्द बौंदितो निंद्रलोकमुन । करुग जोप्पडुनट्टि यागंबु नन्नु
जेयिंपुडनिन वसिष्ठुडत्तेरगु । सेयिंपरादनि चेप्पे नुत्तरमु ।
ना वसिष्ठुनिपुत्रुलगुवारु-'नतडु । गाविंपरादन्न गा' दनि पलिकि;
रितरुलचेत जेयितु नन् माट । कतिरोषमुन 'माल वगु' मन्न नैति;
ननघ ! ने जेसेद नन्न मध्वरमु । नौनरितु; बौन्कने नुर्वि नेन्नडुनु
नेट्टियापदलंदु; निटमीदनैन । नेट्टन सत्यंबु नगड बालितु;
बेक्कुधर्मबुलु बेक्कु जन्नमुलु । बेक्कुवतो जेसि पम्पु गैकौन्टि;
गुरुल बूजिंचिति; गुरुलु ना वलन । गरुणसालमि धर्मकार्यंबु निलिचे;
१६८०

बौरुषंबदि दैव बलमु लेकुन्न । नेरमि वाटिंचु; निक्कुवंबरय;
ने विधंबुननैन नीवु ना पालि । दैवमै रक्षिप दगुदु ना कनघ'!'
यनिन विश्वामित्रुडतनि वीक्षिचि । 'जननाथ! नीविक संतापमुड्डगु;'

कैसे प्राप्त हुआ? बता दो'। कहने पर उसने हाथ जोड़ कर कहा--'मैंने वसिष्ठ से कहा था कि सफलता के साथ, इसी देह के साथ इन्द्रलोक जाने में समर्थ करनेवाला यज्ञ मुझसे कराइए। वसिष्ठ ने उत्तर दिया कि उस प्रकार (यज्ञ) नहीं कराना चाहिए। उस वसिष्ठ के पुत्रों ने कहा--'यदि वे (वसिष्ठ) इनकार कर दें तो (हमसे) नहीं होगा'। (तब मैंने कहा) दूसरों से कराऊँगा। उस बात पर अति रुष्ट होकर (उन्होंने) कहा 'चण्डाल हो जाओ'। वैसे ही मैं (चण्डाल) हो गया। हे अनघ! मैंने जिस यज्ञ को करने की बात कही थी, वह यज्ञ करूँगा। (क्योंकि) कितनी ही आफ़तें क्यों न हों, इस पृथ्वी पर मैं कभी झूठ नहीं बोलता। आगे भी अनिवार्यता से (और) अतिशय इच्छा से सत्य का पालन करूँगा। अनेक धर्म (कार्य), अनेक यज्ञ अतिशयता से करके उन्नति (सुख-समृद्धि) प्राप्त की है। गुरुओं की पूजा की है। गुरुओं के मुझपर करुणा के न होने से धर्मकार्य रुक गया है। ॥ १६८० ॥

--दैवबल के न होने पर पौरुष (पुरुषार्थ) में दोष आ जाता है। विचार कर देखने पर यही तथ्य है। हे अनघ! किसी भी प्रकार से, आप मेरे लिए ईश्वर बनकर मेरी रक्षा कीजिए'। (ऐसा) कहने पर विश्वामित्र ने उसे देख (कहा)--'हे जननाथ! अब सन्ताप (दुख) को छोड़ दो।

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) सोच-विचार-हीन होकर बुरा व्यवहार करते रहते हैं। वे अपने किये का फ़ल मर कर (नष्ट होकर) स्वयं ही पा लेते हैं। किन्तु सत्यवादी लोगों ने जागृत होकर, अपने आप को जीत लिया है (मन को वश में कर लिया है) तथा प्रियतम (परमात्मा) को पूर्ण जानकर (प्रेम रूपी) प्याले को लबालब भरकर पी लिया है ॥ ४०५ ॥

कूड़ा कूड़ करे फाहे फासनि पाणहीं।
भोगिनि भोग नर्क जा, रोअनि रतु भरे।
सचारनि सटे विधो, पच्छिन्नु पिण्डु परे।
सामी ध्यानु धरे, माणिनि मौज मुक्ति जी ॥ ४०६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे कार्य कर, स्वयं ही अपने को (प्रपंच रूपी) फाँसी में फँसा देते हैं। वे ख़ून के आँसू बहाते हुए (अति दुखी होकर) नरक के दुःख भोगते रहते हैं, किन्तु सत्य को जाननेवालों ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है और (परमात्मा का) ध्यान कर, मुक्ति का आनंद मनाते रहते हैं ॥ ४०६ ॥

कूड़ा कूड़ाई, छद्रिनि कीन क्षण पलु हिकु।
पाए भवनि पाणही, छज्ज भरे छाई।
सामी सचारनि कई, समुझी सफाई।
सम थी सदाई, माणिनि सुखु स्वरूप जो ॥ ४०७ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) एक क्षण भी झूठ से बाज नहीं आते हैं (सदैव झूठ ही बोलते रहते हैं) वे राख के सूप (Winnowing Basket) भरकर (अपना जीवन नष्ट कर) स्वयं ही भटक रहे हैं। लेकिन सत्य-पुरुषों ने सोच-समझकर अपने हृदय को साफ कर लिया है (अज्ञान से किनारा कर लिया है)। वे सदैव सम-भाव होकर (परमात्मा के) स्वरूप का आनंद भोगते रहते हैं ॥ ४०७ ॥

कूड़ा कूड़ाई, सोघी, रखनि साहखों।
पाए भवनि पाणहीं, छल वल जी छाई।
सामी सचारनि कई, सची कमाई।
पंहिंजी पराई, ताति मेटे तद्रूप थिया ॥ ४०८ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठ को प्राणों से भी ज़्यादा सुरक्षित रखते हैं। वे स्वयं ही छल-बल रूपी राख डालकर (अपने

को धोखा देकर) भटकते रहते हैं। लेकिन सत्यवादियों (ज्ञानियों) ने सत्य की कमाई की है अतः वे अपने-पराये की भावना मिटाकर (परमात्मा के साथ) तद्रूप हो गये हैं ॥ ४०८ ॥

कूड़ा कूड़ी लार, लग्गा माया मोह जे।
खोहे मानुष देहि खे, रोअनि ज़ारो-ज़ारु।
माणिनि सुखु स्वरूप जो, सामी सन्त सचार।
जिते जीत न हार, तिते कयाऊं तक्यो ॥ ४०९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोगों (अज्ञानियों) ने माया-मोह से झूठी प्रीति कर ली है। वे (माया-मोह में) मानव शरीर नष्ट कर अश्रुधारा बहा रहे हैं। किन्तु सच्चे सन्त लोग स्वरूप-सुख का उपभोग करते रहते हैं। उन्होंने वहाँ जाकर निवास किया है जहाँ न जीत है, न हार है ॥ ४०९ ॥

कूड़ा कूड़ करे, फाहीअ फासनि पाणहीं।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि खों, पीउ न रहे परे।
पीअनि पाकु भरे, प्यालो प्रेम अगम जो ॥ ४१० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे (कार्य) कर स्वयं ही अपने को (प्रपंच रूपी) फाँसी में फँसाते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। लेकिन सत्यवादियों से प्रियतम (परमात्मा) दूर नहीं रहता है। वे अगम (परमात्मा) के पवित्र प्रेम-रूपी प्याले को भरकर पीते रहते हैं ॥ ४१० ॥

कूड़ा कूड़ करे, फाहे फासनि पाणहीं।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे।
सामी सचारनि सटियो, पर्च्छिन्न पिण्डु परे।
द्रिसनि नेण भरे, प्रत्क्षु पूरणु आत्मा ॥ ४११ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर स्वयं ही अपने को उलझाकर नष्ट कर देते हैं। वे नाना प्रकार के रूप धारण कर संसार-सागर में भटकते रहते हैं। परन्तु सत्य-पुरुषों (ज्ञानवानों) ने परिच्छिन्नता (भेदभाव) के पिण्ड को पटक दिया है, अतः वे प्रत्यक्ष पूर्ण आत्मा को जी भरकर देखते रहते हैं ॥ ४११ ॥

कूड़ा कूड़ करे, बेड़ी बोड़िनि पंहिंजी ।
भवनि भौसागर में, नाना रूप धरे ।
सामी सचारनि जो, सदा जहाज़ु तरे ।
पति साँ पूर भरे, पारि लंघाइनि पातिणी ॥ ४१२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) झूठे (कार्य) कर अपनी (जीवन-रूपी) नाव स्वयं ही डुबोते हैं । वे नाना प्रकार के रूप धारण कर भव-सागर में भटकते रहते हैं । लेकिन सत्य-पुरुषों का (जीवन-रूपी) जहाज़ सदैव तैरता रहता है, (तैर कर पार लगता है) । उसे (जहाज़ को) नाविक (सद्गुरु) विश्वास से खचाखच भरकर (अपने ज्ञान से परमात्मा के प्रति अटूट विश्वास उत्पन्न कर) पार लगा देता है ॥ ४१२ ॥

कूड़ा कूड़ु कुसति, बोलिनि मति मर्म रे ।
लाल विञाए अण-मुल्हा, खोहिनि पंहिंजी पति ।
सामी सचारनि जी, सची सभि संगति ।
मेटे ममत्व मति, जुर्या ज्योति स्वरूप साँ ॥ ४१३ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे लोग (अज्ञानी) बुद्धि हीन और निर्लज्ज होकर झूठ एवं असत्य ही बोलते रहते हैं । वे (ईश्वर-रूपी) अमूल्य रत्न खोकर, अपनी मान-मर्यादा नष्ट कर रहे हैं । लेकिन सच्चे-पुरुष (ज्ञानी) सदैव सत्य (ज्ञान) का संग करते हैं । वे ममत्व-बुद्धि मिटाकर, परमात्मा की ज्योति से ही जुड़े हुए रहते हैं ॥ ४१३ ॥

कूड़ा कुड़ु सति, करे कल्पनि पाणहीं ।
मरी पाइनि मति रे, दुबारी दुर्गति ।
सन्तनि सचारनि जो, सचो सारु सुमति ।
रात्यूं द्रीहां रति, सामी रखनि स्वरूप साँ ॥ ४१४ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग झूठे-सच्चे (कार्य) कर स्वयं ही दुखी होते हैं । वे बुद्धिहीन (अज्ञानी) मर कर दुबारा दुर्गति पाते हैं । (अज्ञान के कारण उनका यह जन्म तो दुःखमय है ही, अज्ञानवश बुरे कार्यों को करने के कारण उनका अगला जन्म भी दुःखमय हो जाता है) । सामीजी कहते है कि सच्चे सन्तों के पास सुमति तथा सच्चा तत्त्व (ज्ञान) रहता है । वे दिन रात (परमात्मा के) स्वरूप से ही प्रीति लगाये हुए रहते हैं ॥ ४१४ ॥

कूड़ा कूड़ो माणु, करिनि मति मर्म रे ।
कालु न द्रिसनि कन्ध ते, भर्यो बीठो ब्राणु ।
सचा माणिनि सर्व सुखु, सचीअ समुझ साणु ।
छड्डे पच्छिन्न पाणु, पूरणु, ज्ञाणनि पाणखे ॥ ४१५ ॥

झूठे (अज्ञानी) लोग निर्लज्ज एवं बुद्धिहीन (ज्ञानहीन) होकर झूठी बड़ाई करते रहते हैं। वे अपने कन्धे पर तीर ताने खड़े हुए काल को नहीं देख पाते हैं, किन्तु सच्चे (ज्ञानी) लोग सच्चे ज्ञान से सर्वत्र सुख का ही उपभोग करते हैं। वे नश्वर शरीर को छोड़कर आत्मा को ही पूर्ण मानते हैं ॥ ४१५ ॥

कूड़ा जीअ कर्म, कर्नि कल्पत कूड़ जा ।
पाए भवनि पाणहीं, नाना जूणि जन्म ।
सामी सचारनि जा, सचा कम कदम ।
सभ में द्रिसनि सम, अन्दरि ब्राहरि आत्मा ॥ ४१६ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी) जीव प्रपंच के झूठे कर्म ही करते रहते हैं। वे स्वयं ही नाना प्रकार की योनियों में जन्म लेकर भटकते रहते हैं, लेकिन सत्य को जाननेवालों (ज्ञानी लोगों के) के कार्य तथा क़दम सच्चे ही होते हैं (ज्ञानी सदैव सत्य के रास्ते पर ही चलते हैं)। वे सब में, भीतर तथा बाहर एक ही आत्मा को समान रूप से व्यापक देखते हैं ॥ ४१६ ॥

कूड़ी कथ कथे, सामी लख लुढ़ी विया ।
मखणु कढियो मन मों, कंहिं महबतीअ मथे ।
लेखे लथे पथे, सेषु द्रिठाई सुप्री ॥ ४१७ ॥

सामीजी कहते हैं कि लाखों (लोग) झूठे कथन कह कर (अज्ञान-रूपी) प्रवाह में बह गये, केवल किसी प्रेमी ने ही हृदय को मथ कर उससे (आत्मा-रूपी) मक्खन निकाला है (हृदय में ही आत्मा का दर्शन किया है)। तथा सब प्रकार के लेखे (हिसाब-किताब) निपटाकर, प्रियतम को ही शेष देखा है। (सब प्रकार के नाते तोड़कर, प्रियतम से नाता जोड़ लिया है) ॥ ४१७ ॥

कूड़ी पोषा पोष, मूर्ख कनि मर्म रे।
रहनि माया मध में, सदाई बेहोश।
सामी माणिनि सान्ति सुखु, के नेहीं निर्दोष।
लंघे पंजई कोश, चढ़िया चेतन चिटते ॥ ४१८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मूर्ख (अज्ञानी जीव) निर्लज्ज होकर झूठी (अज्ञान की) पोशाक ओढ़ते हैं (झूठे अज्ञान की ओट लेते हैं)। वे सदैव माया के नशे में बेहोश रहते हैं, लेकिन कुछ निर्दोष प्रेमी शान्ति-सुख का उपभोग करते हैं। वे पाँच कोस (का रास्ता) पार कर (पाँच विकारों से मुक्त होकर), ज्ञान के रास्ते पर अग्रसर होते हैं ॥ ४१८ ॥

कूड़ी बक बकी, लखें लोक लुढ़ी विया।
कंहिं सुजाणे सूर्मे, लधो थाउं थकी।
जंहिंखे द्रिनी सतिगुरुअ, सामी प्रीति पकी।
ममत्व जी मटिकी, सटे विधांई सिर तों ॥ ४१९ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठी (अज्ञान पूर्ण) बकवास कर लाखों लोग (अज्ञान के) प्रवाह में बह गये हैं, केवल उस जागृत शूरवीर (ज्ञानी) ने थक कर (परिश्रम कर) ठिकाना ढूँढ लिया है (परमात्मा का निवास स्थान ढूँढ लिया है), जिसे सद्गुरु ने (परमात्मा के प्रति) सच्चा प्रेम दिया है। अतः उसने ममता-रूपी मटकी को सिर से पटक दिया है (अज्ञान एवं प्रपंच से मुख मोड़ कर हृदय में स्थित आत्मा को देख लिया है) ॥ ४१९ ॥

कूड़े खे को थाउं, द्रिए न वाट वेहण जो।
कंहिंखे भावे कीन की, जीएं कारो काउं।
सचे खे सामी चए, सद्रे सभु गाउं।
नारायण जो नाउं मुखि रखी मौजां करे ॥ ४२० ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठे (अज्ञानी जीव) को कोई बैठने के लिए जगह तक नहीं देता है, वह काले कौए की तरह किसी को भी नहीं भाता है; किन्तु सच्चे (ज्ञानी) को सारा गाँव अपने पास बुलाता है (सभी उसे आदर देते हैं) वह नारायण का नाम लेकर तथा उसकी ओर अपना मुख कर आनन्द मनाता रहता है ॥ ४२० ॥

कूड़ो करे करारु, कद्रंहिं विहे कीन की।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, खपी थिए ख़ोआरु।
इस्थति रहे आकास जाँ, सामी सन्तु सचारु।
अन्दरि ब्राहरि यारु, प्रत्क्षु द्रिसे पंहिंजो ॥ ४२१ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) कभी भी शान्त होकर नही बैठता है। वह संसार को सत्य मान कर, उसमें ही अपने को खपाकर, बदनाम होता है। किन्तु सच्चा सन्त आकाश की भाँति स्थिर रहता है एवं अपने मित्र (परमात्मा) को बाहर तथा भीतर प्रत्यक्ष देखता है ॥ ४२१ ॥

कूड़ो कमीनो, सचु सुञाणे कीन की।
खाए नितु ख़ोआरीअ साँ, रुले रोज़ीनो।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रबीनो।
कटे किबरु कीनो, माणे मौज मुक्ति जी ॥ ४२२ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) नीच स्वभाववाला है, क्योंकि वह सत्य को नहीं पहचानता है। वह सदैव भटक कर एवं बदनाम होकर एक समय का भोजन प्राप्त करके खाता है; किन्तु प्रवीण प्रेमी अहंकार और कलुषता मिटाकर, स्वरूप से मिलकर, मुक्ति का आनंद लूटता है ॥ ४२२ ॥

कोट जन्म कपटी, पाण मिलनि न पीअ साँ।
सामी सचारनि जी, सहजे ममत्व मिटी।
पंहिंजे अख्यें पाण खे, द्रिठाऊँ उल्टी।
करे फोल फिटी, इस्थति थिया आकास जाँ ॥ ४२३ ॥

सामीजी कहते हैं कि कपटी (अज्ञानी जीव) करोड़ों जन्म पाकर भी प्रियतम से नहीं मिल पाते हैं, किन्तु सच्चे लोगों (ज्ञानी जीवों) की ममता सहज ही मिट जाती है। वे (संसार से) विरक्त होकर, दर-दर भटकना छोड़ कर, अपनी ही आँखों से परमात्मा का दर्शन पा जाते हैं अत: वे आकाश की भाँति स्थिर हो जाते हैं ॥ ४२३ ॥

कोट जन्म कूड़ो, पाए मिले न पीअ साँ।
सदा रहे सामी चए, माया में मूड़ो।
चढ़ियो चेतन चिट ते, को ग़ौरो एं गूड़ो।
ब्रन्धी जंहिं ब्रूड़ो, मनु मुनायो पंहिंजो ॥ ४२४ ॥

सामीजी कहते हैं कि झूठा (अज्ञानी जीव) करोड़ों जन्म पाकर भी प्रियतम से नहीं मिल पाता है क्योंकि वह सदैव माया में ही खोया हुआ (भटका) रहता है। केवल वही गंभीर एवं (ज्ञान के बोझ से) भारी (ज्ञानवान) व्यक्ति ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो पाता है, जो (अज्ञान-रूपी) भूसे को हटा कर अपने हृदय को साफ़ कर लेता है ॥ ४२४ ॥

अज्ञान

तंहिंखे लखु लानत, विझनि सुजाग़ा सन्त जन ।
जो सामी सचु छड्डे ॾे, करे कूड़ी कहवत ।
ब्रोड़े मानुष्य देहिखे, लुड़ में ॾेई लत ।
छड्डे मोहु ममत्व, सूर्य ॾिसे न सभ में ॥ ४२५ ॥

सामीजी कहते हैं कि जागृत (ज्ञानी) सन्तजन उन (अज्ञानी) लोगों को लाख-लाख लानत देते हैं (बहुत ही फटकारते एवं धिक्कारते हैं), जो सत्य को छोड़कर झूठा वादविवाद करते रहते एवं (संसार रूपी) प्रवाह में फँसकर अपना मानव शरीर नष्ट कर देते हैं, तथा जो मोह-ममता को छोड़कर (परमात्मा-रूपी) सूर्य को सब में नहीं देखते हैं ॥ ४२५ ॥

तंहिंखे लखु लानत, सन्त विझनि सामी चए ।
जो पण्डतु ज़ाणी पाण खे, रखे हिर्स हुजत ।
ब्रोड़े मानुष्य देहि दिब, लुड़ में ॾेई लत ।
करे मनु उपरन्तु, सूर्य ॾिसे न सभ में ॥ ४२६ ॥

सामीजी कहते हैं कि सन्त पुरुष उस (अज्ञानी) जीव को लाख लानतें देते हैं, (धिक्कारते एवं फटकारते हैं), जो अपने आप को विद्वान् मान कर भी इच्छाओं तथा तमन्नाओं को धारण करता है तथा (संसार-रूपी) प्रवाह में फँसकर अपने दिव्य मानव-शरीर को डुबो देता है और अपने मन को (मोह माया से) मुक्त कर (परमात्मा रूपी) सूर्य को सब में नहीं देखता है ॥ ४२६ ॥

द्वेत सभि दुःखी, कया जीअ जहान जा ।
शाह वज़ीर अमीर पीर, महाजन मुखी ।
सदा रहनि सामी चए, समतावान सुखी ।
बिना रस रुखी, कड़ी बोलिनि कीन की ॥ ४२७ ॥

सामीजी कहते हैं कि द्वैत (अज्ञान के कारण आत्मा एवं परमात्मा को अलग-अलग समझने की भावना) ने संसार के सभी राजाओं, मंत्रियों, धनवानों, सन्तों, महाजनों तथा मुखिया लोगों को दुखी बना दिया है, किन्तु समतावान् (आत्मा एवं परमात्मा को एक समझनेवाले) सदैव सुखी

रहते हैं । वे कभी भी नीरस एवं शुष्क (अज्ञान की) बातें नहीं करते हैं ॥ ४२७ ॥

द्वेत सभि दुःखी, कया जीअ जहान जा ।
शाह वज़ीर अमीर पीर, महाजन मुखी ।
सदा रहनि सामी चए, सम्तावान सुखी ।
बिना रस रुखी, ग़ाल्हि न करिनि ग़ुझजी ॥ ४२८ ॥

सामीजी कहते हैं कि द्वैत ने संसार के सभी राजाओं, मंत्रियों, धनवानों, सन्तों, महाजनों तथा मुखिया लोगों को दुखी बना दिया है, परन्तु समतावान् सदैव सुखी रहते हैं। वे रहस्यमय (परमात्मा से संबंधित) के विषय में कभी भी नीरस तथा शुष्क (अज्ञानपूर्ण) बातें नहीं करते हैं ॥ ४२८ ॥

देवियूं ऐ देवा, मूर्ख पूज़िनि मति रे ।
लाइनि भोग भ्रांत जा, खीर खंडूं मेवा ।
व्रिले को साधू करे, सामी शुधु सेवा ।
अलखु अभेवा, पूरणु द्रिसे प्रेम साँ ॥ ४२९ ॥

मूर्ख (अज्ञानी जीव) बुद्धिहीन होकर देवी-देवताओं की पूजा करते हैं तथा भ्रमवश होकर उन्हें दूध-शक्कर तथा फलों के भोग लगाते हैं। सामीजी कहते हैं कोई विरल साधु ही प्रेमपूर्ण शुद्ध सेवा करता है (और अन्तर्मुख होकर) अलख, अभेद एवं पूर्ण (परमात्मा) को देखता है ॥ ४२९ ॥

नींह बिना नादान, वेद पढ़ी वादी थिया ।
प्रत्क्षु द्रिसनि न पीअ खे, अन्धा कनि उन्मान ।
इस्थति थिया अन्दर में, के नेही निरब्राण ।
रहनि मंझि जहान, सामी अलेपु आकास जाँ ॥ ४३० ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रेम-रहित नादान जीव (अज्ञानी जीव) वेदों का अध्ययन कर वादी बन गये हैं। वे अन्धे, प्रियतम को प्रत्यक्ष न देखकर उसके संबंध में केवल अनुमान ही करते हैं; किन्तु कुछ निर्वाण-प्रेमी आत्मा में स्थित होकर, संसार में रहकर भी आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं ॥ ४३० ॥

अंतु रामलक्ष्मणर् कडंगिं कादुवाळवर बलक्कें सुगिदु मेय्दॆगॆव बेडवडॆयं कूडिकोंडु—

अदिरदिदिर्चि तागिद तरंगतमं दिननायकंगिदि-
र्चिद तमदंतॆ मॆय्दॆगॆयॆ मार्बलदानॆगॆ कूटपाकळं
कुदुरॆगॆ कर्णदूषिकॆ रथक्कॆ सिडिल् भटमंडलक्कें कॆं-
डद मळॆयॆंबिनं करॆदंबिन पॆर्मळॆयं हलायुधं ।। ६६ ।।
कादलिदिर्चि कॆदुविडिल्बगॆदर्पुदु मॊग्गॆ मंजिनं-
तादुदु नंजनॆंजलिसिदंतॆवॊलादुदु बेगॆ पविदं-
तादुदु गाळिगॊंडिद मुगिल्गॆणॆयादुदु कूडॆयॊक्किदं-
तादुदु रामबाण हतिथिदिशद विरोधिसाधनं ।। ६७ ।।

आगळ्—

बलवळियॆ तरंगतमं- * पलायनोद्युक्ततासॆवट्टं जंघा-
बलमं दशरथरामन- * शिलीमुखक्कॆडरुवंतबं दशमुखने ।।६८।।
ओडलॊंडरिसुवडं तॊंडॆ- * सेडॊंडरिसिदप्पुदॆंदु भयरसदिंद-
ल्लाडॆ मनं कॆदुवनी- * डाडिदनंजिसुगुमारुमं रामशरं ।।६९।।
तुळिलाळ्तनक्कवं नी- * रिळिवंत वळिदु सूसॆ कण्णीर्तॆरिं
दिळिदं नॆलक्कॆ जसमडि-* गिळिविगॆगं लुब्धकं नॆलं पळिविनॆगं ।।७०।।

उसका सामना कौन कर सकता था ?। ६५ युद्धभूमि में राम-लक्ष्मण इस तरह लड़ रहे थे कि उनकी वीरता से त्रस्त हो, भागने के लिए तैयार किरात-सेना से मिलकर तरंगतम पुनः युद्ध के लिए तैयार हुआ, तो हलायुध (लक्ष्मण) ने उसपर बाणों की वर्षा करके, उसकी सेना, हाथी, घोड़ों को रोग-विशेष से, रथ को घन-गर्जना-सदृश वारों से, सैनिकों को अग्निवर्षा से प्रहारकर, इस तरह भगा दिया जैसे अपने सम्मुख आनेवाले अंधकार को सूर्य भगा देता है। ६६ लड़ने की इच्छा से धनुष-बाण लिये आगे आनेवाले शत्रुओं की हिम्मत रामबाणों के आघात से विषपान-सी, अग्नि-ज्वाला फैली-सी हवा के आघात से टकराई घटाओं की भाँति हुई। ६७ तब, राम-बाणों की गति से तरंगतम का सेनाबल जर्जरित हुआ और लड़ने से असमर्थ हो वह पलायन करने की सोचने लगा। ६८ उसने भागना चाहा, तो उसकी जांघों के स्नायु अकड़ गए और वह भयभीत हुआ। क्योंकि राम के बाण किसी को भी डराने में समर्थ थे। ६९ इस विचार से कि राम के आधीन में सामंत बनकर रहना पड़ेगा, आँसू बहाते हुए रथ से ऐसा उतरा मानो उसका सारा यश पाताल में धँस गया हो। ७० हँसते लालकमल-सदृश श्रीराम की वीरता के सम्मुख

सुगिदिरे चंद्रमंडलदमुंदे तमं केडेदिर्दुदेंबिनं
मुगियें करांबुजं कुवलयं नगुवंतिरे रामचंद्रने-
ळ्गंगे देसेगेट्टु केट्टनु तरंगतमं शरणेंदु बीळ्वुदुं
गगनमनागळावरिसिदत्तपहार घनानक स्वनं ॥ ७१ ॥

अंवरमं विजयपता- * कांवरवोडनोडने सकल दिग्वनितावृ-
क्त्रांबुजमनभयघोषं- * चुंबिसिदुवु करेदुदमर कुसुमासारं ॥७२॥
अंजदिरंजदिरेने मुगि- * दंजलिनुटमं तरंगतमनिदिरोळ्निं
दंजनगिरियवोलिरे को- * ट्टं जयजायासहायनभयमनागळ् ॥७३॥

मुत्तिन पोन्न पेर्दुडुगेयं वसनंगळनित्तरण्यदोळ्
नित्तरिपंतु नाडगडियं मरेदुं पुगदंतवंगे भू-
पोत्तमनाज्ञेयेंब मणिमंडनमं नडुनेत्तिगित्तु दि-
ग्भत्तिगे कीर्तिचंदन विलेपमनित्तनिदेनुदात्तनो ॥ ७४ ॥

प्रबलनबलनवोलंता * शबरं बीळ्कोंडु बेगमेंदुदनेगों-
डुबर्दुकि पोदनेने रा- * मबाणमं कदनभूमियोळ् मीरुवरार् ॥७५॥

आगळनेकमंगळानक रवंगळोडने—

नगुवंते पेरर बिल्ब- * ल्मेगळं तण्बेळगनुगुळे पूजिय नेवदिं
जगदटिप धनुर्गुणमं- * त्रिगुणिसिदं तोरमुत्तिनेकावळियिं ॥७६॥

विवश हो, राम के चरणों पर हाथ जोड़कर 'शरणागत' कहकर वैसे ही झुक गया जैसे चंद्रमंडल के सम्मुख अंधकार भयभीत होकर झुकता है। इसे देखकर बादलों से भेरीस्वर आकाश में सुनाई पड़ा। ७१ विजयध्वज के साथ-साथ समस्त दिग्वधुओं के मुखांबुजों ने आकाश को चूम लिया तो देवताओं ने फूल बरसाये। ७२ हाथ जोड़कर खड़े तरंगतम को 'मत डरो' का अभयदान देते हुए राम उसके सामने अंजनगिरि के समान खड़े हुए। ७३ उसे मोती और सोने के उत्कृष्ट उपहार (भेंट) देकर, 'भूलकर भी इस राज्य की सीमा को पारकर आगे न आने और वन में ही रहने' की राजाज्ञा देकर अपने कीर्तिचंदन के लेप को दिगंतों को प्रदान करनेवाले राम की उदारता का क्या कहना? (राम कितने उदात्त है?)। ७४ प्रबल शबर दुर्बल-सा, राम से बिदा लेकर, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मानकर, कहीं (न कहीं) जीने के लिए चल पड़ा। युद्ध में राम-बाणों के प्रहार से बढ़कर किसका (प्रहार) होगा?। ७५ —तब अनेक मंगल-ध्वनियों के साथ, श्रीराम ने अपने मोती की एकावली से चंद्रप्रकाश-तुल्य कांति को फैलाते हुए अपनी धनुर्विद्या की निपुणता का प्रदर्शन ऐसा किया, मानो वह दूसरों की धनुर्विद्या को देखकर हँसना

अंतुपूजिसि—
मारणमंत्र नादमेंनिसित्तु विरोधिगें शांतिकक्रिया
कारण मंत्रनादमेंनिसित्तु धरित्रिगें मृत्युवंचनो-
च्चारण मंत्रनादमेंनिसित्तेंमगच्चरि निन्न चाप टं-
कार निनादमोंदे पलवुं तेरनं तळेदंदमावुदो ॥ ७७ ॥
अेनं प्रत्युपकारम-
नानोडरिसुवें कुमार कन्नंयनित्तें
मेनकेयिं मिगिलेंनिसिद-
जानकियं मनन वश्य मणिदीपिकेयं ॥ ७८ ॥
अनुबंधमन्वया गत * मेंनिसिदुददनधिकमागें माळ्पवुनयदि-
दननुगुण सस्य संपा- * दन सीतेयेंनिप्प सीतेयं निनगित्तें ॥७९॥
अेंदु नुडिदु रामनुमं सौमित्रियुमं विचित्र वस्त्रभूषणादि-
गळिंदलिसि जनकं कतिपय प्रयाणंगळि कळिपुवुदुं रामलक्ष्मणर-
योध्येयं पोक्कु सुखदिनिर्पुदुमोंदुदिवसं—
जनकं तनुजेयनित्तं- * मनुवंश ललामनप्प रामगेंबी
जनवोंतगेळ्दु नारद- * मुनिगादुदु नोळ्प कौतुकं जानकियं ॥८०॥
पेंडिर लीलेयं यतिगें नोळ्पुदु पाळियें मुंजि कच्चटं
गुंडिगें बोळमंडे मणिदंडमि वीक्षण सौख्य हेनुवे

चाहता हो । ७६ —इस तरह, अपने मारणमंत्र-स्वरूपी शत्रु को पराजित कर, अपने बाणों की टंकार से पृथ्वी के मृत्यु को आश्चर्यचकित करके भगानेवाले राम की धनुष-कुशलता अनेक प्रकार से सुशोभित होती है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है । ७७ ऐसे राम के प्रति प्रत्युपकार करना धर्म मानकर जनक ने निश्चय किया कि अपनी बेटी जानकी, जो मेनका के समान (सुंदर) है, को विवाह में देना चाहिए । ७८ "हे राम, तुम्हारे और हमारे बीच का कुल-संबंध पुराना है; उसे और मजबूत बनाने के लिए समस्त सस्य-सम्पत्ति के लिए सीता कहलानेवाली जानकी को मैं तुम्हें सौंपता हूँ ।" ७९ —जनक ने ऐसा कहकर राम-लक्ष्मण को विविध वस्त्राभरणों से सजाकर, कुछ दिनों के पश्चात् उन्हें वापस भेज दिया । वे अयोध्या लौटकर सुख से जीवन बिता रहे थे कि एक दिन, नारद ने सुना कि जनक ने अपनी बेटी जानकी का विवाह मनुवंशज राम के साथ सम्पन्न कर दिया है । उसके मन में सीता को देखने का कुतूहल जाग उठा । ८० नारद जैसे यति का सीता को देखना क्या उचित था ? जनेऊ, कौपीन, कमंडल, मुंडा सिर, दंड आदि दिखाने योग्य

कंडोडे बालेयर् तमगे पेसदे माण्बरे नारदं मरु-
ळ्गोंडवोलागसक्के नेगेदं वृथेयल्ने सराग संयमं ॥ ८१ ॥

अंतु नारदं गगनवीधियिं मिथिलेगे बंदु कन्नेवाडद बागिल्वाडमं पुगुवागळ्—

बिरिमुगुळि तुरुगिद ता- * वरेगोळदोळगाडुवंचेवेण्णनदें च-
प्परिसिदळो सीते कन्या- * परीते वैडूर्य रत्नमयवेदिकेयोळ् ॥८२॥

आगळदृष्टपूर्वमं नारदन विक्रताकारमं कंडु तरुणि हरिणि-यंते बेचि बिरुतोडुवुदुं—

तत्तरुणिय बळिवळियं * पत्ति हिताहित विवेक विकलं पळियं
पेत्तामुनिपं भ्रमक * दत्तेळसुव पच्चेगर्बुनक्केणेयादं ॥ ८३ ॥
नारदनें तळेदनो क- * न्यारत्नमनेळसि परिव परिणतियिं नि-
स्सारमनं नील शला- *का रत्नमनेळसि परिव तृण परिणतियं ॥८४॥
धात्रि परिवंतु तन्नं * धात्रिजनमडसि पिडिदु परिभविसुवुदुं
मित्रं शलभक्केनें मुनि-* नेत्रेंद्रिय लोभदिंदमंदघवट्टं ॥ ८५ ॥

आगळा कळकळमं केळ्दु—

कडितलेयं तूगुत्तुं- * कडुगलिगळ्मुट्टे बर्पुदुं भयरसदिं
नडुगुत्तुं नारदमुनि- * कुडुमिंचिन गोंचलंत गगनक्कोगेदं ॥ ८६ ॥

हैं ? इन सबको देखकर स्त्रियाँ नहीं डरेंगी ? नारद पागलों-सा संयम खोकर, अकारण आकाश की ओर उड़ा । ८१ —इस तरह आकाशमार्ग से मिथिला पहुँचकर, अंतःपुर के द्वार में प्रवेश कर रहा था कि, उसने खिले पुष्पों से भरे कमल के तालाब में तैरते हुए मादा हंस को डाँटते हुए, रत्नजटित मंचपर बैठी हुई सीता को देखा । ८३ —तब, अब तक कभी न देखे हुए, नारद के विचित्र रूप को देखकर वह (सीता) भयभीत हिरण-सी दौड़ने लगी तो, भले-बुरे की परवाह किए बिना अविवेकी नारद ऐसा पीछा करता रहा जैसे चुंबक-शक्ति से आकर्षित लोहा हो। ८३ कन्यारत्न को चाहकर भागता हुआ नारद ऐसा दिखाई पड़ा जैसे इंद्रनील-रत्न की कांति की ओर भागने की इच्छा रखनेवाली घास हो । ८४ —इस तरह पीछा करते हुए नारद को, सीता की सेविकाओं ने अनुसरण किया और ऐसा धमकाया मानो सारा संसार ही उसकी निंदा कर रहा हो । आँखों की आशा (इच्छा) के कारण वह पाप की ओर प्रवृत्त हुआ । ८५ इस शोरगुल को सुनकर, खड्गधारी सैनिक दौड़ आये तो नारद काँपते हुए बिजली के गुच्छे के समान तुरंत आकाश की ओर उड़ा । ८६

अंतु पोळेदु पारि—

पिंदं बेंदगुळ्दप्परेंदु पेरगं नोडुत्तुमोडुत्तुमे-
यांदं गाळिगेरंके मूडिदवोलाकाशंबरं नीळ्दुदं
कुंदेंदु प्रभेयं मनंगोत्रिपुदं विद्याधरी लोचना
नंदस्यंदि तटी विलास वनमं कैलासमं नारदं ॥ ८७ ॥

अंता नगमनेय्दि सानुनंदन लतामंदिरदोळगणेंदु कांत शिलातलदोळ् विश्रमिसि मनोविषादमुमं गगनाध्वखेदमुमं तळेदु तन्नोळितेंदं—

खेदमनेनगिनितं सं- * पादिसिदा कन्नेगळविगळिदळलं सं-
पादिसुवेनेंदु परिपी * डा दुश्चरितक्के नारदं बगेदंदं ॥८८॥

अंतु बगेदंदुं—

नूल पवण्पवण्गेबरे निम्न धनोन्नतमं प्रदेशमं
पोलिसि नारदं विषम चित्रविचित्र कला विशारदं
बालेय मुद्दुगेय्तमुमनाकेय सुंदर रूपमं महा
लीलेयुमं दुकूल पटदोळ बरेदं प्रतिबिंबमेंबिनं ॥ ८९ ॥

अंतु परिविद्ध परिणतियं मेरेदापटमं विद्याधरराजधानियप्प रथनूपुरचक्रवाळपुरद पोरवोळल विनोद वनदोळगण मणिभवन-दोळगे नेरि पोपुदुमित्तळ्—

केलबर् खेचर राजकर् बळसेयुं केळीवन स्थानदोळ्
चलन न्यास विलासमं मेरेदु देहच्छेयेयुं रत्नकुं-

—इस तरह उड़कर, पीछा करनेवाली सेनाके भय से बार-बार मुड़कर देखते हुए इस वेग से उड़ा मानो हवा के पंख निकले हो, या चाँदनी की कांति सुशोभित हुई हो, इस तरह नारद विद्याधरों को आनंद प्रदान करनेवाले कैलास में पहुँचा । ८७ —कैलास पहुँचकर वहाँ उद्यान के लतामंडप के चंद्रकांत-शिलातल पर विश्राम करके मन के विषाद और आकाश-प्रयाण की थकावट को अनुभव कर मन ही मन सोचा, मुझे इस तरह का दुःख देनेवाली उस कन्या को मैं कष्ट दूँगा—इस तरह पर-पीड़ा-रूपी बुरे कार्य का संकल्प किया । ८८ —ऐसा निर्णय करके, अपने चित्रकला-कौशल से उसने सीता के निम्न, घन-उन्नत अंगों को स्पष्ट रूप से कपड़े पर ऐसा सुंदर चित्र बनाया मानो उसका (सीता का) प्रतिबिंब हो । ८९ अन्यों को पीड़ा देने के विचार से, उस चित्र को विद्याधर राजधानी रथनूपुर चक्रवालपुर के बाह्य प्रदेश के वन में सुशोभित रत्नभवन में लटकाकर

डल भूषा रूचियुं पळंचे देसेयं सौंदर्यदिं मन्मथं
गलगिक्कल् नडेवंते मदंगतियिं बंदं प्रभामंडलं ।। ९० ।।
अंतु बरुत्तुमानिकेतनदोळिर्द चित्रपटमं नोडि—
समुदायशोभे वर्ण- * क्रमदिं प्रत्येकशोभे चेलिवं नयन-
क्कमर्दं मुंदिडे खेचर * नेमेयिक्कदे बयसि नोडि बरेपेद पेण्णं ।।९१।।
अनुराग तनगागे कंडनितरिदाविद्धमं तन्न मु-
न्निन जन्मांतरदळ्कर पोसयिपंतालोकिसुत्तिर्पुदुं
ननेयंबिदिसे निर्दयं मनसिजं कर्णांत विश्रांत लो-
चनयुग्मं नसुमुच्चे मुच्चेगोळणागिर्दं प्रभामंडलं ।। ९२ ।।
बरेदुरगलेखे मूर्छा- * परिणितियं मंत्रशक्तियिं पुट्टिपवोल्
बरेपद कन्ने भवांतर * परिचयदिं मोहमूर्छेयं पुट्टिसिदळ् ।। ९३ ।।
अदनातन तंदेयप्पिदुगति केळ्दु संभ्रमदिं बंदु शीतल क्रिये-
गळनोडर्चे—
शिशिरोपचारदिं खच- * र शिरोमणि नयनकुवलयं विर्चे मनो-
ज शिलीमुख कीलित हृ-* त्कुशेशयं तडेदु मूर्छेयिंदेळ्चित्तं ।। ९४ ।।
तदनंतर मावियच्चराधिराजनीपटमनिल्लिगार्तदरेंदुम्मळिसु-
त्तुमिरे नारदनागळल्लिगे बंदुचितासनदोळिर्दु खचरपतिगिंतेंदं—

चला गया। इधर, कुछ खेचर राजाओं से घिरा हुआ, खेल-विनोद में लीन, अपने सौंदर्य और धारण किए हुए आभरणों की शोभा से कामदेव को भी (सौंदर्य में) नीचा दिखानेवाला प्रभामंडल मंदगति से वहाँ चला आया। ९० आकर उस भवन में लटके हुए चित्र को देखकर, उस चित्र के रंगों के मिलाप से अंग-सौंदर्य की शोभा और रेखा-विवरण से प्रत्येक (महीन) शोभा स्पष्टतः दिखाई देने के कारण उसे महसूस हुआ मानो उसके सम्मुख अमृत रखा गया हो। उसे अपलक दृष्टि से देखकर चित्र में स्थित कन्या को पाने की इच्छा हुई। ९१ प्यार जगा तो उससे होनेवाली पीड़ा और अपने पूर्वजन्म के प्यार के विषय में सोचता हुआ प्रभामंडल निर्मम कामदेव के सताने के कारण आँखें मूंदकर मूर्छित-सा दिखाई पड़ा। ९२ चित्रित सर्प जिस तरह मंत्रशक्ति से सजीव (सर्प) होकर देखनेवालों को मूर्छित कर देता है उसी तरह चित्र की कन्या ने जन्मांतर के संबंध से उसे (प्रभामंडल को) मोह-मूर्छित कर दिया। ९३ —इस विषय को उसके पिता इंदुगति ने सुना तो तुरंत वहाँ आया और शैत्योपचार करने लगा—इससे प्रभामंडल की कमल-सदृश आँखें खुलीं और मन्मथ के बाण से घायल वह मूर्छा से उठ बैठा। ९४ तत्पश्चात्

ज़न्नकं मिथिलाधिपना- * तन वनितें विदेहियेंबळाकेंगे वियदं-
गनेंगे तुहिनांशु कळेयेंने * जनियिसिदळ् सीतेयेंब कन्यारत्नं ॥९५॥
सुरविद्याधर कन्यका जनदोळा स्त्रीरत्नमं पोल्वरो-
वरुमिल्ली नृपरत्नवाकेंगनुरूपं रत्न मेळापकं
दोरेवेत्तिर्कुमिदं निवेदिसुवेंनेंदा कन्यका विद्धमं
बरेदानिल्लिगें तंदेनक्के निमगं भद्रं शुभं मंगळं ॥ ९६ ॥
अेंदु नारदं परसि पोपुदुमित्तल्—
अेनुमनारोळं नुडियदुम्मळदिं विरहाकुलं मनो-
ग्लानियनोंदि पेण्णबरेपं बरेदंतिरे चित्तभित्तियोळ्
जानिसि चित्तमं पुदियें मोहतमं बेमरुण्मि पोण्मे ल-
ज्जानमितानन दळेदना खचराग्रणि मौनमुद्रेयं ॥ ९७ ॥
अंतु दिग्मूढनाद मगन योंगमनिदुगति नोडि—
मानव कन्येयं बयसि नंदन निन्न मनक्के चिंतेयं
म्लानतेयं मुखक्के तरवेळ्पुदे कोळ्कोंडेगंतिवट्टेनें-
दानेरेदट्टे निन्नदोरेयं वरनं पडेदिर्मे केळ्वेने
जानकियं विवाहविधियिं जनकं निनगीयदिर्पने ॥ ९८ ॥

इंदुगति इस बात का पता लगाने लगा कि इस चित्र को लाकर किसने लटकाया। इतने में नारद वहाँ आकर उससे (इंदुगति से) पूजित हो बोला—'मिथिला के राजा जनक की पत्नी विदेही से, आकाश के लिए चाँदनी सदृश, सीता नामक पुत्री जन्मी। यह वही है। ९५ (सौंदर्य में) सुरों, विद्याधरों के समूह में, इस कन्या की बराबरी कोई नहीं कर सकती। इस मनुष्य-कन्या को प्रभामंडल के लिए योग्य समझकर मैंने उसका चित्र बनाकर यहाँ लटकाया है। इससे आपको शुभ और मंगल हो'। ९६ —ऐसा आशीष दे चला गया। यह सुनकर प्रभामंडल ने, किसी से कुछ बोले बिना, दुःख से मन ही मन तड़पता हुआ, कन्या के चित्र को अपने हृदय में चित्रित किया गया-सा, स्मरण करता हुआ, मोह बढ़कर पसीने से भीगे चेहरे को झुकाकर मौन (मुद्रा) धारण किया। ९७ इस तरह भ्रमित पुत्र का मुख देखकर इंदुगति ने कहा—बेटे, मनुष्य-कन्या के लिए तुम इतनी चिंता कर रहे हो? अगर जनक के पास सूचना भेजें कि तुम्हारी बेटी से मैं अपने पुत्र का विवाह करने की इच्छा रखता हूँ तो क्या वह इसे (प्रस्ताव को) अपना अहोभाग्य समझकर (तुरंत) स्वीकार नहीं करेगा? ९८ इस तरह बेटे को सान्त्वना देकर, उसके मन के दुःख को दूर करके अपने योग्य कर्तव्य के बारे में सोचने लगा। एक विद्याधर

ಎಂದು ನಿಜನಂದನನ ಮನೋವಿಷಾದಮಂ ಕೆಡೆದು ನಮಗಿಲ್ಲಿಗೆ ತಕ್ಕುದಾವುದೆನೆ
ವಿಯಚ್ಚರ ವೀರನೊರ್ವನಿಂತೆಂದಂ—

ಇದು ಮಂತ್ರಾಲೋಚಂಬರ ✻ ಮುದಾತ್ತಮಣಮಲ್ತು ಮಿಥಿಲೆಯಂ ಜನಕನುಮಂ
ಬೆದರಿಸಿ ಜಾನಕಿಯಂ ತ- ✻ ರ್ಪುದು ಮಾಳ್ಪುದು ದೇವ ಸುತ ವಿವಾಹೋತ್ಸವಮಂ ॥೯೯॥

ಎನೆ ವಿಯಚ್ಚರೇಂದ್ರನಿಂತೆಂದಂ—

ಈಯೆ ತರವೆಳ್ಪುದವಲೆಯ ✻ ನೀಯದೆ ತಂದದ್ದು ತನಗದತ್ತಾದಾನಂ
ಸ್ತೇಯಮದರಿಂದ ಮದನ ✻ ಶ್ರೇಯಮನಾಚರಿಸದಲ್ತೆ ಖೇಚರವಂಶಂ ॥೧೦೦॥
ಸಮನೆನಿಪನೊಡನೆ ಕೊಳ್ಕೊಡೆ ✻ ಸಮನಿಸೆ ಸಮದತ್ತಿ ಭೂಚರರ್ ಖೇಚರರೊಳ್
ಸಮನಲ್ಲರ್ಸುತಮೋಹದಿ ✻ ನೇಮಗಮದಶ್ರೇಯಮಾದೊಡಂ ಕರಣೀಯಂ ॥೧೦೧॥

ಎಂಬುದುಮಿದುಗತಿ ವಿಯಚ್ಚರೇಂದ್ರಗೆ ಕುಲಮಹತ್ತರಂ ಚಂದ್ರವರ್ಧನನಿಂತೆಂದಂ—

ಎರೆದದಟ್ಟಿದೊಡಿಯರ್ ಭೂ- ✻ ಚರರೆಂತು ನೀಚರದರಿನಿಲ್ಲಿಗುಪಾಯಂ
ತರದಿಂ ತಂದೆರೆಯೆ ಭಯಾ- ✻ ತುರಂ ನಿಜಾತ್ಮಜೆಯನೀವೊಡೀವಂ ಜನಕಂ ॥೧೦೨॥

ಎಂಬುದುಮಾಬೆಸನಂ ಚಪಲವೇಗನೆಂಬ ವಿದ್ಯಾಧರಂ ಬೆಡಿಕೊಂಡು—

ಗಗನೇಚರಂ ತೇಜಶ್ಶಿಖಿ ✻ ಪಗೆವರ ಭಾಸುರ ಯಶೋ ವಿತಾನಮನುರಿಪಲ್
ನೆಗೆದುದೆನೆ ಚಪಲವೇಗಂ ✻ ನೆಗೆದಂ ಗಗನಕ್ಕೆ ವಿಜಿತ ಚಪಲಾವೇಗಂ ॥೧೦೩॥

वीर ने कहा—यह इतना गहरा विषय नहीं है कि मंत्रियों से परामर्श लिया जाय। मिथिला के राजा जनक को धमका कर जानकी को लाकर अपने बेटे से विवाह करा देना ही उचित है। ९९ इसे सुनकर इंदुगति बोला—पाणिग्रहण करा दे तो वधु को ले आना न्यायसंगत है। अन्यथा वह ऐसा दान होगा जो हाथ उठाकर (स्वेच्छा से) नहीं दिया जाता; और जबरन लाना तो चोरी मानी जायगी। हमारा खेचर-वंश ऐसा अश्रेयस्कर (अयोग्य) कार्य कभी नहीं कर सकता। १०० अपने स्तर के लोगों से लेन-देन (आदान-प्रदान) स्वाभाविक है। यद्यपि खेचर और मनुष्य समान नहीं, तथापि पुत्र-मोह के कारण ऐसा करना अनिवार्य है। १०१ तब कुलपुरोहित चंद्रवर्धन ने इंदुगति से कहा—दूतों को भेजकर कन्यादान की माँग करने पर ये नीच मानव कभी नहीं देंगे। अतः उपाय से जनक को यहाँ ले आकर माँगें तो भय से, अपनी बेटी दे देगा। १०२ इस बात को सुनकर, चपलवेग नामक विद्याधर विशिष्ट वेग से आकाश की ओर इस तरह उड़ा मानो आकाश में संचार करनेवाले सूर्य का अग्निस्वरूप तेजस, शत्रुता की कीर्ति को जगाने के लिए लपका हो। १०३ देखनेवालों को उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर चलनेवाले उल्कापात-सा भ्रमित कराता हुआ निर्भय खेचर मिथिला में उतरा। १०४

न ता जीव् मर्न्या हो शरिरसँग लागेर जनको ।
न रातो हून्या हो स्फटिक सब खेल् जान मनको ।।६८।।
मनैका खेल्ले जीव् शरिर मइँ हूँ भन्दछ भनी ।
जहाँतक् जान्दैनन् फजिति तहिंतक मिल्दछ पनि ।।
मनैको खेल् यो हो भनिकन त् जान्न्या तहरिया ।
नजान्न्या जीव् जो हुन् उति त सब फन्दा परिगया ।।६९।।
शरीर् मै हूँ मेरै धनजनहरू हुन् भनि जसै ।
पर्‍यो मन्का खेलमा तब फजिति मिल्छन् बुझ यसै ।।
बिना सत्का सङ्ले विनु गुरु कृपाले इ फजिती ।
अवश्यै छुट्तैनन् सकल मनका खेल नजिती ।।७०।।
म नित्यै आत्मा हूँ शरिरहरु हुन् चार घरिका ।
विचार्मा टिक्तैनन् विषय पनि छन् स्वप्न सरिका ।।
भनी जान्न्या जन्ले दृढ़ गरि लिया भक्तिरसले ।
नबिर्स्या ई मैले यति कहिदियाँ प्रीति-वशले ।।७१।।
उस् जन्मा अधिक भक्ति गर्‍यौ र ऐले ।
दर्शन् दियाँ नतर झट्ट म मिल्छु कैले ।।
मेरो स्वरूप् र इ वचन् अब सम्झि लीया ।
छुट्नन् ति दुःख तिमिलाइ जती त थीया ।।७२।।

और न जीव ही इस शरीर के साथ मरता है। न तो जीव शरीर के संग मरता है और न ही स्फटिक लाल होता है। यह सब मन का ही भ्रम है। ६८ मन के खेल के कारण ही जीव-शरीर परस्पर कहते हैं, हम एक ही हैं। जब तक ज्ञान नहीं होता, कष्ट मिलेगा ही। जिसने इसे मन का खेल समझ लिया वह तर गया; और अज्ञानता के वशीभूत सभी जीव माया के फन्दे में पड़े हुए हैं। ६९ जब यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि मैं ही शरीर हूँ, यह धन तथा जन सब मेरा है—तो समझ लो कि कष्ट-प्राय होगा। सज्जनों की संगति और गुरुकृपा से जब तक मन के खेल को न जीत लें, तब तक इन संकटों को निश्चय ही समूल नष्ट नहीं किया जा सकता। ७० जो जन यह जानते हैं कि मैं नित्य आत्मा हूँ और शरीर केवल चार घड़ी का है उनके ध्यान में कोई विषय टिकता नहीं और वे संसार को स्वप्न के समान समझते हैं। इसे दृढ़तापूर्वक भक्ति से सुनो, भूलना नहीं। प्रीतिवश मैंने तुमसे यह सब कहा है। ७१ उस जन्म में तुमने अगाध भक्ति की थी इसीलिए मैंने आज तुम्हें दर्शन दिया, नहीं तो मैं अकस्मात् कहाँ मिलता हूँ! मेरे स्वरूप तथा मेरे वचनों को

लेखै हवैन अब कर्म पनी गरीन्या ।
रस्ता कह्याँ भवसमुद्र सहज् तरीन्या ॥
मेरो स्वरूप् र इ वचन् जति सम्झि लिन्छन् ।
सब् कर्मपाश् ति सहजैसित काटिदिन्छन् ॥७३॥

यस्ता वचन् प्रभुजिको सुनि खूशि मन्ले ।
छोडिन् जति छ अभिमान् पनि तार्हि तिन्ले ॥
सुग्रीवको पनि गयो अभिमान ताहाँ ।
राम्को कृपा हुन गयापछि टिक्छ काहाँ ॥७४॥

हूकूम् भयो प्रभुजिको तहिं मित्रलाई ।
हे मित्र सुग्रिव ! जलाउ इ वालिलाई ॥
क्रीया गरीकन शरीर् गर शुद्ध ऐले ।
सब् काम छोडिकन यै गर आज पैले ॥७५॥

हूकूम् भयो र तब बालि लगी जलाया ।
क्रीया गरीसकि ति सुग्रिव तार्हि आया ॥
अर्पण् गरी सकल राज् प्रभुका चरण्मा ।
सेवक् बनीकन म बस्छु भन्या शरण्मा ॥७६॥

सुग्रीव्लाइ हुकूम् भयो प्रभुजिको जो हौ तिमि सो म हुँ ।
जाऊ आज र गादिमा बस म ता याहीं बनैमा रहुँ ॥

समझोगी तो जो कष्ट तुम्हें अब तक हुआ है वह नष्ट हो जायेगा । ७२ (पिछले कर्मों की) रेखा भी कदाचित् अब मिट जाय और कर्मादि भी नहीं किया जायेगा । सहज ही भव-सागर तरने का मार्ग ही कहाँ है ? मेरे स्वरूप तथा वचनों को जितना ही समझ लोगी उतने ही सहज भाव से कर्मपाश कट जायेगा । ७३ प्रभु जी के ऐसे वचनों को सुनकर तारा ने प्रसन्न मन से जो भी अभिमान था सब वहीं त्याग दिया । सुग्रीव का भी अभिमान समाप्त हो गया । राम की कृपा होने पर अभिमान कहाँ टिकता है ? ७४ वहीं पर मित्र के लिए प्रभु की आज्ञा हुई—हे मित्र सुग्रीव ! बालि का दाह और क्रिया-कर्म आदि कर शरीर को अभी शुद्ध करो । सब काम छोड़कर आज सर्वप्रथम यही कार्य करो । ७५ ऐसी आज्ञा होते ही सुग्रीव ने बालि को ले जाकर दाह दिया और क्रिया आदि करने के बाद सुग्रीव ने लौटकर सकल राज्य, प्रभु के चरणों में अर्पित करके सेवक बनकर रहने की इच्छा प्रकट की । ७६ सुग्रीव को प्रभु की आज्ञा हुई कि जो तुम हो वही मैं हूँ । तुम आज जाकर गद्दी पर बैठो,

गाऊँमा घरमा बसोइनँ भनी मेरो प्रतिज्ञा छ यो।
जानन् लक्ष्मण ता सँगै घर पनी भाई गया भैगयो ॥७७॥
वर्षा काल् बितिसक्छ यो जब तसै सीताजिको खोज् गऱ्या।
येती मजि दिया र सुग्रिव बहुत् आनन्द-सागर् पऱ्या ॥
लक्ष्मणजी पनि रामका हुकुमले सुग्रीवका साथ् गया।
सुग्रिव् गादिविषे बस्या पछि फिरी दाखिल् प्रभूथ्यँ भया॥७८॥
राम्ले ताहिं थियो प्रवर्षणगिरी तेस्का शिखर्मा चढी।
देख्या सुन्दर एक् गुफा स्फटिकको ताहीं गराया मढी ॥
फल् फूल् ताहिं खचित् थियो नजिकमै थीयो तलाऊ पनि।
देख्या मन् खुशि भो तहाँ प्रभुजिको बस्न्यै जगा हो भनी॥७९॥
वर्षा काल तलक् रह्या प्रभु तहाँ पर्थ्यो बखत्मा झरी।
जन्तू पुष्ट थिया सबै ति वनका खायेर घाँस् पेट् भरी ॥
बस्थ्या श्रीरघुनाथका वरिपरी खुप् ध्यान् प्रभूमा धरी।
ध्यान् जन्तूहरुको विचार् गरि तहाँ खूशी रहन्थ्या हरि॥८०॥
लक्ष्मणले तहिं बिन्ति एक् दिनगऱ्या हेनाथ् ! पुजाको विधान्।
पाऊँ सुन्न हुकूम् हवस् खुशि भई कुन् हो करूणा-निधान् ॥
ब्रह्मा व्यास् अरु नारदादिहरु सब् भन्छन् पुजाले सरी।
आर्को तर्न उपाय छैन जनको खुश् छन् पुजैमा हरि॥८१॥

मैं यहीं वन में रहूँगा। गाँव में, घर में न रहने की मेरी प्रतिज्ञा है, अतः लक्ष्मण के संग में तुम्हें घर जाना उचित होगा। ७७ जब वर्षाकाल व्यतीत हो जायगा तब सीता की खोज की जायेगी। ऐसी आज्ञा सुनकर सुग्रीव आनन्दसागर में डूब गया। लक्ष्मण जी भी श्रीराम की आज्ञा पाकर सुग्रीव के साथ (नगर में) गए और सुग्रीव का राज्याभिषेक करने के बाद पुनः प्रभु के पास उपस्थित हुए। ७८ राम ने प्रवर्षण गिरि के शिखर पर चढ़कर एक स्फटिक की बनी हुई सुन्दर गुफा देखी जो चारों ओर से फल-फूलों से घिरी हुई थी। उसके निकट ही एक तालाब भी था। ठहरने योग्य ऐसा देखकर प्रभु जी के मन में प्रसन्नता हुई। ७९ प्रभु वहाँ वर्षाकाल तक रहे। समय-समय पर वर्षा होती थी। पेट भर घास खाकर उस वन के सभी जन्तु हृष्ट-पुष्ट थे और श्रीरघुनाथ के ध्यान में उन्हीं के चारों ओर वे घूमा करते थे। जन्तुओं की इस ध्यान-मग्न दशा पर प्रभु जी मुग्ध रहते थे। ८० एक दिन लक्ष्मण ने विनती की-- हे नाथ ! हे करुणानिधान, पूजा के विधान क्या हैं, मैं सुनना चाहता हूँ, प्रसन्न होकर बतलाने की कृपा करें। ब्रह्मा, व्यास और नारद आदि

यस्तो सूनि गर्‍याँ र मन् चरणमा सोध्याँ पुजाको विधान् ।
साँचो तत्त्व बताउन्या हजुर झैं को छन् दयाका निधान् ॥
यस्ता लक्ष्मणका वचन् सुनि तहाँ पूजा विधी हो जति ।
सब् संक्षेप् रितले कह्या प्रभुजिले लक्ष्मण् भया खुश् अति ॥
वर्षाकाल् यहि रीतले तहिं बित्यो वार्ता कथाको गरी ।
सम्झ्याझट्ट सिताजिलाइ र विलाप् फेर् गर्न लाग्या हरि ॥
किष्किन्धा पुरिमा यसै-बिचमहाँ मन्त्री हनूमानले ।
सुग्रीव् सीत सिताजि खोज् गर भनी बिन्ती गर्‍या ज्ञानले ॥
हे राजन् रघुनाथले त उपकार् ठूलो हजूर्‌को गरी ।
यो राज् बक्सनुभो हजूर्‌कन ठुलो वीर् बालिलाई हरी ॥
सो बिर्स्या झइँ मान्दछू हजुरले सीताजिको खोज् खबर् ।
गर्न्या हो अब ता बखत् पनि भयो सब् काम छोडी अवर् ॥८४॥
यादै छैन हजूरलाइ त सिता खोज् गनुपर्ला भनी ।
वालीको गति जुन् भयो उहि गती होला हजुर्‌को पनि ॥
यो बिन्ती हनुमानको सुनि तहाँ साँचो भन्या यो भनी ।
सुग्रिव्‌ले तहिं झट् हुकूम् पनि दिया लश्कर् पठाऊ भनी ॥८५॥

सबका यही कथन है कि पूजा के समान तरने का अन्य कोई उपाय नहीं है। (भगवान्) पूजा (भक्ति) से ही प्रसन्न होते है। ८१ लक्ष्मण का मन पूजा का विधान जानने के लिए राम के चरणों में केन्द्रित हो गया। वे बोले, हे दयानिधान ! सत्य-तत्वों को जानने और बतानेवाला आपके समान और कौन है ? लक्ष्मण के ऐसे वचनों को सुनकर जितनी भी पूजा की विधियाँ हैं, प्रभु जी ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण को संक्षेप में बतायीं। ८२ इसी प्रकार कथा-वार्ता करते हुए वर्षा-काल व्यतीत किया। एक दिन अकस्मात् सीता जी का स्मरण हो आया और श्रीराम पुनः विलाप करने लगे। इसी बीच मंत्री हनुमान ने किष्किन्धापुरी में सुग्रीव से सीता जी की खोज करने के लिए विनती की। ८३ हे राजन् ! रघुनाथ ने वीर बालि को मारकर यह राज्य आपको देकर महान् कृपा की है। परन्तु मुझे लगता है कि वह सब आप भूल गए हैं; अब तो सब काम छोड़कर सीता जी की खोज कराइए। ८४ लगता है, आपको याद ही नहीं हैं कि सीता जी की खोज करना है। बालि की जो गति हुई है आपकी भी वही गति होगी। हनुमान की यह विनती सुनकर 'यह सत्य ही कह रहा है', ऐसा जानकर सुग्रीव ने तुरन्त सीता जी को खोजने के लिए वानरों की सेना भेजने की आज्ञा दी। ८५ दस हजार वानर जाकर, ईशान दिशा में

दस् हज्जार् विर जाइ सात द्विपमा बानर् जती छन् सबै ।
खोजी आज खबर् दिउन् र सब वीर् जम्मा हउन् झट् अबै ।।
जो आवैन हुकूम् बदर् गरि यहाँ ई पन्ध्र दिन् भित्रमा ।
तेस्को प्राण् म लिन्याछु निश्चय बुझून् मानून् सबै चित्तमा ।।८६।।
यस्तो सुग्रीवको हुकूम हुन गयो सोही बमोजिम् गरी ।
दश् हज्जार् विरको खटन् पनि गऱ्या लागेन बेर् एक् घरी ।।
दश् हज्जार् विर दश् दिशातिर छिटी खुश् भै हनूमान् रह्या ।
ती वीर् दश् तिर गै खबर् दिइ अनेक् सेना बटुल्दा भया ।।८७।।
लाग्या गर्न विलाप् अनेक् तरहले लीला गरी राम् उसै ।
भन्छन् छन् ति सिता कहाँ अझ पनी लागेन पत्ता कसै ।।
याहाँ छन् ति सिता भनीकन खबर् पाऊँ त जाऊँ तहाँ ।
ल्याऊँ अमृत झैं सिताकन यहाँ पाऊँखबर्पो कहाँ ।।८८।।
हे भाई ! सुन जो छ आज इ सिता हर्न्या म तेस्को सबै ।
कूलै भस्म गराउन्याछु करुणा राख्वैन उस्मा कबै ।।
येती बात् तहिं भाइ सीत गरि फेर् सीताजिको शोक् गरी ।
लाग्या गर्न विलाप् अनेक् तरहले त्रैलोक्यका नाथ् हरि।।८९।।
हे सीते ! कसरी म देखि पर भै बस्छ्यौ तिमी छौ कहाँ ।
प्राणै थाम्न कठिन् भयो म बिनु ता आपत् भया हुन् तहाँ ।।

जो भी वानर हैं उन्हें खोजकर यह सूचना दे दें कि सब वीर तुरन्त एकत्रित हो जाएँ । जो भी इस आज्ञा का पालन कर पन्द्रह दिन के अन्दर नहीं आता है उसके प्राण मैं ले लूँगा, इसे निश्चय जान लें और स्मरण रक्खें ।८६ सुग्रीव की ऐसी आज्ञा के अनुसार दस हज़ार वीरों को एकत्र कर नियुक्त करने में कुछ भी देर नहीं हुई । दस हज़ार वीरों को दसों दिशाओं में भेजकर हनुमान प्रसन्नतापूर्वक रहे । उन वीरों ने दसों दिशाओं में जाकर सूचना देते हुए विपुल सेनाएँ एकत्रित कीं । ८७ श्रीराम अनेक प्रकार की लीलाएँ कर, विलाप करने लगे । "सीता कहाँ हैं ? क्या अब तक भी कहीं पता नहीं लगा ? सीता के अमुक स्थान पर होने की सूचना मुझे दो ताकि मैं वहाँ जा सकूँ । अमृत-तुल्य सीता को यहाँ ले आओ । कहाँ हैं, इसकी सूचना कहाँ मिलेगी ! ८८ हे भाई ! सुनो, आज सीता का हरण करनेवाला जो भी हो, मैं उसके कुल को भस्म कर दूँगा । उस पर कभी दया नहीं करूँगा ।" इतनी बात भाई से कहकर पुनः सीता के शोक में त्रैलोक्य के नाथ हरि अनेक प्रकार से विलाप करने लगे । ८९ "हे सीते ! मुझसे अलग किस प्रकार रहती हो । कहां हो ! तुम्हारे

तिम्रो भेट नपाउँदा मकन ता ई चन्द्र सूर्य बन्या ।
तिम्रोतागरुँ क्याबखान्तिमित झन् छचौदुष्टकापास्भन्या।।९०॥

सुग्रीव् आज कृतघ्न झैं हुन गया आयो शरद्काल् पनि ।
सुतैं छैन सिताजिलाइ अझतक् खोज् गर्नु पर्ला भनी ॥
मार्छू सुग्रिव दुष्टलाइ पनि फेर् बाली सरीको गरी ।
लक्ष्मण्ले प्रभुका वचन् सुनि गऱ्या बिन्ती अगाड़ी सरी।।९१॥

हे नाथ् ! आज मलाइ बक्सनु हवस् हूकूम् म मार्छू गई ।
लक्ष्मण्का इ वचन् सुनेर रघुनाथ् अत्यन्त खूशी भई ॥
भन्छन् भाइ ! नमार आज बहुतै हप्काउ जाऊ तहाँ ।
मारी हाल्न त योग्य छैन तर खुप् चेताइ आऊ यहाँ ।।९२॥

हूकूम् यो प्रभुको सुनीकन तहाँ लक्ष्मण्जि जल्दी गया ।
सीतानाथ् नरको लिला गरि विलाप् खुप् गर्न लाग्दा भया ॥
किष्किन्धापुरि पौंचि लक्ष्मणजिले टङ्कार् धनूको गऱ्या ।
पत्थर् वृक्ष उठाइ वानरहरू कोही अगाडी सऱ्या ॥

सब् वानर्कन नष्ट गर्दछु भनी लक्ष्मण्जिले वाण् धऱ्या ।
अङ्गद् आइ हटाइ बानरहरू जल्दी चरण्मा पऱ्या ॥

विना प्राण बचाना भी कठिन हो गया है। तुम्हारे वियोग में तुम्हारे गुरु-स्वरूप चन्द्र और सूर्य मुझसे कहते हैं कि तुम दुष्ट के और निकट हो। ९० आज सुग्रीव अकृतज्ञ सा हुआ है। शरदकाल भी आ गया। किन्तु उसे कोई चिन्ता नहीं है कि अभी सीता की खोज करनी है। बालि की तरह दुष्ट सुग्रीव को भी मैं मार डालूँगा।" प्रभु के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण आगे बढ़कर विनती करने लगे— ९१ "हे नाथ। मुझे आज्ञा करें, मैं अभी जाकर सुग्रीव को मार डालूँगा।" लक्ष्मण की ऐसी विनती सुनकर श्रीरघुनाथ अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले हे भ्राता ! आज उसे न मारो। किन्तु जाकर उसे डाँटो-फटकारो। अनावश्यक लड़ना और मारना उचित नहीं है; अतः उठो, केवल चेतावनी देकर आओ। ९२ प्रभु के इस आदेश को सुनकर लक्ष्मण शीघ्रता से चले गये। सीतानाथ मानव-लीला कर अत्यन्त दुःख से विलाप करने लगे। किष्किन्धापुर पहुँचकर लक्ष्मण ने अपने धनुष को टंकारा। टंकार सुनकर पत्थर तथा वृक्षों को उठाकर कुछ वानर आगे बढ़ आए। ९३ सब वानरों का नाश करता हूँ, कहकर लक्ष्मण ने बाण चढ़ाया। अंगद ने शीघ्रता से आकर वानरों को हटाया और लक्ष्मण के चरणों में गिर पड़े। लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर

अङ्गद् सीत बहुत् प्रसन्न भइ झट् ताहाँ अह्राया पनि ।
जाऊ देउ खबर् अगाडि तिमिले लक्ष्मण्जि आया भनि।।९४।।
अङ्गद् गैकन त्यो खबर् जब दिया सुग्रीवलाई तहाँ ।
जल्दी सुग्रिवले हुकूम् पनि दिया लौ जाउ ल्याऊ यहाँ ।।
अङ्गद्लाइ सँगै लियेर हनुमान् चाँडै चरण्मा परी ।
लक्ष्मण्लाइ बुझाइ ल्याउ तिमिले सब् रीस शान्ती गरी।।९५।।
यस्तो सुग्रिवको वचन् सुनि तहाँ सोही बमोजिम् गरी ।
पाऊमा परि बाहुमा धरिलिया ल्याया बहुत् खुश् गरी ।।
हूकूम सुग्रिवको सुनीकन तहाँ ताराजि चाँड़ै गइन् ।
लक्ष्मण् लाइ बुझाइ खुश् गरुँ भनी खुप् बिन्ति गर्दी भइन्।।९६।।
लक्ष्मण सुग्रिवको भयो जब त भेट् सुग्रीव् चरणमा पन्या ।
लक्ष्मणले पनि तहिं सुग्रिवजिको सातो कुराले हन्या ।।
वाली झैं हुन मन् छ की भनि जसै लक्ष्मण्जिले बात् गन्या ।
लक्ष्मण्लाइ बुझाउनाकन तहाँ जल्दी हनूमान् सन्या।।९७।।
लक्ष्मण्जी पनि कामले बुझि गया बात्चित् खुशीका गरी ।
फिर्नाको मतलब् गन्या प्रभु थिया जाहाँ जगन्नाथ् हरि ।।
लक्ष्मण्का सँग लागि सैन्य पनि ली सुग्रीव खुश् भै गया ।
जाहाँ श्रीरघुनाथ् थिया तहिं सबै दाखिल् क्षणैमा भया।।९८।।

अंगद को आज्ञा दी कि जाओ और सुग्रीव को मेरे आने की सूचना दे दो। ९४ अंगद ने जाकर जब सुग्रीव को यह सूचना दी तो सुग्रीव ने भी तुरन्त जाकर उन्हें लिवा लाने की आज्ञा दी। सुग्रीव ने अंगद से कहा कि हनुमान को संग लेकर जाओ और लक्ष्मण के चरणों में पड़कर समझा-बुझाकर तथा उनके क्रोध को शान्त करके उन्हें ले आओ। ९५ सुग्रीव के आदेशानुसार अंगद जाकर लक्ष्मण के चरणों में गिरा और उन्हें अपनी बाहों में समेटकर प्रसन्न करके ले आया। सुग्रीव का आदेश सुनकर तारा भी वहाँ आ गई। लक्ष्मण जी को समझाकर प्रसन्न करने के उद्देश्य से वह विनती करने लगी। ९६ जब लक्ष्मण और सुग्रीव की भेंट हुई तब सुग्रीव तुरन्त उनके चरणों में गिर पड़े। लक्ष्मण ने भी अपनी बातों से सुग्रीव के होश ठिकाने कर दिये। जैसे ही लक्ष्मण ने कहा कि कदाचित् तुम्हें भी बालि की तरह मरने की इच्छा है तो उन्हें मनाने के लिए हनुमान आगे बढ़े। ९७ लक्ष्मण जी भी इन सब कार्यों से सन्तुष्ट हो गए और प्रसन्नतापूर्वक बातचीतकर प्रभु के पास लौटने की उन्होंने इच्छा की। साथ ही सुग्रीव भी अपनी सेना सहित अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक,

देख्या श्री रघुनाथलाइ र परै रथ् देखि उत्रेर फेर् ।
लक्ष्मण् सुग्रिव पाउमा परि गया लागेन एक् छीन बेर् ॥
राम्ले सुग्रिवलाइ मित्र ! भनि खुप् आलिङ्गनादी गरी ।
सोधपुछ् गर्नुभयो बहुत् खुशि हुँदै आफैं अगाडी सरी ॥९९॥
लाग्या सुग्रिव बिन्ति गर्न रघुनाथ् ! मैले त सेना पनि ।
ल्यायाँ वीर्हरू छन् अनेक् तरहका छन् इन्द्र तुल्यै पनि ॥
ई सब् ख्वामितका निमित्त खुशि भै प्राणै दिन्याछन् जसो ।
हूकूम् हुन्छ हवस् यहाँ हजुरको गर्छन् ति ऐले तसो॥१००॥
खूशी भै रघुनाथको हुकुम भो हर्षाश्रुधारा गरी ।
हे सुग्रीव सखे ! इ वानरहरू जाऊन् दिशा दश् भरी ॥
जाहाँ छन् ति सिता तहीं पुगि खबर् ल्याऊन् भनी रामको ।
हूकूम् पाइ पठाइ वानरहरू उर्दी दिया कामको॥१०१॥
जाऊ वीर्हरु सब् दिशा दशविषे सीताजि मिल्छिन् जहाँ ।
पत्ता लाइ सिताजिको खबर ली सब् वीर आऊ यहाँ ॥
मैन्हा दीन बिताइ एक् रति खबर् केही नपाई त जो ।
ढील् गर्न्या तसलाइ ता म सहजै मार्न्याछु मर्न्याछ त्यो॥१०२॥

जहाँ श्रीरघुनाथ थे, वहाँ तत्क्षण पहुँच गए । ९८ श्रीरघुनाथ को देखते ही, दूर ही से रथ पर से उतरकर लक्ष्मण और सुग्रीव को राम के चरणों में पहुँचने में किंचित्मात्र भी विलम्ब नहीं हुआ । राम ने सुग्रीव को मित्रकहकर आलिंगन किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं आगे बढ़कर वे पूछ-ताछ करने लगे । ९९ सुग्रीव विनती करने लगे, हे रघुनाथ ! मैं तो अपनी सेना भी साथ लेकर आया हूँ जिसमें इन्द्र के समान अनेक वीर हैं । ये सभी अपने स्वामी के निमित्त अपने प्राण न्यौछावर करने को तत्पर हैं । जैसी आपकी आज्ञा होगी वैसा ही किया जायगा । १०० प्रसन्नता से हर्षाश्रु की धारा प्रवाहित करते हुए श्रीरघुनाथ ने आज्ञा दी, हे सुग्रीव सखे ! ये बानर चारों दिशाओं की ओर चले जायें और जहाँ सीता हों वहाँ पहुँचकर उनका समाचार ले आवें । राम का यह आदेश पाकर (सुग्रीव ने) सब बानरों को कार्य-विवरण समझाकर उन्हें चारों दिशाओं की ओर भेज दिया । १०१ जाते समय सुग्रीव ने सब वानरों को आज्ञा दी कि हे वीरो ! सब दिशाओं की ओर जाओ— जहाँ भी सीता जी हों, पता लगा कर उनकी ख़बर लेकर पुनः लौट आओ । महीना भर के अन्दर पता लगाने में जो ढिलाई करेगा उसे मैं तुरन्त मार डालूँगा वह बच नहीं पायेगा । १०२ इस प्रकार शीघ्रता से आदेश देकर अन्य

दोपुस तंम्य तोरुह राजिच शेंख वावुम ।
तसुंदि अमि गोनु मैं तिछ सोनु लांक रावुम ।।
यि वोंनमय सुत्य युन तति विह च्रे हावुन ।
यियी लारान त्युथुय गछि तम्बुलावुन ।।
दोपुस तंम्य चरखु योंद बुतुरात फेरि ।
बु मंत्ररन रामु लंखिमन गरि नेरि ।।
तंमिस निशि योंद समन लछ सास रावन ।
अपुज़ छुनु तिम ति नेरन अथु हावन ।। ४० ।।

छु ये नावाह पनुन तति मन्दु छावख ।
पोंजुय वोंनमय च्रुह राजुत रावुरावख ।।
दोपुस तंम्य तोरुह वुन्य मारथ ब शमशीर ।
टुकन वोंथ छुस बु राजति निश गोमुत सीर ।।
मैं वोंनमय बोज़ मांरिजो बु मारथ ।
जुव अय दरकार छुय वोंथ छार कांह वथ ।।
वदुनि मांरिज लोंग योंदवय यि मार्यम ।
नरुक बूगुन दिनम राख्यस प्रक्रत छम ।।
मैं योंदवय रामुजुव मार्यम दियम कान ।
परन गछु रामु रामु अथि यिनम प्रान ।। ४५ ।।

तब उस (रावण) ने कहा—अब मैंने राज्य की शंका (चिन्ता) भी छोड़ दी है। उस गुणवती के लिए मैं सोने की लंका भी त्यागने को तैयार हूँ। तू मेरे साथ चल और वहाँ पहुँचकर अपनी माया दिखा। वह तेरे पीछे भागेगी और तू उसे रिझाते (ललचाते) रहना। तब उस (मारीच) ने कहा कि यदि यह ब्रह्माण्ड भी हिल जाय तो भी राम-लक्ष्मण को ललचाना, उन्हें घर से निकालना, असंभव है। यदि उसके (रामचन्द्र के) सामने हज़ारों लाखों रावण भी इकट्ठे हो जायँ, तो वे भी ख़ाली हाथ ही लौटेंगे—यह असत्य नहीं है। ४० तुम्हारा जो नाम शेष है, उसे भी लजाओगे—यह सच कह रहा हूँ, राज्य को भी गवाँ दोगे। तब उस (रावण ने) कहा—मेरी बात यदि मानते नहीं हो तो तुम्हें शमशीर से मार डालूँगा। जल्दी उठ, मैं राज्य से विरक्त हो चुका हूँ। रे मारीच ! सुन, मैं कह रहा हूँ कि तुझे मार डालूँगा। यदि तुझे अपना जीवन दरकार है तो उठ और कोई रास्ता निकाल। तब मारीच रोने लगा (और सोचने लगा) कि यदि यह मुझे मारता है तो मुझे नरक प्राप्त होगा, क्योंकि राक्षस प्रकृति का हूँ।

तंमिस सुत्य वोंथ मनस येलि यी गंयस राये ।
दोंपुन द्यवु व्यशनुलूकस मंज़ दिनम जाये ।।
सु रावुन ब्यूठ वोनुनि लोंग ज़लुर्य ज़ांज्य ।
सु गव तंम्य रोस्य कंट्य बोंनु सोंनु सुंज़ लांज्य ।।
पकन गंयि वरन बदुलांविथ डंडक वन ।
वुछिक सीता बिहिथ खोंशदिल ब गुलशन ।।
नज़र त्रावुन वुछुन अख जानवारा ।
तिलाई तन ब गर्दन मोंख़्त हारा ।।
यिवन सीतायि येलि बाग़स अन्दर ड्यूठ ।
पकन गंयि रामुच्रंन्दुरस निशि खंटिथ ब्यूठ ।। ५० ।।

कुलिस प्यठ वरनु बदुलिथ जानवर ब्यूठ ।
दोंपुन सुतायि येलि युथ आश्च्रर ड्यूठ ।।
दोंपुन तस रामुच्रंन्दुरस कुन न्यबर नेर ।
खंजरु या तीरु मारुन या ब शमशेर ।।
तंमिस डीशिथ सों सांपुन्य तीव्र बेताब ।
सपुनि युथ नारु सुतिन ख़ाम सीमाब ।।
वनुनि लंज रामुच्रंन्दुरस कुन यि मारुन ।
गछी नीरिथ न्यबर ह्यस पतु लारुन ।।

यदि रामचन्द्रजी के तीर से मरता हूँ तो राम-राम स्मरण कर मेरे प्राणों को सद्गति प्राप्त हो जायगी । ४५ मन में यह विचार कर वह उस (रावण) के साथ हो लिया कि शायद विष्णुलोक में उसे जगह मिल जाये । रावण मायावी जाल बिछाने लगा और वह (मारीच) असली रूप को छिपाकर सोने का एक जानवर बन गया । दोनों वर्ण बदलकर दण्डक वन की ओर चल दिए और वहाँ पर एक गुलशन में सीता को ख़ुशदिल रूप में देखा । उस (सीता) ने नज़र उठाकर उस जानवर को देखा जिसका तन सुनहरा और गर्दन में मोतियों का हार था । जब सीता ने उसे बाग़ के अन्दर आता हुआ देखा तो वह रामचन्द्रजी के पास गई और (इतने में) वह ग़ायब ग़ायब हो गया । ५० और वर्ण बदलकर एक वृक्ष पर बैठ गया । जब सीता ने यह आश्चर्य देखा तो रामचन्द्रजी से कहा कि बाहर उस (जानवर) को खंजर या तीर या शमशीर से मार डालिए । उसे देखकर वह इतनी बेताब हो गई जितना आग से ख़ाम सीमाब (पारा) हो जाता है । वह रामचन्द्रजी से कहने लगी—इसे मार डालिए । तब लक्ष्मण से रामचन्द्रजी ने कहा—यह

वनुन ह्योंत रामुचंदुरन लंखिमनस कुन ।
छु राख्युस जानवर कुंह क्याह छु डेशुन ॥ ५५ ॥

च्रु बेह येत्य रांछ छय सुता हवालु ।
बु योंत तामथ अंमिस गछु पोस वालु ॥
च्रलुनि मारिंज लोंग येलि रामुजुव द्राव ।
रोंटुन वन च्रूरि छ्यफ दिथ जंगलस च्राव ॥
च्रलुनि मारिंज लोंग गोस पतु लारन ।
कंड़िथ गरि न्यून लोगुन कोहु सारन ॥
दितुस तंम्य तीर सेंज़रांविथ पथर प्यव ।
दोंदुय त्युथ युथ दज़ान नारस अन्दर ग्यव ॥
ब तुन्दी तीर लांयिथ सख़्त पोवुन ।
मरुनु विज़ि राखिसन बोंनु नालु लोवुन ॥ ६० ॥
मरुनु विज़ि राखिसन यी दोंप यितांमो ।
कत्यू छुख लंखमनो दरशुन दितांमो ॥
अमी आवाज़ि गंल्य राख्यस ज़े बुनियाद ।
दितुन बोंनु राखिसन लंखिमनु कंरिथ नाद ॥
यंहय क्रख दयतु सुन्ज़ सुतायि येलि बूज़ ।
वदुनि लंज लंख्यमनस निशि गंयि वोंदुनि रूज़ ॥

जानवर के भेस में राक्षस दिखता है, न जाने क्या होनेवाला है। ५५ सीता तेरे हवाले है। तू तब तक यहीं उसकी रखवाली के लिए बैठ जब तक मैं उस (राक्षस) की खाल उधेड़कर लौटता नहीं हूँ। जब रामचन्द्रजी निकले तो मारीच (तेज़ी के साथ) भागने लग गया और वन के अन्दर छिप गया। मारीच भागता गया और वे उसका पीछा करते रहे। (मारीच) उन्हें घर (आश्रम) से निकालकर दूर पहाड़ों आदि की ओर ले गया। तब उन्होंने तीर मारा जिससे वह नीचे गिर गया और ऐसे जलने लगा जैसे आग में घी जलता है। तीक्ष्ण तीर मारकर उन्होंने उसको गिरा दिया। मरते समय उस राक्षस ने ज़ोर से आवाज़ दी। ६० मरते समय उस राक्षस ने यह कहा—आ-जाना, हे लक्ष्मण! तू कहाँ है? मुझे दर्शन दे दे। इस आवाज़ को सुनकर सभी राक्षस जलने लग गए (कि कुछ होनेवाला है)। दैत्य की यह आवाज़ जब सीता ने सुनी तो वह रोती हुई लक्ष्मण के पास जाकर खड़ी हो गई और उसने कहा—भाई तुझे ढूँढ रहा है। तू जल्दी जा और कोई उपाय कर। लक्ष्मण ने कहा—उन्हें कोई परवाह

वनुनि लंज लंखिमनस गछ्बा च्रु लारन ।
कंरिव कंह पाय छुय हो बोय छारन ॥
दोंपुस लंखिमन जुवन कंह छुनु परवाय ।
गंज़र वुन्य वाति पानय छोंपु कर माय ॥ ६५ ॥

तंमिस कुस पोशि नारायन छु पानु ।
गोंवुय क्याह मांज ह्यस रूदुय नु दानु ॥
तिथुय बूज़िथ सों सुता लंज वदने ।
होंरुन ओंश नार गोंडुनस हियि तने ॥
च्रोंटुन सीनुह दोंपुन क्याह गोम क्याह गोम ।
वोंन्य अय येंति कंह गछ्चम पतु मारुनम ज़ाम ॥
दोंपुस लंखिमन जुवन बेंह छख च्रु मोसूम ।
च्रें कर छी राखिसन हुन्द्य विह्य मोलूम ॥
दोंयुम कर रामुजुव दियि यूत फ़रयाद ।
वेंयुम कर कांसि हुन्द तथ जायि इमदाद ॥ ७० ॥

च्रु च्रूरिम रोज़ बेग़म क्याह छु तलवास ।
गंज़र वुन्य पोंस वांलिथ यूर्य ह्यथ आस ॥
दोंपुस तमि तोरु कथ गंज़ुराव मुशकिल ।
मे ज़ोनुम छुय ख़याले ख़ाम दर दिल ॥

नहीं है। वे बस आते ही होंगे। हे माता ! आप विचलित न हों। उनको कौन परास्त कर सकता है। ६५ वे तो स्वयं नारायण हैं। हे माता ! आप ऐसा क्यों सोचती हैं ? ऐसा सुनते ही वह सीता रोने लग गई तथा आँसू बहाने लगी। उसका चमेली-सा तन-बदन दग्ध होने लगा। उसने अपना सीना चाक कर दिया, और कहा कि हाय ! यह मैं क्या देख रही हूँ। अगर अब (उन्हें) कुछ हो गया तो ननदें मुझे मार डालेंगी। तब लक्ष्मण ने कहा—आप यहीं बैठिए। आप मासूम हैं। आप राक्षसों के स्वाँग को नहीं जानतीं। दूसरा (यह भी सोचिए कि) भला रामचन्द्रजी यों फ़र्याद क्यों करते और तीसरा (यह भी सोचने की बात है कि) उस स्थान पर उन्हें भला इमदाद की क्या ज़रूरत होगी। ७० चौथा आप बेग़म (निश्चित) रहें, उद्विग्न क्यों हो रही हैं ? आप (पल) गिनती रहें, वे अभी (उस दैत्य) की खाल उतारकर आ ही रहे होंगे। तब उस (सीता) ने उधर से कहा—तू इसे (मेरी बात को) ऐसा-वैसा न समझ, अपितु इसे एक मुश्किल बात जान। अब मुझे मालूम हो गया कि तेरे दिल में

यि छुख गंजुरन ति वुनि छस ना बु ज़ानन ।
मे प्यठ कुस नकुश गोंडुमुत आसुमानन ॥
मुरुख सुय युस पनुन वन्दि वोरु बायन ।
सु तस कुन लोलु कनि छुय गोलि मारन ॥
गोंडन्य यी वोरु बायन हुन्द्य छि अतुवार ।
दोंयुम आसी मे डीशिथ दिल गिरफ़्तार ॥ ७५ ॥

त्रेंयुम त्रावुन च्रे बोय लंसिनय शतुरगुन ।
यि च्रूरिम चारु क्याह ओसुय यि दुशमन ॥
बु कांत्राह आसु हशि हुंज़ुह पामु त्रालन ।
वनस दिमु नार वुन्य येंत्य पान ज़ालन ॥
जिगुरस छोंख लगन गेलुन लुकन हुन्द ।
पनुन जुव कोनु पनुनिस बरथहस वन्द ॥
अपुज़ छुय युथ नु वोंन्य अमि रायि रावख ।
सु त्रावित्थ नाव तंम्यसुन्द मन्दुछावख ॥
गोंडन्य यी मालिन्यन निशि कस बु ज़ायस ।
दोंयुम व्यवाह कंरित्थ कति गरु आयस ॥ ८० ॥

त्रेंयुम बरथा पनुन ओसुम मे नारान ।
वुन्योम त्रामथ कंरित्थ गोम डाक मांदान ॥

ख़ाम ख़याल हैं (तेरी नीयत ठीक नहीं है) जाने इस आसमान ने मेरे साथ यह क्या छल किया है। (अब मै जान गई) वह मूर्ख है जो सौतेले भाइयों पर अपना जी जान गँवाए। वे तो प्रेम के बदले में गोलियाँ दागते हैं। अव्वल तो सौतेले भाइयों के कर्म ही ऐसे होते हैं। दूसरा, मुझे देख तेरा दिल गिरफ़्तार हो रहा होगा। ७५ तीसरा, तू भाई (रामचन्द्रजी) को छोड़ अपने (असली) भाई शत्रुघ्न के पास चला जा। चौथे, अपने इस भाई (रामचन्द्रजी) से तूने यह अच्छी दुश्मनी निकाली। मैं भला अब सास के ताने कैसे सहूँगी (यदि रामचन्द्रजी को कुछ हो गया तो)। इस वन को आग लगाकर मैं यहीं पर अपने आप को जला डालूँगी। औरों का ताना जिगर पर ज़ख़्म के समान (पीड़ादायक) होता है। मैं अपना शरीर अपने भर्त्ता पर क्यों न वारूँ। तू इस ग़लतफ़हमी में मत रहना कि मैं निःसहाय हूँ और उसे (यों अकेला) छोड़कर अपना नाम मत लजा। प्रथम, मैंने मायके में जन्म ही क्यों लिया और दूसरा, विवाह के बाद यह किस घर में आ गई। ८० तीसरा, मेरा भर्त्ता नारायण

यि च़ूरिम छम च़े कुन वुछ वुछ लगन श्राख ।
शेतुर छुख किनु मेथुर ह्यू सुत्य सुत्य आख ॥
यि पुंच़िम पाम छम कलु च़ंट सपुन्य तन ।
शेयिम सनकी छे क्याह ज़िन्दु छुख च़ु लंखिमन ॥
बु कांच़ाह च़ालु लूकन हुन्ज़ु पामय ।
हरुनि लंज ओंश परुनि लंज रामु रामय ॥
बु मारय पान वुन्य ख्यमु वेह च़ली ज़ाग ।
ति बूज़िथ लंखिमनन ह्योंत बर जिगर दाग़ ॥ ८५ ॥

तिथय नेरन छु लंखिमन जुव गछ़न वन ।
यिथय पांठिन कोंकरमन प्रान नेरन ॥
च़टन जामुह वदन गव जंगलस कुन ।
सपुन पांदा सु रावुन जूग्य लोगुन ॥
सु याम गव ताम सपुन पांदा सु रावुन ।
अथव सुतिन ह्योंतुन तस सुतायि हावुन ॥
अंगन बसमा मंलिथ आँगन अन्दर च़ाव ।
अथस क्यथ गंडवु ह्यथ आंही करान आव ॥
अलख क्रख लांयिनस बूज़िथ न्यबर द्राय ।
दोंपूनस दान दिम रामस लगी आय ॥ ९० ॥

(के समान) था, पर वही मुझे निःसहाय छोड़ गए और मेरा बुरा हाल हो गया। चौथा, तुझे देख-देख मुझ पर छुरियाँ चलती हैं। (सोचती हूँ) तू मित्र है या कि शत्रु, जो हमारे साथ-साथ चला आया। पाँचवा, यह मेरा तन अब विना सिर के हो गया है और छठे, यह सब देखते हुए भी रे लक्ष्मण, तू जिन्दा है ? अब मैं लोगों के ताने कैसे सहन करूँगी और इस तरह वह आँसू बहाने लगी और राम-राम रटने लगी—मैं अभी यहीं पर ज़हर खाकर अपना शरीर मार डालूँगी और तभी तेरा अन्धकार दूर हो जायगा। यह सुनकर लक्ष्मण के जिगर को दाग़ लग गया। ८५ और वह (तभी) वन के लिए निकल पड़ा, जैसे कुकर्मियों के प्राण निकलते हैं। वह रोता-बिलखता जंगल की ओर निकल पड़ा और जैसे ही वह निकला, उधर से (वह) रावण (फ़कीर का) भेस धारण कर पैदा हो गया और हाथों से सीता को इशारा करने लगा। अंग में भस्म मले तथा हाथों में लोटा लेकर वह (रावण) आँगन के अन्दर प्रविष्ट हुआ तथा आशीर्वाद देता हुआ सामने आया। उसने अलख लगाकर दान की याचना की जिसे सुनकर वह

दोंपुस तमि गोम वुन्य गंडनम दिलस रेह ।
दोंपुस तंम्य वोंथ टुकान लंकायि प्यठ बेह ॥
दोंपुस तमि गछ़ च़ु तथ लंकायि दिस नार ।
ति बूज़िथ राखिसन तस होव व्यंखचार ॥
दोंपुस तमि रामुचंन्दुरुन बुथ वुछुथ ना ।
दोंपुस तंम्य खोश गछ़ख डीशिथ च़ु लंका ॥
दोंपुस तंम्य कवु दोंदुय येति तापु ताल्युन ।
दोंपुस तमि कूर गछ़ि कर पानु माल्युन ॥
दोंपुस तंम्य पख वुछुन लंका नबस सुत्य ।
दोंपुस तमि कूर गछ़ि पनुनिस बबस सुत्य ॥ ९५ ॥

दोंपुस तंम्य छख च़ु गांमुत्र प्यति वोंदांसी ।
दोंपुस तमि ज़ान वांरिवि गरि बु दांसी ॥
दोंपुस तंम्य चोन गछ़ि लंकायि प्यठ युन ।
दोंपुस तमि ज़ामुतुर गछ़ि वीगि फिरु न्युन ॥
ति बूज़िथ रावुनस गव क्रूद पांदा ।
हरुनि लंज ओंश मरुनि लंज क्याह सों सुता ॥

(सीता) बाहर आगई । उस (रावण) ने कहा—मुझे कुछ दान दे जिससे (तेरे) राम की आयु बढ़ेगी । ९० वह बोली—वे तो अभी-अभी कहीं चले गए हैं और मेरे दिल में अग्नि की ज्वाला भड़क उठी है । उसने कहा उठ जल्दी कर और (मेरे साथ) चलकर लंका का वैभव स्वीकार कर । वह बोली—जा और उस लंका को जला डाल । यह सुनकर रावण ने उसे अपना (विकराल) वास्तविक रूप दिखाया । वह बोली—तूने शायद अभी तक रामचन्द्रजी का मुँह नहीं देखा है । उसने कहा—तू लंका को देखकर खुश हो जायगी—तू यहाँ (इस निर्जन में) क्यों मारे गर्मी के अपने आप को तपा रही है । वह बोली—भला पुत्री अपने मायके कैसे जायगी ? उसने कहा—चल, तुझे (नभ) आकाश को छूती हुई लंका दिखाऊँ । वह बोली—पुत्री तो अपने पिता के साथ ही जायगी । ९५ उसने कहा—तू पति के लिए क्यों उदास हो रही है । वह बोली—ससुराल में मुझे तू दासी के समान जान (मैं अपने पति की अनुगामिनी बनी रहूँगी)। उसने कहा—तुझे लंका में चलना ही चाहिए । वह बोली—अपने जामातृ को लग्नोपरान्त वहाँ ले जाना चाहिए था । यह सुनकर रावण में क्रोध पैदा हो गया और (वह) सीता निःसहाय होकर आँसू बहाने लगी । (तब रावण ने कहा—)

च़ु छख ना परज़ुनावान अय गुल अंदाम ।
गोसोन्य त्रावुन मे रावुन छिम दपान नाम ।।
दया कर वोथ मे प्यठ त्रावुन सु संन्यास ।
थवय सीवा करुनि हूरस शुराह सास ।। १०० ।।

यि कथ बूज़िथ तंमिस सुतायि गव गश ।
दपन ज़न रावुनस त्रोवुख कंरिथ खश ।।
गोलाबस सोसुनुक ह्युव रंग तस गव ।
हलब आयीनु ज़न बोन कनि प्यठ प्यव ।।
वुछिव सुतायि येलि आकांश्य ह्यथ गव ।
रंटिथ तुज तंम्य वदन द्रायस फंटिथ ज़्यव ।।
खंटिथ यमुराज़ु गव ह्यथ अमर्यतुच त्रेश ।
गरुडुह सुन्दि बीमु सरफव दरबि दित्य फेश ।।
च्रोंदश च्रंन्दरमु कोर कीतन अवारुह ।
वंसिथ आकाशि पेयि सारी सितारुह ।। १०५ ।।

तिथुय बोनु ज़ोन सिरियन ती गछ्यम जान ।
दितुन च्रंन्दुरमु मोकुलोवुन पनुन पान ।।
वंछुस येलि कालु गटु नेथुरन अन्युव प्योस ।
तुजिन कीशव रंटिथ आकांश्य ह्यथ गोस ।।

अरी फूलों की रानी! तू क्या मुझे नहीं पहचानती है? उस जोगी को छोड़, मुझे रावण कहते हैं। उठ, मुझपर दया कर और उस संन्यासी को त्याग दे। मैं तेरी सेवा के लिए सोलह हज़ार हूरों (अप्सराओं) को रखूंगा। १०० यह बात सुनकर वह सीता ग़श खा गई और रावण की हालत ऐसी हो गई जैसे उसे काट दिया गया हो। (सीता के) गुलाब की तरह चमकते मुखमण्डल का रंग धूमिल हो गया और जैसे चमकते आईने को नीचे पत्थर पर फेंक दिया गया हो। जब सीता को वह (रावण) ज़ोर से पकड़ ऊपर आकाश में उड़ाकर ले गया तो रो-रोकर उसकी जीभ बाहर फटने को आगई। (रावण-रूपी) यमराज अमृत-पेय (सीता) को छिपा कर ले गया। गरुड (रावण) के भय से सभी सर्प (विवश होकर) कुश को चूसने लगे। चौदहवीं के चन्द्र को केतु ने ग्रस लिया जिसे देख आकाश के सभी सितारे निपातित हुए। १०५ सूर्य ने इसी में अपनी ख़ैर समझी और उसने अपने आप को बचाकर चन्द्रमा को सामने कर दिया।

सिरीरागु महला ३

मनमुखु मोहि विआपिआ बैरागु उदासी न होय। सबदु न चीनै सदा दुखु हरि दरगहि पति खोय। हउमै गुरमुखि खोईऐ नामि रते सुखु होय ॥ १ ॥ मेरे मन अहिनिसि पूरि रही नित आसा। सतगुरु सेवि मोहु परजलै घर ही माहि उदासा ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखि करम कमावै बिगसै हरि बैरागु अनंदु। अहिनिसि भगति करे दिनु राती हउमै मारि निचंदु। वडै भागि सतिसंगति पाई हरि पाइआ सहजि अनंदु ॥ २ ॥ सो साधू बैरागी सोई हिरदै नामु वसाए। अंतरि लागि न तामसु मूले विचहु आपु गवाए। नामु निधानु सतगुरू दिखालिआ हरिरसु पीआ अघाए ॥ ३ ॥ जिनि किनै पाइआ साधसंगती पूरै भागि बैरागि। मनमुख फिरहि न जाणहि सतगुरु हउमै अंदरि लागि। नानक सबदि रते हरिनामि रंगाए बिनु भै केही लागि ॥ ४ ॥ ८ ॥ ४१ ॥

श्रीराग महला ३—अपने मन के पीछे-भागनेवाला मनुष्य माया मोह में फँस कर ईश्वरीय लगन से दूर होता जाता है। चूँकि वह अज्ञानी पुरुष प्रभु के अनुकूल आचरण नहीं करते अतः उन्हें सदैव दुख-क्लेश घेरे रहते हैं—अंहकार उनका पीछा नहीं छोड़ता। गुरु की आज्ञा के समक्ष सर्वस्व अर्पण करनेवाले, सदैव प्रसन्नचित्त रहकर, आत्मिक शांति एवं आनन्द को प्राप्त करते हैं। साधु-संगत में रहकर सत्संग की महिमा से ईश्वर की प्राप्ति हेतु प्रयत्न कर सुख भोगते हैं। वही व्यक्ति वास्तव में साधु एवं बैरागी हैं जो अपने हृदयों में प्रभू का नाम बसा लेते हैं—विकारों की कालिमा उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाती और फिर ईश्वर-प्रदत्त दिव्य दृष्टि से वे अपने-अपने अन्तःकरणों में प्रभू का दर्शन करने में समर्थ हो जाते हैं। ईश्वर की प्राप्ति जिसने भी की है, सत्संग में ही की है। जंगलों में भटकने से न तो ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है और न ही अहंकार की मैल दूर हो सकती है। जो लोग गुरोपदेश में रँगे हुए हैं वे परमात्मा के नाम में रँगे जाते हैं—और यह सब तभी प्राप्त होता है जब मानवमात्र में ईश्वरीय भय समाया हुआ हो।

सिरीरागु महला ३

घर ही सउदा पाईऐ अंतरि सभ वथु होय। खिनु खिनु नामु समालीऐ गुरमुखि पावै कोय। नामु निधानु अखुटु है

वडभागि परापति होय ॥ १ ॥ मेरे मनि तजि निंदा हउमै अहंकारु । हरि जीउ सदा धिआय तू गुरमुखि एकंकारु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ गुरमुखा के मुख उजले गुरसबदि बीचारि । हलति पलति सुखु पाइदे जपि जपि रिदै मुरारि । घर ही विचि महलु पाइआ गुरसबदी वीचारि ॥ २ ॥ सतगुर ते जो मुह फेरहि मथे तिन काले । अनदिनु दुख कमावदे नित जोहे जमजाले । सुपनै सुखु न देखनी बहु चिंता परजाले ॥ ३ ॥ सभना का दाता एकु है आपे बखस करेय । कहणा किछू न जावई जिसु भावै तिसु देय । नानक गुरमुखि पाईऐ आपे जाणै सोय ॥४॥६॥४२॥

श्रीराग महला ३—समस्त अच्छाइयाँ एवं बुराइयाँ, गुण एवं दुर्गुण मानवमात्र के हृदय में ही निहित होते हैं, अवसर प्राप्त कर वे अपना रूप दिखाते हैं—ईश्वर का दिव्य स्वरूप भी यदि हम देखना चाहें तो अपने अन्दर शुद्ध हृदय से झाँक कर देख सकते हैं। गुरू की शरणागत हो, श्वास-श्वास प्रभू का नाम स्मरण करना चाहिए—यह वह ख़जाना है जो कभी समाप्त नहीं होता और प्राप्त भी उसी को होता है जिस पर उसकी स्वयं कृपादृष्टि हो जाती है। गुरू के सन्मुख रहकर अहर्निश उसे ध्यानेवाले सदैव प्रसन्न रहते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं। गुरू की ओर से विमुख होनेवाले मनुष्य सदैव दुखी एवं परेशान रहते हैं—यमराज का भय उन पर छाया रहता है—चिन्ता एवं अप्रसन्नता उन्हें क्षीण करती रहती है। सबके दिलों की जाननेवाला वह परमात्मा जिस पर प्रसन्न होता है उसे नामस्मरण का दान देता है और फिर नाम-स्मरण के सहारे गुरु की सहायता से ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है।

सिरीरागु महला ३

सचा साहिबु सेवीऐ सचु वडिआई देय। गुरपरसादी मनि वसै हउमै दूरि करेय। इहु मनु धावतु ता रहै जा आपे नदरि करेय ॥ १ ॥ भाई रे गुरमुखि हरिनामु धिआय। नामु निधानु सदा मनि वसै महली पावै थाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ मनमुख मनु तनु अंधु है तिस नउ ठउर न ठाउ। बहु जोनी भउदा फिरै जिउ सुंञै घरि काउ। गुरमती घटि चानणा सबदि मिलै हरिनाउ ॥ २ ॥ त्रै गुण बिखिआ अंधु है माइआ मोह गुबार। लोभी अन कउ सेवदे पड़ि वेदा करहि पुकार। बिखिआ अंदरि पचि मुए ना उरवारु न पारु ॥ ३ ॥ माइआ मोहि

विसारिआ जगत पिता प्रतिपालि । बाझहु गुरू अचेतु है सभ बधी जमकालि । नानक गुरमति उबरे सचा नामु समालि ।।४।।१०।।४३।।

श्रीराग महला ३—हे भाइयो ! सदैव स्थिर रहनेवाले अविनाशी प्रभू का नाम स्मरण करना चाहिए क्योंकि नाम स्मरण करनेवाले सदैव प्रशंसा प्राप्त करते हैं और अपने अन्तस्तल से अंह का नाश कर देते हैं--माया जाल को काट फेंकते हैं । अपने मन के पीछे चलनेवाले मायाजाल में फँस जाते हैं; उनकी ज्ञान-इन्द्रिया भी कुछ देख नहीं पाती; जन्म-मरण आवागमन के चक्करों में भटकते रहते हैं; आत्मिक शांति को कदापि प्राप्त नहीं कर पाते । गुरू की शिक्षा पर चलनेवाले सूझ-बूझ को प्राप्त कर अन्धकार को दूर हटा प्रकाश को प्राप्त करते हैं । अर्थात् ईश्वरीय नाम, यश, गुणगान में रम जाते हैं । यह संसार माया-मोह में फँसा हुआ है—न तो इसे ओर-छोर का ज्ञान है न ईश्वरीय दिव्य रूप का । सभी माया द्वारा छले जा चुके प्रतीत होते हैं । माया-मोह में फँसकर मनुष्य मात्र ने जगत्पिता प्रतिपालक, ईश्वर, पारब्रह्म को भुला दिया है—परमात्मा से बिछुड़ा हर व्यक्ति आत्मिक मृत्यु के बंधनों में जकड़ा हुआ है । अतः गुरू की शरण पकड़ सच्चे गुरू के चरणों में शुद्ध हृदय से प्रार्थना करने पर मनवांछित फल की कामना की जा सकती है ।

सिरीरागु महला ३

त्रै गुण माइया मोहु है गुरमुखि चउथा पदु पाय । करि किरपा मेलाइअनु हरिनामु वसिआ मनि आय । पोतै जिन कै पुंनु है तिन सतसंगति मेलाय ।। १ ।। भाई रे गुरमुति साचि रहाउ । साचो साचु कमावणा साचै सबदि मिलाउ ।। १ ।। रहाउ ।। जिनी नामु पछाणिआ तिन विटहु बलि जाउ । आपु छोडि चरणी लगा चला तिन कै भाय । लाहा हरि हरि नामु मिलै सहजे नामि समाय ।। २ ।। बिनु गुर महलु न पाईऐ नामु न परापति होय । ऐसा सतगुरु लोड़ि लहु जिदू पाईऐ सचु सोय । असुर संघारै सुखि वसै जो तिसु भावै सु होय ।। ३ ।। जेहा सतिगुरु करि जाणिआ तेहो जेहा सुखु होय । एहु सहसा मूले नाही भाउ लाए जनु कोय । नानक एक जोति दुइ मूरती सबदि मिलावा होय ।। ४ ।। ११ ।। ४४ ।।

श्रीराग महला ३—जगत् में त्रिगुणी माया अपना मोहजाल फैला रही है, अतः हे मनुष्य! ईश्वर का नाम जप । माया जाल से दूर हो जा । पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप तुम आज यशस्वी हो । गुरुदेव कहते

हैं, मैं उन व्यक्तियों पर अभिमान करता हूँ जो गुरु का नाम जपते और उसमें श्रद्धा रखते हैं—इस प्रकार आत्मिक शांति और अडोलता को प्राप्त करते हैं। सच्चे गुरु की शरण के बिना गति संभव नहीं। गुरु की कृपा से यदि परमात्मा को प्राप्त कर लिया जावे तो कितनी बड़ी आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो। गुरुचरणों में सच्ची श्रद्धा से नतमस्तक होने-वाले सदैव अलौकिक आनन्द की अनुभूति करते हैं। गुरु की शरण में आया गुरु का सच्चा सेवक तो गुरू में लीन हो जाता है। वह एकाकार होकर केवल शरीरिक रूप से अलग-अलग रहते हैं—जीवन-ज्योति एक ही होती है जो गुरु और सेवक दोनों में देदीप्यमान रहती है।

सिरीरागु महला ३

अम्रितु छोडि बिखिआ लोभाणे सेवा करहि विडाणी। आपणा धरमु गवावहि बूझहि नाही अनदिनु दुखि विहाणी। मनमुख अंधु न चेतही डूबि मुए बिनु पाणी ॥ १ ॥ मन रे सदा भजहु हरि सरणाई। गुर का सबदु अंतरि वसै ता हरि विसरि न जाई ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इहु सरीरु माइआ का पुतला विचि हउमै दुसटी पाई। आवणु जाणा जंमणु मरणा मनमुखि पति गवाई। सतगुरु सेवि सदा सुखु पाइआ जोती जोति मिलाई ॥ २ ॥ सतगुर की सेवा अति सुखाली जो इछे सो फलु पाइ। जतु सतु तपु पवितु सरीरा हरि हरि मंनि वसाए। सदा अनंदि रहै दिनु राती मिलि प्रीतम सुखु पाए ॥ ३ ॥ जो सतगुर की सरणागती हउ तिन कै बलि जाउ। दरि सचै सची वडिआई सहजे सचि समाउ। नानक नदरी पाईऐ गुरमुखि मेलि मिलाउ ॥ ४ ॥ १२ ॥ ४५ ॥

श्रीराग महला ३—अपने मन के पीछे चलनेवाले मनुष्य-आत्मिक जीवन देनेवाला नामरस छोड़कर मायावी रसों में मस्त रहते हैं और वास्तविक जीवन का यथार्थ भुला बैठते हैं—इस प्रकार विकारों में पड़कर दुख भोगते हुए यह अमूल्य मानव-जीवन यों ही बिता देते हैं। ईश्वर की ओर से विमुख हुए लोग सदैव मायाजाल में भटकते हैं, अंहकार एवं अन्य विकारों में फँस कर आवागमन के चक्करों में पड़ जाते हैं; न इस संसार में शोभनीय होते हैं और न ही परलोक में उनका यश होता है। परन्तु जिन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को माना है वे आत्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर उसमें एकाकार हो जाते हैं। सच्चे मन से की गई ईश्वर की सेवा, सुखफलदायक है, मन वांछित फल प्राप्त करानेवाली है और

जप, सत, तप का मूल है। ईश्वर के ऐसे सच्चे सेवकों पर, गुरुदेव कहते हैं, मैं क़ुर्बान होता हूँ, क्योंकि वे ही यशस्वी पुरुष हैं, स्थिर मतिवाले हैं, और मोक्ष को प्राप्त करनेवाले हैं। ऐसे महानुभावों का संसर्ग ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है।

सिरीरागु महला ३

मनमुख करम कमावणे जिउ दोहागणि तनि सीगारु। सेजै कंतु न आवई नित नित होय खुआरु। पिर का महलु न पावई ना दीसै घरु बारु॥ १॥ भाई रे इकमनि नामु धिआइ। संता संगति मिलि रहै जपि रामनामु सुखु पाय॥ १॥ रहाउ॥ गुरमुखि सदा सोहागणी पिरु राखिआ उरधारि। मिठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु। सोभावंती सोहागणी जिन गुर का हेतु अपारु॥ २॥ पूरै भागि सतगुरु मिलै जा भागै का उदउ होय। अंतरहु दुखु भ्रमु कटीऐ सुखु परापति होय। गुर कै भाणै जो चलै दुखु न पावै कोय॥ ३॥ गुर के भाणे विचि अंम्रितु है सहजे पावै कोय। जिना परापति तिन पीआ हउमै विचहु खोइ। नानक गुरमुखि नामु धिआईऐ सचि मिलावा होइ॥ ४॥ १३॥ ४६॥

श्रीराग महला ३—ईश्वर की प्राप्ति-हेतु यथार्थ जीवन की आवश्यकता है न कि दिखावे की। जिस प्रकार स्त्री का रूप, शृंगार, लावण्य तब तक व्यर्थ है जब तक उसका अपना पति प्रीतम उसे न सराहे। अतः प्रभू प्रीतम से मिलने के लिए निष्कपट हृदय एवं प्रेम चाहिए। वे सभी व्यक्ति सुहागिन स्त्रियों के समान हैं जो प्रभूभक्ति में लीन सदैव प्रभू को अपने हृदय में बसाए रखते हैं सबसे प्रेमव्यवहार रखते हैं, गरीबी स्वभाववाले होते हैं और अपने प्रीतम से मिलने की तड़प रखते हैं। ईश्वर की प्राप्ति तभी होती है जब मनुष्य का भाग्योदय होता है, समस्त दुख-क्लेश कट जाते हैं, जीवन में स्थिरता आ जाती है और आत्मिक आनन्द प्राप्त होने लगता है। अपने गुरु की आज्ञा में रहनेवाले सदैव सुखी रहते हैं। प्रभू की आज्ञा में रहनेवाले उसका नाम रूपी अमृत पान करके तृप्त होते हैं और आत्मिक अडोलता को प्राप्त कर अपने अन्दर की अहंभावना को दूर कर देते हैं। अतः हे भाइयो! सदैव गुरु की शरण में आकर प्रभू का यशगान, नामस्मरण करना चाहिए जिससे ईश्वर प्राप्ति हो सके।

सिरीरागु महला ३

जा पिरु जाणै आपणा तनु मनु अगै धरेइ। सोहागणी करम कमावदीआ सेई करम करेइ। सहजे साचि मिलावड़ा साचु वडाई देइ ॥ १ ॥ भाई रे गुर बिनु भगति न होय। बिनु गुर भगति न पाईऐ जे लोचै सभु कोय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ लख चउरासीह फेरु पइआ कामणि दूजै भाय। बिनु गुर नीद न आवई दुखी रैणि विहाय। बिनु सबदै पिरु न पाईऐ बिरथा जनमु गवाय ॥ २ ॥ हउ हउ करती जगु फिरी ना धनु संपै नालि। अंधी नामु न चेतई सभ बाधी जमकालि। सतिगुरि मिलिऐ धनु पाइआ हरिनामा रिदै समालि ॥ ३ ॥ नामि रते से निरमले गुर कै सहजि सुभाइ। मनु तनु राता रंग सिउ रसना रसन रसाइ। नानक रंगु न उतरै जो हरि धुरि छोडिआ लाय ॥ ४ ॥ १४ ॥ ४७ ॥

श्रीराग महला ३--जब जीव रूपी स्त्री अपने प्रभू पति को निष्कपट हृदय से अपना बना लेती है तब वह अपना तन-मन-धन अर्थात् सर्वस्व प्रभू के पवित्र चरणों में अर्पित कर देती है; माया-मोह से दूर रह वह जीवरूपी स्त्री वही कार्य करती है जो भगतजन (प्रभूभक्त) करते हैं। इस प्रकार आत्मिक अडोलता को प्राप्त कर वह सदैव स्थिर रह प्रभू से मिलाप करती है और फिर ईश्वर अपने दर पर उसे इज़्ज़त देता है। परन्तु जो जीव मायाजाल में फँसे रहते हैं उन्हें चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ता है। न तो उन्हें आत्मिक शांति प्राप्त होती है न सुख, और वे अपना अमूल्य मानवजीवन यों ही व्यर्थ गँवा बैठते हैं। मानवजाति प्रायः माया-मोह के बंधनों में फँसकर जीवन यों ही बिता देती है, परन्तु एकत्रित धन-संपदा कभी किसी के साथ नहीं जाती, माया की चकाचौंध में अंधे लोग परमात्मा को याद नहीं करते, उसका नाम स्मरण नहीं करते, अतः यम का भय उन्हें सदैव सताता रहता है। परन्तु यदि उन्हें गुरू की प्राप्ति हो जावे तो हरिनाम-धन मिल जाता है जिससे उनका जीवन सुधर जाता है। गुरोपदेश को अपने हृदयों में बसाने वाले परमात्मा के रंग में रँगे जाते हैं और उनका जीवन पवित्र हो जाता है। प्रभू-भक्ति में लीन आत्मिक अडोलता को प्राप्त करते हैं, उनका तन-मन सभी कुछ प्रभू नाम में रंग जाता है, रसना सदैव प्रभू का यशगान करती है। गुरूदेव कहते हैं जिन पर उस ईश्वर की कृपा हो जाती है उन जीवों पर नाम-रंग सदैव चढ़ा रहता है, कभी उतरता नहीं।

सिरीरागु महला ३

गुरमुखि कृपा करे भगति कीजै बिनु गुर भगति न होई। आपै आपु मिलाए बूझै ता निरमलु होवै सोई। हरि जीउ साचा साची बाणी सबदि मिलावा होई॥ १॥ भाई रे भगतिहीणु काहे जगि आइआ। पूरे गुर की सेव न कीनी बिरथा जनमु गवाइआ॥ १॥ रहाउ॥ आपे जगजीवनु सुख दाता आपे बखसि मिलाए। जीअ जंत ए किआ वेचारे किआ को आखि सुणाए। गुरमुखि आपे देइ वडाई आपे सेव कराए॥ २॥ देखि कुटंबु मोहि लोभाणा चलदिआ नालि न जाई। सतगुरु सेवि गुण निधानु पाइआ तिस दी कीम न पाई। हरिप्रभु सखा मीतु प्रभु मेरा अंते होय सखाई॥ ३॥ आपणै मनि चिति कहै कहाए बिनु गुर आपु न जाई। हरि जीउ दाता भगतिवछलु है करि किरपा मनि वसाई। नानक सोभा सुरति देइ प्रभु आपे गुरमुखि दे वडिआई॥ ४॥ १५॥४८॥

श्रीराग महला ३--गुरू की शरण के बिना ईश्वर की अराधना नहीं हो सकती और जीव तभी भक्ति कर सकता है जब ईश्वर की कृपादृष्टि गुरू के द्वारा प्राप्त हो जावे। ईश्वर सदैव स्थिर है, उससे संबंधित सब कुछ सदैव स्थिर है—यह ज्ञान तभी प्राप्त हो सकता है जब उसमें एकाकार होने की चेष्टा की जावे और जीवन पवित्र कर लिया जावे। परमात्मा स्वयं सृष्टि का सृजनहार, प्रतिपालक, रक्षक एवं दुख-सुख का दाता है; मनुष्य उसके समक्ष बिल्कुल असमर्थ है, अपंग है, उसकी कृपा के बिना जीव कुछ नहीं कर सकता; जो कुछ सृष्टि में हो रहा है वह सब परमात्मा द्वारा ही कराया जा रहा है। जीव पारिवारिक सुख-सुविधाओं में व्यस्त हो अमूल्य जीवन व्यर्थ कर देता है, जबकि परिवार के जिन सदस्यों-हेतु वह इतना कुछ करता है उनमें कोई भी मृत्यु के समय साथ नहीं देता। अतः जिसने जीवन का यह भेद जान लिया है, गुरू दीक्षा से गुणसागर परमात्मा की प्राप्ति कर ली है, उसकी आत्मिक अवस्था की ऊँचाई आँकी नहीं जा सकती और इस प्रकार उस मनुष्य का मित्र-सखा बनकर इस लोक एवं परलोक में सदा सहायता करता है। मानव अपने मन में छुपे अहंभाव को तभी समाप्त कर सकता है जब सच्चे दिल से ईश्वर की शरण प्राप्त कर उसकी कृपा प्राप्त कर सके। सारी सृष्टि का अन्नदाता जब चाहता है जिसके ऊपर चाहे अपनी दयादृष्टि बरसाता है; अपनी भक्ति द्वारा जिसे चाहता है ऊपर उठाता है अपनी भक्ति, अराधना, शोभा, यश, मान, सम्मान आदि समस्त वस्तुएँ वह स्वयं प्रसन्न होकर प्रदान करता है।

सिरीरागु महला ३

धनु जननी जिनि जाइआ धंनु पिता परधानु। सतगुरु सेवि सुखु पाइआ विचहु गइआ गुमानु। दरि सेवनि संत जन खड़े पाइनि गुणी निधानु ।। १ ।। मेरे मन गुरमुखि धिआय हरि सोइ। गुर का सबदु मनि वसै मनु तनु निरमलु होय ।। १ ।। रहाउ ।। करि किरपा घरि आइआ आपे मिलिआ आइ। गुर सबदी सालाहीऐ रंगे सहजि सुभाय। सचै सचि समाइआ मिलि रहै न विछुड़ि जाय ।। २ ।। जो किछु करणा सु करि रहिआ अवरु न करणा जाइ। चिरी विछुन्ने मेलिअनु सतगुर पंनै पाय। आपे कार कराइसी अवरु न करणा जाय ।। ३ ।। मनु तनु रता रंगा सिउ हउमै तजि विकार। अहिनिसि हिरदै रवि रहै निरभउ नामु निरंकार। नानक आपि मिलाइअनु पूरै सबदि अपार ।। ४ ।। १६ ।। ४६ ।।

श्रीराग महला ३--वे माँ-बाप पूजनीय हैं जिन्होंने ऐसे बालक को जन्म दिया जो प्रभू में लीन हो आत्मिक आनन्द की प्राप्ति कर अपने जीवन के प्रकाश से दूसरों में समाये अहंभाव अंधकार को भी दूर करता है और सच्चाई का मार्ग-दर्शन करते हुए गुणसागर परमात्मा से मिलाप करता एवं करवाता है। गुरू की शरण से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है, ईश्वर की अराधना-भक्ति-यशगान सभी कुछ उस गुरू की शरण से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार आत्मिक अडोलता को प्राप्त कर प्रभू के रंग में जीव रंगा जाता है और अन्ततोगत्वा उन्हीं में एकाकार अथवा लीन हो जाता है। युगों-युगों से बिछुड़े जीव सच्चे गुरू की शरण प्राप्त कर ईश्वर के दर की प्राप्ति कर रहे हैं और ईश्वर ही स्वयं यह सब मिलाप करवा रहा है। जो कुछ हो रहा है वह उसी ईश्वर द्वारा कराया जा रहा है जिसे अपनी शरण में लेना होता है। उसे पहले सच्चा मार्ग दिखानेवाले अपने अनन्य भक्त सच्चे गुरु की शरण प्राप्त करवा देता है। इस प्रकार सभी विकार दूर करके जीव, परमात्मा के नाम के रंग में रंग कर शरणागत हो निर्भय दानदाता ईश्वर के पवित्र नाम को अपने हृदय में बसा लेता है और गुरोपदेश से ईश्वर से अपने मिलाप को सुलभ बना लिया है।

सिरीरागु महला ३

गोविदु गुणी निधानु है अंतु न पाइआ जाय। कथनी बदनी न पाईऐ हउम विचहु जाय। सतगुरि मिलिऐ सद भै रचै आपि वसै मनि आय ।। १ ।। भाई रे गुरमुखि बूझै कोय।

श्रुत्या विधिर्विवाहस्य यादृशोऽस्ति निरूपितः। स सर्वोऽपि विधिस्तत्र कारितस्तैर्महर्षिभिः॥
कुशान् गृहीत्वा गिरिराट् स्वात्मजायाः करं तथा। तां भवानीं परिज्ञाय भवायैव समार्पयत्॥
चकार पाणिग्रहणं यदा देवो महेश्वरः। सञ्जाता हृदये हृष्टास्तदा सर्वे सुरेश्वराः॥
उच्चारयन्ति स्म सर्वे वेदमन्त्रान् मुनीश्वराः। सुराश्चोचुर्जय जय शङ्कर इत्यपि॥
नानाविधानैर्वाद्यानि प्रारभ्यन्ते स्म वादितुम्। नभसः सुमनोवृष्टिस्तथा नानाविधाभवत्॥
हरस्य गिरिजायाश्च विवाहः समजायत। व्याप्तोऽभवत् तथानन्दः सर्वेषु भुवनेष्वपि॥
दास्यो दासास्तुरङ्गाश्च स्यन्दनाः कुञ्जरोत्तमाः। गावो वासांसि मणयो नाना वस्तुचयास्तथा॥
अन्नानि स्वर्णपात्राणि यानेष्वापूर्य सर्वतः। इति दत्ताः पारिबर्हा येषां शक्यं न वर्णनम्॥

असौ समर्घ्यं नैकधा सुपारिबर्हमद्भुतं करौ सुयोज्य चावदत् पुनर्गिरीश्वरः शिवम्।
किमर्पयामि शङ्कर प्रभो सुपूर्णकामधृग् इति प्रकथ्य संस्थितः प्रगृह्य पादपङ्कजे॥
शिवः कृपाम्बुधिः प्रियाजनिप्रदस्य सादरं चकार सर्वरीतिभिर्हिमाचलस्य तोषणम्।
सुहार्दपूर्णचेतसा ततो गिरीश्वरप्रिया पदाम्बुजे समग्रहीद् वृषध्वजस्य चाह तम्॥

प्राणैः समोमास्ति मता ममेश करोत्विमां स्वालयकिङ्करीं भोः।
सर्वापराधान् क्षमताममुष्या भवान् वरान् मे मुदितो ददातु॥ १०१॥

शङ्करो बोधयामास श्वश्रूं बहुविधं तदा। ततः सा शङ्करस्याङ्घ्रिद्वयं नत्वा गृहं ययौ॥
समाह्वयदुमां सोमाजननी तदनन्तरम्। उपादिदेश रुचिरमुमामङ्के निधाय सा॥
यत् पार्वति! त्वं सततं कुरु शम्भुपदार्चनम्। नारीधर्मोऽस्त्ययं तासां देवो भर्तैव नापरः॥
इत्थं वदन्त्यास्तस्यास्तु पूरितं नेत्रयोर्जलम्। ततश्च सा कुमारीं तां स्वोरसा समयोजयत्॥
ऊचे च यद् विधिर्लोके किमर्थं सृष्टवान् स्त्रियम्। स्वप्नेऽपि नैव लभते पराधीनो जनः सुखम्॥
जातातिप्रेमविकला वदन्तीत्थं जनिप्रदा। किन्तु ज्ञात्वा कुसमयं धैर्यं धारयति स्म सा॥
मिमेल चापतद्भूयः पुत्र्याः पादौ प्रगृह्य सा। प्रवक्तुं सा परा प्रीतिर्न तयोः कापि शक्यते॥
ततो भवानी सकलामिलित्वाश्लिष्य योषितः। पुनर्गत्वा श्लिष्यति स्म जनन्या उरसं द्रुतम्॥

पुनः समेत्य सा प्रसूं चचाल भूधरात्मजा समा अपि स्त्रियो ददुः सुयोग्यमङ्गलाशिषः।
पुनः पुनर्व्यलोकयत् तदा च सा जनिप्रदां सखीजनस्ततस्तु तां निनाय शङ्करान्तिकम्॥
शिवः प्रतोष्य याचकाननेकधा समानपि प्रतिष्ठति स्म मन्दिरं समन्वितोऽद्रिकन्यया।
सुमानि सर्वदेवता ववर्षुरेव नन्दिता मनोहरानकास्तदा विहायसि प्रवादिताः॥

प्रीत्या हिमाद्रिः परया शिवेन साकं ययौ प्रापयितं गृहं तम्।
नानाप्रकारैः परितोष्य सोऽपि विसर्जयामास वृषध्वजस्तम्॥ १०२॥

समागच्छत् स्वभवनं क्षणादेव गिरीश्वरः। आमन्त्रयामास सर्वान् गिरींश्चापि सरोवरान्॥
बहुमानेन दानेन विनयेन च सादरम्। ततो विसर्जयामास सर्वानेव हिमालयः॥
सदाशिवः समागच्छद् यदा कैलासपर्वतम्। सर्वे सुरास्तदा लोकं समगच्छन्निजं निजम्॥
भवो भवानी द्वावेव जगतः पितरौ मतौ। शृङ्गारोऽतस्तयोर्नैव कथञ्चिदपि वर्ण्यते॥
विविधैर्विधिभिर्भोगान् विलासांश्च प्रचक्रतुः। ऊषतुश्च गणैः साकं कैलासे पर्वतोत्तमे॥
हरस्य गिरिजायाश्च विहारा नित्यनूतनाः। व्यतिचक्राम विपुलः कालो रीत्यानया तयोः॥
ततो जज्ञे कार्तिकेयः कुमारस्तु षडाननः। समरे निहतो येन तारकाख्यो महासुरः॥
निगमागमयोस्तद्वत् पुराणेषु च विश्रुता। लोकैर्ज्ञाताप्यस्ति सर्वैः षण्मुखोत्पत्तिसत्कथा॥

छं०—जगु जान षन्मुख-जन्मु, कर्मु, प्रतापु, पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मैं बृषकेतु-सुत कर चरित संछेपहिं कहा॥
यह उमासंभु-बिबाह जे नर-नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान-काज, बिबाह-मंगल, सर्बदा सुखु पावहीं॥

दो०—चरित-सिंधु गिरिजारमन, बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमंद गवाँरु॥ १०३॥

संभु-चरित सुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु, रोमावलि ठाढ़ी॥
प्रेम-बिबस, मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनिग्यानी॥
अहो धन्य! तव जन्म मुनीसा। तुम्हहि प्रान-सम प्रिय गौरीसा॥
सिव-पदकमल जिन्हहि रति नाहीं। रामहि ते सपनेहुँ न सोहाहीं॥
बिनु छल बिस्वनाथ-पद-नेहू। राम-भगत कर लच्छन एहू॥
सिव-सम को रघुपति-ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती-असि नारी॥
पनु करि रघुपति-भगति देखाई। को सिव-सम रामहि प्रिय भाई॥

दो०—प्रथमहिं मैं कहि सिव-चरित, बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के, रहित समस्त बिकार॥ १०४॥

मैं जाना तुम्हार गुन-सीला। कहउँ, सुनहु अब रघुपति-लीला॥
सुनु मुनि, आजु समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुखु मन मोरें॥
रामचरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सतकोटि अहीसा॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति, प्रभु धनुपानी॥
सारद दारुनारि-सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि-उर-अजिर नचावहिं बानी॥
प्रनवउँ सोइ कृपाल रघुनाथा। बरनउँ बिसद तासु गुनगाथा॥
परम रम्य गिरिबरु कैलासू। सदा जहाँ सिव-उमा-निवासू॥

दो०—सिद्ध, तपोधन, जोगिजन, सुर, किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकंद॥ १०५॥

हरि-हर-बिमुख, धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥
तेहि गिरि पर बट-बिटप बिसाला। नित नूतन सुंदर सब काला॥
त्रिबिध समीर सुसीतलि छाया। सिव-बिश्राम-बिटप श्रुति गाया॥
एक बार तेहि तर प्रभु गयऊ। तरु बिलोकि उर अति सुखु भयऊ॥
निज कर डासि नागरिपु-छाला। बैठे सहजहिं संभु कृपाला॥
कुंद-इंदु-दर-गौर सरीरा। भुज प्रलंब, परिधन मुनिचीरा॥
तरुन-अरुन-अंबुज-सम चरना। नख-दुति भगत-हृदय-तम-हरना॥
भुजग-भूति-भूषन त्रिपुरारी। आननु सरदचंद-छबि-हारी॥

दो०—जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल॥ १०६॥

जगत् सुवेत्ति षाण्मुखं समुद्भवं क्रियाचयं प्रतापमद्भुतं तथा महातनुं पराक्रमम् ।
अनेन हेतुना मया वृषध्वजात्मजस्य सच्चरित्रमल्परूपतो निरूपितं मनोरमम् ॥
इमां महेशपार्वतीविवाहमञ्जुलां कथां निरूपयन्ति ये नराः स्त्रियश्च गीतयन्ति याः ।
सुकर्मसञ्चये शिवे विवाहमङ्गले तथा समाप्नुवन्ति सर्वतः परं सुखं सदैव ते ॥

सिन्धुश्चरित्रं गिरिजाप्रियस्य विन्दन्ति वेदा अपि नास्य पारम् ।
दासस्तुलस्या अनुवर्णयेत् किं ग्राम्योऽधिकं मन्दमतिः पुनस्तत् ॥ १०३ ॥

निशम्य शम्भोश्चरितं सरसञ्च शुभावहम् । भरद्वाजो मुनिवरः परमं सुखमाप्तवान् ॥
कथाविषयिणी तस्य लालसा वृद्धिमागता । नेत्रयोर्नीरमापूर्णं रोमाञ्चश्चाभवत् तनौ ॥
प्रेमाधीनो मुनिर्जातो मुखाद् वाणी न निर्गता । जहर्षास्य दशां दृष्ट्वा याज्ञवल्क्यो मुनिर्बुधः ॥
ऊचे च यत् ते जन्मास्ति नूनं धन्यं मुनीश्वर । गौरीश्वरो वर्तते ते ध्रुवं प्राणसमः प्रियः ॥
येषां पुंसां रतिर्नास्ति शम्भोः पादारविन्दयोः । स्वप्नेऽपि नैव रोचन्ते प्राणिनो राघवाय ते ॥
छलं विना स्नेहभावो विश्वनाथपदाब्जयोः । रामचन्द्रस्य भक्तस्य त्वेतदेवास्ति लक्षणम् ॥
रामभक्तिव्रतधरः कोऽस्ति शम्भुसमः परः । सतीदेवीसमा नारी येन त्यक्ता विनाप्यघम् ॥
कृत्वा प्रतिज्ञां रामस्य भक्तिर्येन प्रदर्शिता । हे भ्रातः कोऽस्ति रामस्य शिवेन सदृशः प्रियः ॥

उक्त्वा चरित्रं प्रथमं शिवस्य मया तव ज्ञातमिहास्ति मर्म ।
त्वं रामचन्द्रस्य पवित्रदासः सर्वैर्विकारैरपि वर्जितोऽसि ॥ १०४ ॥

गुणशीले तव समे विज्ञाते सर्वथा मया । वक्ष्ये रघुपतेर्लीलामिदानीं तां शृणु प्रिय ॥
संशृणुष्व मुने! त्वद्य तवैतस्मात् समागमात् । चित्ते मे यत् सुखं जातं न तच्छक्यं प्रभाषितुम् ॥
मुनीश ! रामचरितमत्यन्तं पारवर्जितम् । वक्तुं शतं कोटयोऽपि नागेशानां शकानतत् ॥
तथापि कथयामि त्वां तन्मयास्ति यथा श्रुतम् । प्रभुं वाणीपतिं स्मृत्वा धनुष्पाणिं रघूत्तमम् ॥
शारदा काष्ठनारीव स्वामी तस्यास्तु वर्तते । अन्तर्यामी समेषां स रामस्तत्सूत्रधारकः ॥
कृपां करोति यस्मिन् सयं विज्ञाय स्वकं जनम् । वाणीं नर्तयतीशानस्तस्य चित्ताङ्गणे कवेः ॥
तमेव प्रणमाम्यत्र कृपालुं रघुनायकम् । विशदानां गुणानाञ्च गाथां तस्यैव वर्णये ॥
कैलासः परमो रम्यो वरः सकलभूभृताम् । निवासो यत्र सततमुमायाः शङ्करस्य च ॥

तपोधना योगिगणाः सुसिद्धा मुनिव्रजाः किम्पुरुषाः सुराश्च ।
ते तत्र धन्या निवसन्ति सर्वे सेवन्त ईशं सुखकन्दमिष्टम् ॥ १०५ ॥

हरेर्हराद् ये विमुखा येषां धर्मे च नो रतिः । स्वप्नेऽपि ते नरास्तत्र प्रयातुं शक्नुवन्ति न ॥
एकस्तस्मिन् गिरावस्ति विशालो वटभूरुहः । नित्यनूतनरूपो यः सर्वकाले च सुन्दरः ॥
त्रिविधः पवनस्तत्र छाया तस्य सुशीतला । शिवविश्रामवृक्षोऽसौ यो वेदैरपि कीर्तितः ॥
अधस्तात् तस्य गतवानेकदा शङ्करः प्रभुः । विलोक्य तं तरुं तस्य चित्ते जातं महत् सुखम् ॥
स्वकराभ्यां समास्तीर्य चर्म दन्तावलद्विषः । उपाविशत् तत्र शम्भुः कृपालुः सहजेच्छया ॥
कुन्देन्दुशङ्खैः सदृशं गौरं तस्य कलेवरम् । भुजौ प्रलम्बावाजानु परिधानञ्च वल्कलम् ॥
रक्ताम्बुजाभ्यां फुल्लाभ्यां समानौ चरणौ मतौ । नखद्युतिर्भक्तचित्ततमःपुञ्जस्य हारिणी ॥
भुजङ्गमास्तथा भूतिर्भूषास्त्रिपुरविद्विषः । आनने हारकं तस्य शारदेन्दोरपि द्युतेः ॥

जटा किरीटं शिरसि त्रिमार्गा नेत्राणि तस्योत्पलविस्तृतानि ।
नीलो गले सुन्दरतानिधिः स तथास्य बालेन्दुरशोभि भाले ॥ १०६ ॥

बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥
पारबती भल अवसरु जानी। गईं संभु-पहिं मातु भवानी॥
जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव-समीप हरषाई। पूरुबजन्म-कथा चित आई॥
पति-हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल-लोक-हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥
बिस्वनाथ! मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी॥
चर, अरु अचर, नाग, नर, देवा। सकल करहिं पदपंकज-सेवा॥

दो०—प्रभु समरथ सर्बग्य सिव, सकल कला-गुन-धाम।
जोग-ग्यान-बैराग्य-निधि, प्रनत-कलपतरु नाम॥ १०७॥

जौं मो पर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी॥
तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना। कहि रघुनाथ-कथा बिधि नाना॥
जासु भवनु सुरतरु-तर होई। सहि कि दरिद्र-जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदयँ बिचारी। हरहु नाथ! मम मति-भ्रम भारी॥
प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेस, सारदा, बेद, पुराना। सकल करहिं रघुपति-गुन-गाना॥
तुम्ह पुनि राम-राम दिन-राती। सादर जपहु अनँग-आराती॥
रामु सो अवधनृपति-सुत सोई। की अज, अगुन, अलखगति कोई॥

दो०—जौं नृप-तनय त ब्रह्म किमि, नारि-बिरहँ मति-भोरि।
देखि चरित, महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥ १०८॥

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ॥
अग्य जानि, रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै, सोइ करहू॥
मैं बन दीखि राम-प्रभुताई। अति-भय-बिकल न तुम्हहि सुनाई॥
तदपि मलिन मन बोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा॥
अजहूँ कछु संसउ मन मोरें। करहु कृपा, बिनवउँ कर जोरें॥
प्रभु तब मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ! सो समुझि करहु जनि क्रोधा॥
तब कर अस बिमोह अब नाहीं। रामकथा पर रुचि मन माहीं॥
कहहु पुनीत राम-गुन-गाथा। भुजगराज-भूषन सुरनाथा॥

दो०—बंदउँ पद धरि धरनि सिरु, बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर-बिसद-जसु, श्रुति-सिद्धांत निचोरि॥ १०९॥

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मन-क्रम-बचन तुम्हारी॥
गूढ़उ तत्त्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥
अति आरति पूछउँ सुरराया। रघुपति-कथा कहहु करि दाया॥
प्रथम सो कारन कहहु बिचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन-बपु-धारी॥
पुनि प्रभु! कहहु राम-अवतारा। बालचरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिबाहीं। राज तजा सो दूषन काहीं॥
बन बसि कीन्हें चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्हीं बहु लीला। सकल कहहु संकर सुखसीला॥

तत्रोपविष्टः शुशुभे कामारिः कीदृशस्तदा । शरीरधारी प्रत्यक्षं नूनं शान्तरसो यथा ॥
पार्वती सुपरिज्ञाय शोभनं समयं ततः । शम्भोः समीपं प्रययौ भवानी जगदम्बिका ॥
ज्ञात्वा प्रियतमां तस्याश्चक्रेऽत्यन्तं समादरम्। स्ववामभागे च ददौ हरस्तस्यै वरासनम् ॥
उपाविशत् प्रमुदिता समीपे शङ्करस्य सा । तदैव पूर्वजनुषः कथास्याश्चित्त आगता ॥
पूर्वापेक्षाधिकं प्रेम पत्युश्चित्तेऽनुमाय च । उवाचोमा विहस्यैव तं प्रियं वचनं तदा ॥
सर्वेषामेव लोकानां या कथा हितकारिणी । तामेवाभ्यलषत् प्रष्टुं शैलराजकुमारिका ॥
हे विश्वेश ममापीश त्रिपुरासुरशात्रव । ख्यातस्त्रिष्वपि लोकेषु भवतो महिमा सदा ॥
चराचरास्तथा नागा मनुजा विबुधा अपि । सर्वेऽपि सेवां कुर्वन्ति भवतः पादपद्मयोः ॥

प्रभो ! शिवः शक्तियुतः समज्ञो भवान् गृहं सर्वकलागुणानाम् ।
ज्ञताविरागप्रणिधानिधिश्च नामापि कल्पद्रुरथो नतानाम् ॥ १०७ ॥

सुखराशे! प्रसन्नोऽस्ति भवान् यदि ममोपरि । सत्यमेव च जानाति मां स्वीयां सत्यसेविकाम्॥
तर्हि प्रभो हरतु मे भवानज्ञानमात्मगम् । कथयित्वा बहुविधां रघुनाथस्य सत्कथाम् ॥
अधस्तात् कल्पवृक्षस्य भवनं यस्य वर्तते । सकिं सहिष्यते दुःखं प्राणी दारिद्र्यसम्भवम्॥
इत्थं विचार्य हृदये भवान् हे शशिभूषण । मतेर्ममातिविषम भ्रमं नाथ विनाशय ॥
प्रभो ये मुनयः सन्ति परमार्थविवेचकाः । वदन्ति ते रामचन्द्रमनादि ब्रह्म शाश्वतम् ॥
शेषः सरस्वती वेदाः पुराणान्यपि सर्वदा । सर्वेऽप्येते रघुपतेर्गायन्ति विविधान् गुणान् ॥
भवानभीक्ष्णमप्येवं रामरामेत्यहर्निशम् । अराते पञ्चबाणस्य जपत्यादरपूर्वकम् ॥
अयं रामः स एवास्ति किमयोध्यापतेः सुतः ।अथवाजोऽगुणोऽलक्ष्यगती रामः परोऽस्ति किम्॥

भूभृत्सुतो ब्रह्म कथं स तर्हि चेद् ब्रह्म किं स्त्रीविरहाकुला धीः ।
दृष्ट्वा चरित्रञ्च निशम्य तेजो भ्रमत्यतीवैव मतिस्ततो मे ॥ १०८ ॥

अनीहं व्यापकञ्चैव समर्थं ब्रह्म चेत् परम् । तदेव तर्हि सुस्पष्टं मां प्रबोधय हे प्रभो ॥
विचार्य मां बोधहीनां कोपं चेतसि मा कुरु । यथा विनश्येन्मे मोहस्तथैव कुरु तत् समम् ॥
पूर्वं विलोकितारण्ये रामस्य प्रभुता मया । अतिभीत्या विकलया भवन्तं श्राविता न तु ॥
तथापि मलिने चित्ते बोधो नैवागतो मम । यथोचितं फलमपि प्राप्तं तस्य मया समम् ॥
अद्यापि कश्चित् सन्देहो मम चेतसि वर्तते । अतः कृपां प्रकुरुताद् युतपाणिर्निवेदये ॥
प्रभो! तदा बहुविधं प्राबोधयत मां भवान् । विचार्य नाथ! तत् सर्वं मा कोपं कुरुतान्मयि॥
विमोहस्तादृशो नैव वर्तते मयि साम्प्रतम् । रुची रामकथायास्तु वर्तते मम मानसे ॥
गाथां गुणानां रामस्य कथयत्वधुना भवान् । भुजङ्गमाधीशभूष देवतानामधीश्वर ॥

वन्दे पदे कौ सुनिधाय शीर्षं संयोज्य पाणी विनयं करोमि ।
रामस्य शुक्लं यश आब्रवीतु निष्कृष्य सिद्धान्तमिह श्रुतीनाम् ॥ १०९ ॥

यद्यपि स्त्रीतनुधरा नाहं तस्याधिकारिणी । तथापि दासी भवतो मनोवाक्कर्मभिर्मता ॥
सुगूढमपि यत् तत्त्वं न तद् गूहन्ति साधवः । समाप्नुवन्ति ते नूनं यत्रार्तमधिकारिणम् ॥
आर्तभावेन पृच्छामि भवन्तं विबुधाधिप । कृत्वा दयां रघुपतेः कथयत्वखिलां कथाम् ॥
विचार्य प्रथमं तन्मां निरूपयतु कारणम् । निर्गुणं ब्रह्म येनैव गृह्णाति सगुणं वपुः ॥
पुना रामावतारस्य कथां वदतु मां प्रभो । पुनश्च बालचरितमुदारं कथयत्वदः ॥
विवाहिता यथा तेन जानकी तद्ब्रवीतु माम् । इदञ्च यद् दूषणेन केन त्यक्तं नृपासनम् ॥
वने वसन् यानि चक्रेऽनन्तानि चरितानि सः।यथा च रावणं युद्धे हतवांस्तद् ब्रवीतु माम्॥
उपविश्य च राज्येस नाना लीलाश्चकार याः। सर्वा वदतु ता देव सुखशीलेश शङ्कर ॥

दो०—बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जॉ अचरज राम।
प्रजा-सहित रघुबंसमनि, किमि गवने निज धाम॥ ११०॥

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहिं बिग्यान मगन मुनि ग्यानी॥
भगति, ग्यान, बिग्यान, बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा॥
औरउ राम-रहस्य अनेका। कहहु नाथ! अति बिमल बिबेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई॥
तुम्ह त्रिभुवन-गुर, बेद बखाना। आन जीव पाँवर का जाना॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल-बिहीन सुनि, सिव-मन भाई॥
हर-हियँ रामचरित सब आए। प्रेम-पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ-रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

दो०—मगन ध्यानरस दंड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति-चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह॥ १११॥

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन-भ्रम जाई॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल-भवन अमंगल-हारी। द्रवउ सो दसरथ-अजिर-बिहारी॥
करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा-सम गिरा उचारी॥
धन्य-धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति-कथा-प्रसंगा। सकल लोक जगपावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर-चरन-अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत-हित लागी॥

दो०—रामकृपा तें पारबति, सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक, मोह, संदेह, भ्रम, मम बिचार कछु नाहिं॥ ११२॥

तदपि असंका कीन्हिहु सोई। कहत-सुनत सब कर हित होई॥
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन-रंध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि संत-दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख-कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि-समतूला। जे न नमत हरि-गुरपद-मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव-समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम-गुन-गाना। जीह सो दादुर-जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर-हित दनुज-बिमोहनसीला॥

दो०—राम-कथा सुरधेनु सम, सेवत सबसुख-दानि।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि॥ ११३॥

रामकथा सुंदर कर-तारी। संसय-बिहग उड़ावनिहारी॥
रामकथा कलि-बिटप-कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी॥
रामनाम-गुन-चरित सुहाए। जनम-करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा, कीरति, गुन नाना॥
तदपि जथाश्रुत, जसि मति मोरी। कहिहउँ देखि प्रीति अति तोरी॥

ब्रवीतु भूयः करुणानिवास चक्रेऽद्भुतं यच्चरितञ्च रामः ।
प्रजायुतो राघववंशरत्नं कथं प्रयाति स्म निजं स धाम ॥ ११० ॥

ततो ब्रवीतु तत् तत्त्वं मां प्रबोध्य भवान् प्रभो । निमग्ना यस्य विज्ञाने ज्ञानिनो मुनयः सदा ॥
भक्तिं ज्ञानञ्च विज्ञानं तथा वैराग्यमेव च । सविभागं पुनः सर्वं प्रवर्णयतु मां भवान् ॥
यान्यनेकानि रामस्य रहस्यानि पराणि च । ब्रवीतु नाथ! भवतो विवेको विमलो यतः ॥
प्रभो यदन्यत् किमपि नैव पृष्टं मया भवेत् । दयालो सर्वमपि तन् मा करोतु निगूहितम् ॥
भवांस्त्रयाणां लोकानां गुरुर्वेदैर्निरूपितः । कथं जानीयुरपरे रहस्यं प्राणिनस्त्विदम् ॥
प्रश्ना इतीमे पार्वत्याः स्वभावादेव सुन्दराः । छलहीनाः श्रुताः शम्भोः प्ररोचन्ते स्म चेतसे॥
रामवृत्तानि सर्वाणि शम्भोश्चित्ते समाययुः । देहो रोमाञ्चितः प्रेम्णा पूरितञ्च दृशोर्जलम्॥
रूपं श्रीरघुनाथस्य तस्य चित्ते समागतम् । ततः स परमानन्दः सुखञ्चामितमाप्तवान् ॥

घटीद्वयं ध्यानरसे स मग्नः पुनर्मनो बाह्यगतञ्चकार ।
ततश्च तद् रामचरित्रमीश आरब्धवान् वर्णयितुं प्रहृष्टः ॥ १११ ॥

मिथ्यापि सत्यमाभाति यमविज्ञाय सन्ततम् । यथा रज्जुमविज्ञाय रज्जावाभाति पन्नगः ॥
ज्ञाते यस्मिञ्जगत् सर्वं विलयं याति तत्क्षणात्। यथा जागरिते याति विलयं स्वप्नजो भ्रमः॥
तमेव वन्दे श्रीराममहं बालकरूपिणम् । यस्य नाम्नो जपेनैव सुलभाः सिद्धयः समाः॥
निकेतनं मङ्गलस्य तथाऽमङ्गलहारकः । द्रवतात् स विहारस्य कर्ता दशरथाजिरे ॥
इत्युक्त्वा त्रिपुरारातिः प्रणम्य च रघूत्तमम् । आनन्दितः सुधातुल्यां वाणीं समुदचारयत् ॥
धन्यासि धन्या त्वं देवि ! गिरिराजकुमारिके! । उपकारी नास्ति कोऽपि तनुधारी त्वया समः॥
कथाप्रसङ्गं रामस्य यं मां त्वं पृष्टवत्यसि । गङ्गेव सर्वलोकेभ्यो जगतां सोऽस्ति पावनः॥
अनुरागवती त्वञ्च रघुवीरस्य पादयोः । जगतामेव भद्राय प्रश्नानप्यकरोरिमान् ॥

गिरीशजे ! रामकृपाप्रसादात् स्वप्नस्थितावप्ययि ! मानसे ते ।
सन्देहशोकभ्रममोहदोषा न मद्विचारेण तु सन्ति केऽपि ॥ ११२ ॥

तथाति त्वं कृतवती शङ्कां तामेव पूर्वगाम् । श्रवणात् कीर्तनादस्याः सर्वेषामेव शं यतः ॥
यैः कथा रामचन्द्रस्य कर्णैर्नाकर्णिता जनैः । तेषां कर्णाः सर्पगेहसुषिरैः सदृशा मताः ॥
न कृतं यैः स्वनयनैः प्राणिभिर्दर्शनं सताम् । तानि तेषां सम्मतानि बर्हिबर्हस्थितान्यपि ॥
कटुतुम्बी सदृक्षाणि तानि शीर्षाणि सन्ति च । नम्रीभवन्ति नो यानि पादमूले हरेर्गुरोः ॥
नानीता यैर्हरेर्भक्तिः कदापि हृदये निजे । शवैः समानास्ते सन्ति जीवन्तोऽपि शरीरिणः॥
गुणानां रामचन्द्रस्य गानं नैव करोति या । सा जिह्वा वर्तते सत्यं समाना भेकजिह्वया॥
वक्षःस्थलं तत् कुलिशसदृशं निष्ठुरं दृढम् । न सुप्रीतं भवति यन्निशम्य चरितं हरेः ॥
गिरिजे ! रामचन्द्रस्य लीलां कर्णगतां कुरु । हितावहां देवतानां दनुजानां विमोहिनीम् ॥

स्वर्गोसमा रामकथास्ति लोके संसेवया सर्वसुखप्रदात्री ।
सतां समाजोऽखिलदेवलोको ज्ञात्वेति कोऽमूं शृणुयान्न देही ॥ ११३ ॥

कथा श्रीरामचन्द्रस्य करताली मनोरमा । सन्देहात्मविहङ्गानां सदोड्डीनकृतौ रता ॥
कथा श्रीरामचन्द्रस्य कलिद्रुमपरश्वधः । शृणु त्वं सादरममूं गिरिराजकुमारिके! ॥
गुणनामचरित्राणि रामस्य मधुराणि च । वेदैर्गीतान्यनन्तानि जननानि क्रियास्तथा ॥
अनन्तरूपो भगवान् रामचन्द्रो यथा स्थितः । सन्त्यनन्तास्तथा तस्य कथाः कीर्तिर्गुणा अपि॥
तथापि सकलं तस्य यथामति यथाश्रुतम् । कथयिष्यामि ते प्रीतिं विलोक्य परमामहम्॥

उमा ! प्रस्न तव सहज सुहाई । सुखद, संतसंमत, मोहि भाई ।।
एक बात नहिं मोहि सुहानी । जदपि मोहबस कहेउ भवानी ।।
तुम्ह जो कहा राम कोउ आना । जेहि श्रुति गाव, धरहिं मुनि ध्याना ।।

दो०—कहहिं-सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह-पिसाच ।
पाषंडी, हरिपद-बिमुख, जानहिं झूठ न साच ।। ११४ ।।

अग्य, अकोबिद, अंध, अभागी । काई - बिषय मुकुर - मन लागी ।।
लंपट, कपटी, कुटिल बिसेषी । सपनेहुँ संत - सभा नहिं देखी ।।
कहहिं ते बेद - असंमत बानी । जिन्ह कें सूझ लाभु नहिं हानी ।।
मुकुर मलिन अरु नयनबिहीना । राम - रूप देखहिं किमि दीना ।।
जिन्ह कें अगुन न सगुन बिबेका । जल्पहिं कल्पित बचन अनेका ।।
हरिमाया - बस जगत भ्रमाहीं । तिन्हहि कहत कछु अघटित नाहीं ।।
बातुल, भूत - बिबस, मतवारे । ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे ।।
जिन्ह - कृत महामोह - मद - पाना । तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ।।

सो०—अस निज हृदयँ बिचारि, तजु संसय, भजु रामपद ।
सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रम-तम-रबि-कर बचन मम ।। ११५ ।।

सगुनहि - अगुनहि नहिं कछु भेदा । गावहिं मुनि, पुरान, बुध, बेदा ।।
अगुन, अरूप, अलख, अज, सोई । भगतप्रेम - बस सगुन सो होई ।।
जो गुन - रहित सगुन सोइ कैसें । जलु-हिम-उपल बिलग नहिं जैसें ।।
जासु नाम भ्रम - तिमिर - पतंगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह-प्रसंगा ।।
राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह - निसा - लवलेसा ।।
सहज प्रकासरूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान - बिहाना ।।
हरष - बिषाद, ग्यान - अग्याना । जीव - धर्म, अहमिति, अभिमाना ।।
राम ब्रह्म, ब्यापक, जग जाना । परमानंद, परेस, पुराना ।।

दो०—पुरुष प्रसिद्ध प्रकास-निधि, प्रगट परावर-नाथ ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ।। ११६ ।।

निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी । प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी ।।
जथा गगन घन - पटल निहारी । झाँपेउ भानु, कहहिं कुबिचारी ।।
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ । प्रगट जुगल ससि तेहिके भाएँ ।।
उमा ! राम-बिषइक अस मोहा । नभ तम, धूम, धूरि जिमि सोहा ।।
बिषय, करन - सुर, जीव समेता । सकल एक तें एक सचेता ।।
सब कर परम प्रकासक जोई । राम अनादि अवधपति सोई ।।
जगत प्रकास्य, प्रकासक रामू । मायाधीस ग्यान - गुन - धामू ।।
जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य - इव मोह - सहाया ।।

दो०—रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानुकर-बारि ।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ।। ११७ ।।

देवी-वंदना

हे माता ज्वालामुखी ! आपकी जय हो। समस्त संसार ने आपका जयजयकार किया है। अपने वचन द्वारा मुझे वर दो, तुमसे ही काम सिद्ध होता है। पहले पांडवों ने तुम्हारा ध्यान किया था—छोटे अर्जुन ने और भीम ने। उन चतुर पांडवों ने नगरकोट के नगर की रचना की और उसकी गहरी नींव डलवायी। हे माता ! आप विद्या और गुण की दात्री सरस्वती हो, सब लोग आप से याचना करते हैं। पदम भगत को यह वरदान दीजिये कि जिससे सदा आनंद और मंगल हो (पाठान्तर—रुक्मिणी-मंगल पूर्ण हो जाय)।

देव-वंदना

हम तेतीसों (कोटि) देवताओं की विनती करते हैं। हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश की वंदना करते हैं—महेश, जिनकी जटा में गंगा बहती है और जिनके कंठ में शेषनाग विराजता है।

ब्रह्माजी चारों वेदों के अधिपति हैं। वे भूले हुओं को मार्ग समझाते हैं। जो कोई चित्त देकर कृष्णजी के इस मंगल (विवाह की कथा) को सुनता है, वह भुक्ति (= भोग) और मुक्ति दोनों फल पाता है। इस 'मंगल' को सुनने से महान् सुख की प्राप्ति होती है, मनवांछित फल मिलता है और कायिक कष्ट कभी नहीं होते। ऐसा पदम भगत कहता है।

ब्रह्मा-वंदना

ब्रह्माजी का स्मरण करना चाहिये जिन्होंने जल और थल का विभाग किया और जो चार वेद और चौदह लोक—सब का सर्जन करनेवाले हैं।

ब्रह्मा, चार वेद और चौदह लोकों में जो कुछ है उसका सर्जनहार है। वे नारद, इन्द्र, सनक, सनंदन, शंकर और शेषनाग के प्रिय हैं। सब मिलाकर चौदह इन्द्र (= मनु) राज्य करेंगे तब ब्रह्मा का दिन संपूर्ण होगा। ब्रह्मा वृद्ध बन कर बैठ गये हैं, अब शंकर का प्रहर है। ब्रह्मा तीनों लोकों के नायक हैं। सब उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। जो इस 'मंगल' को हृदय में धर कर सुनते हैं वे भक्ति और मुक्ति-रूप फल को पाते हैं। इस 'मंगल' का श्रवण करने से हृदय में भक्ति उत्पन्न होती है। इसका सुननेवाला प्रभु का दास कहलाता है, उसका शरीर सहज ही निर्मल हो जाता है। पदम भगत इस प्रकार यशगान करता है।

विष्णु-वंदना

दोहा— परमेस्वर कूं वीनवां श्रीपत अलख अभेव
तीनूं लोक उपाइया भवन चतुरदस देव

मारू— भवन चतुरदस देव दामोदर जळ-थळ जीव उपाया
दस अवतार धरचा अविनासी आप गरभ नहिं आया
जोइ जोइ रूप धरचा नारायण सोइ सोइ परगट जाण्यो
कृष्ण कोप सिसपाळ संघारचो रुकमण व्यांव वखाण्यो
व्यांव तणी म्रदु वाणी बोलां राग - रंग सुर गावां
चंदण चरच चतरभुज पूजां पद परमेसर ध्यावां
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं रुकमण - मंगळ गावां

शिव-वंदना

दोहा— गवरीपत नूं वीनवां नांदेसर असवार
जटाजूट गंगा वहै कंठ भुजंगां हार

मारू— गवरि-गंग को कंथ भणीजै हंसि हंसि वचन उचारै
जटा मुगट सिर गंग खळहळै खग असुरां सिर डारै
माथै सेली गळै रुंडमाळा कर में डमरू राजै
भांग धतूरो विखम अहारी कंथ - गवरि नै छाजै
उडगण-पत जा कै सीस विराजै सुरत विचारै जोई
पूरण ब्रह्म पदम का स्वामी पारबती - पत सोई

गुरु-वंदना

दोहा— परम पुरस गुरदेव जी रहो क्रपाळ सहाय
जा दिन कर मस्तक धरचो भाग ज प्रगटचो आय

मारू— कंठी तिलक ज वण्यो ह्रिदा में मन आयो विसवासा
जद थां क्रपा करी स्वामीजी! कट गयी जम की पासा
जम री पास सही जू काटी सरण आप रै आयो
जद थां क्रपा करी स्वामीजी तब गुरु नाम सुणायो
दुख-खंडण सुखदायक स्वामी तुम गुरु दीनदयाला
दास पदम पर किरपा कीज्यो अंतर हुवै उजाळा

विष्णु-वंदना

हम परमेश्वर की विनती करते हैं जो लक्ष्मी के पति हैं, जिनको देखा नहीं जा सकता और जिनके रहस्य को जाना नहीं जा सकता। उन देव ने तीनों लोकों और चौदह भुवनों की उत्पत्ति की।

उन दामोदर देव ने चौदह भुवनों की, और जल और स्थल के जीवों की रचना की। अविनाशी उन्होंने दस अवतार लिये किन्तु स्वयं माँ के गर्भ में एक बार भी नहीं आये। नारायण ने जो-जो रूप धारण किये उन सब का प्रभाव प्रकट है। कृष्ण-रूप में कुपित होकर शिशुपाल का संहार किया और रुक्मिणी से विवाह किया। मैं विवाह की इस मंगल-कथा को मृदुवाणी में कहता हूँ और विभिन्न राग-रागिनियों में गाता हूँ। चन्दन चढ़ा कर चतुर्भुजा वाले भगवान् की पूजा करते हैं और परमेश्वर के चरणों का ध्यान करते हैं। पदम भगत कहता है कि मैं नमन करके पैरों लगता हूँ। मैं रुक्मिणी-मंगल का गान करता हूँ।

शिव-वंदना

हम गौरी के पति की विनती करते हैं जो नंदी के असवार हैं, जिनकी जटाओं के समूह से गंगाजी बहती हैं और गले में सर्पों का हार है।

वे गौरी और गंगा के पति कहे जाते हैं। वे हँस-हँस कर वचन बोलते हैं। उनके सिर पर जटाओं का मुकुट है जिनमें गंगा कलकल करती बहती है। आपके सिर पर सेली (योगियों के सिर पर बँधनेवाली बद्धी) है, गले में मुंडमाला है और हाथ में डमरू बजता है। उन गौरी-पति को भांग, धतूरा और विष जैसी विषम वस्तुओं का आहार शोभा देता है। तारों का पति चंद्रमा उनके मस्तक पर विराजता है। वे पूर्ण ब्रह्म पार्वती के पति ही पदम के स्वामी हैं।

गुरु-वंदना

हे परम पुरुष गुरुदेव! आप मुझ पर कृपालु और सहायक रहिये। जिस दिन आपने मेरे सिर हाथ रखा उसी दिन मेरा सौभाग्य प्रगट हो गया।

मैंने हृदय पर कंठी और तिलक धारण किया। मेरे मन में विश्वास उत्पन्न हुआ। हे स्वामी! जब आपने कृपा की तो यम का पाश कट गया। जब मैं आपकी शरण में आया तो आपने यम का पाश निश्चय ही काट दिया। हे स्वामी! जब आपने कृपा की तब मुझे 'गुरुनाम' सुनाया। हे स्वामी! आप दुःखों का नाश करनेवाले और सुखों के दाता हैं, आप दीनों पर दया करनेवाले गुरु हैं। आप अपने इस दास पदम भगत पर कृपा कीजिये जिससे उसके हृदय में ज्ञान का उजाला हो जाय।

पदम भगत को कृष्ण की आज्ञा

मारू— गवरीनंद गणेस मनाऊं सब कूं सीस निवाऊं
सुर तेतीसूं अग्या दीज्यो रुकमण - मंगळ गाऊं
कृष्ण-रुकमणी अग्या दीनी निकट हजूर बुलायो
नंदकंवर राधावरजू को पदमइयै जस गायो

दोहा— मारू देस उपन्नियो नड ज्यूं नीसरियाह
कड़वा कदे न बोलही मीठा बोलणियाह
याद कियो हर पदम नै लियो हजूर बुलाय
अग्या दीनी पदम नै पीतांबर पहराय
रुकमण-मंगळ गांवतां हुवै पवित्तर ग्राम
काया रा तो क्रम कटै होय पवित्तर धाम
नर नारी मंगळ सुणै हर-चरणां चित लाय
नारी अमरापुर वसै नर वैकुंठां जाय
विवाहलो भागीरथी श्री भागवत पुराण
बोलै राणी रुकमणी सुणिहो भगत सुजाण
कूड़ मती नां भाखियौ कथियौ जो परवाण
या कीरत श्रीकृष्ण री समझ'र करो वखाण
मैं म्हारी बुध सूं करूं लीज्यो स्याम सुधार
पदम भणै प्रणमूं सदा भगतां रा आधार

२—प्रस्तावना

राजा भीष्मक

दोहा— विद्रम देस सुहावणो राजा भींव नरेस
गढ चौरासी गंजणा सहस पच्याणव देस

मारू— सहस पच्याणव देस भणीजै पांच पुत्र अेक राजा
जिण में छठी रुकमणी कन्या लछमी आप विराजा
गळी-गळी में नारेळ-केळा बाग रह्या चहुं छायी
कुन्नणपुर की सुंदर सोभा जलमी रुकमण - बाई
हगमग रहै इधक चतुराई पुरखन बाळ - गोपाळा
लछमी मंदिर वसै सबही कै ब्रामण किया निहाला

पदम भगत को कृष्ण की आज्ञा

अब मैं गौरीनंदन गणेशजी को मनाता हूँ और सबको शीश नवाता हूँ। हे तेतीसों (कोटि) देवताओ ! आप अनुमति दीजिये, मैं 'रुक्मिणी-मंगल' गा रहा हूँ। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने आज्ञा दी और अपने पास सेवा में बुलाया। पदम भगत ने नंद के कुमार और राधा के वर श्रीकृष्ण के यश का गान किया।

मारवाड़ देश में जनमे लोग नरकुल की भाँति निकलते हैं (बढ़ते हैं)—वे लंबे और पतले होते हैं। वे कभी कड़वे नहीं बोलते, वे मीठे बोलनेवाले होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने पदम भगत को याद किया और अपनी सेवा में बुला लिया। फिर पीतांबर पहनाकर उसे आज्ञा दी। 'रुक्मिणी-मंगल' को गाने से गाँव पवित्र हो जाता है, देह के सारे कर्म कट जाते हैं और घर पवित्र हो जाता है। हरि के चरणों में चित्त लगाकर यदि नर और नारी इस 'मंगल' को सुनते हैं तो नारी स्वर्ग में वास करती है और नर वैकुंठ को जाता है। यह विवाह-गाथा गंगा और भागवतपुराण के समान है। रानी रुक्मिणी कहती है—हे चतुर भक्त ! सुनो, झूठ मत कहना, जो बातें प्रामाणिक हैं उन्हें ही कहना। श्रीकृष्ण की इस कीर्ति को समझ कर वर्णन करो। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इस काव्य की रचना कर रहा हूँ। हे श्याम ! आप इसे सुधार लें। पदम भगत कहता है कि हे भक्तों के आधार ! मैं सदैव आपको नमन करता हूँ।

२—प्रस्तावना

राजा भीष्मक

विदर्भ नाम का सुहावना देश था। वहाँ राजा भींव (भीष्मक) राजा थे (राज्य करते थे)। वे चौरासी दुर्गों के विजेता थे। वह देश पचानबे सहस्र की आमदनीवाला था (अथवा, उसके अधिकार में ९५ हज़ार ग्राम थे)।

वह देश पचानबे सहस्र गाँवोंवाला कहा जाता था। उस राजा के पाँच पुत्र थे, उनमें छठी संतान रुक्मिणी थी जो मानो स्वयं लक्ष्मी विराजती थी। कुंदनपुर की शोभा रमणीय थी। गली-गली में नारियलों और केलों के वृक्ष थे। चारों ओर बाग-बगीचे छाये हुए थे। वहाँ रुक्मिणी का जन्म हुआ। वहाँ सदा आनंदोत्सव रहते थे। वहाँ के पुरुष और बालगोपाल अत्यधिक चतुराई से संपन्न थे। सबके भवन में लक्ष्मी बसती थी। ब्राह्मणों को निहाल किया जाता था।

इधक-इधक सुंदर चतराई घोड़ा गिणत न लेखा
कुंदणपुर - सिणगार - ओपमा गावै पदम विसेखा

नारद-आगमन

छंद— अेक समै नारद गुसांई भवन भीसम के गये
कर जोड़ राजा भींव ठाढो— मुनी, क्यूं आवत किये ?
आरती बहु भांत कीनी जोड़ कर पूजा करी
ताहि दिन राजा स भीसम आसिका मांगी खरी
रुकमणी की माय बोलै— पुत्रि ! चरणां लाग री
मन-भावता वर देय नारद पूर्ण प्रगटे भाग री
सोच कर कछु हरख मन में जोड़ कर ठाढी भयी
किसन वर तो कूं वरै या आसिका नारद दयी
रुकमणी वर देय नारद आप मुनि वन कूं गये
ताहि दिन तें हरि मिलण के रुकमणी बहु व्रत किये
रुकमणी मन में ठयी श्री किसन वर मोकूं वरै
दास पदम की वीनती जू अंबिका हरि वर मिलै

दोहा— राव रणवास पधारिया मिली सहेली द्वार
किण री बाई डीकरी किण री राजकंवार
सखी भणै, सुण राजवी राजा भींव भुवाळ
या छै बाई रुकमणी भींव - घरां अवतार
जद राजा सांसो कियो चिंता बोत कराय
धिरक हमारो जीवणो जलम अकारथ जाय
बाई रुकमण कारणै राजा जोवै वींद
पळ-पळ देखत तन घटै नैणां नावै नींद

मारू— नैणां नींद पलक नहिं झंपै चितवत रैण विहाव
चंद्रवदन चूड़ामण कारण सुरत सांवरो आवै
असुरां में नातो मत कीज्यो बै तो है सब झूठा
मथरा मल्ल अखाड़ै जीत्या देव दुवारका दीठा
वसदेव-नंदन असुर-निकंदन तीन लोक को सांई
राजा वींद विसंभर हेरचो चूड़ामण कै तांई
द्वारामति सूं किसन पधारै तीन लोक को राजा
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं सरै हमारा काजा

सब लोग अधिकाधिक सुंदर और चतुरतावाले थे। वहाँ घोड़ों की गिनती का कोई हिसाब नहीं था। पदम भगत कुंदनपुर के शृंगार की विशिष्ट शोभा का गान करता है।

नारद-आगमन

एक बार गोस्वामी नारद भीष्मक के भवन पर पहुँचे। राजा भीष्मक हाथ जोड़कर खड़े हुए और पूछा—मुनिवर! आपका शुभागमन कैसे हुआ? उस दिन राजा भीष्मक ने हाथ जोड़कर उनकी पूजा की, तथा अनेक प्रकार आरती की और तब उनसे आशीर्वाद मांगा। रुक्मिणी की माँ ने कहा—बेटी! चरणस्पर्श करो। हमारे पूर्ण सौभाग्य का उदय हुआ है। ये नारद मुनि मनचाहा वर देते हैं। रुक्मिणी मन में कुछ सोचकर और हर्षित हो हाथ जोड़कर नारदजी के सामने खड़ी हुई। तब नारद ने आशीर्वाद दिया—श्रीकृष्ण वर तुम्हारा वरण करें। रुक्मिणी को वर देकर नारदजी स्वयं वन को चले गये। रुक्मिणी ने उसी दिन से कृष्ण से मिलने के लिए अनेक व्रत करने प्रारम्भ कर दिये। रुक्मिणी ने मन में निश्चय किया कि श्रीकृष्ण वर मुझे ब्याहें। पदम भगत विनती करता है कि अंबिका के मंदिर में रुक्मिणी को भगवान् वर के रूप में मिलें।

(एक बार) राजा रनिवास में पधारे तो द्वार पर सहेली मिली। राजा ने पूछा—यह कुमारी किसकी पुत्री है, किसकी राजकुमारी है? सखी ने उत्तर दिया—हे राजा! सुनिये। यह कन्या कुमारी रुक्मिणी है। इसने राजा भीष्मक के घर जन्म लिया है। तब राजा ने चिंता की। उन्हें बड़ी चिंता हुई—हमारे जीवन को धिक्कार है, हमारा जन्म ही व्यर्थ जा रहा है। पुत्री रुक्मिणी के लिए राजा वर देखने लगे। उसे देखकर पल-पल शरीर छीजने लगता है और आँखों में नींद नहीं आती।

राजा की आँखें नींद से पल भर भी नहीं झपकती थीं। देखते-देखते ही उनकी रात बीतती थी। चन्द्रवदनी और चूड़ामणि पुत्री के लिए वर रूप में श्यामसुन्दर कृष्ण उनकी स्मृति में आये। उन्होंने निश्चय कर लिया कि असुरों के साथ संबंध नहीं करना। वे सब झूठे हैं। मथुरा के असुर पहलवानों को कृष्ण ने अखाड़े में जीता; वे कृष्ण अब द्वारका में विराजमान हैं। राजा ने चूड़ामणि जैसी रुक्मिणी के लिए वर-रूप में वसुदेवनंदन, असुरों का नाश करनेवाले, तीनों लोकों के स्वामी विश्वंभर को देखा। तीनों लोकों के राजा वे कृष्ण द्वारका से पधारें तो, पदम भगत नमनपूर्वक पैरों में पड़ता है, हमारे काम सिद्ध हों।

दोहा— भीसम-सुता जनम्मिया कृष्ण समर्पणियां
कहत-सुणत पातक कटै मंगळ रुकमणियां
चंद्रवदन चूड़ामणी भींव घरे अवतार
बंधू रुकमइयो भलो मंत्रि-सिरोमणि सार

विवाह का परामर्श

मारू— राजा भींव कंवर रुकमइयो मंत्र करेवा बैठा
इण कन्या नै जो वर जुगता सो वर किण नहिं दीठा
रुकमइयो भणै सुणो राजाजी थे तो सगळी जाणो
म्हां नै तो बाळक-बुध आवै पिछली तुमहि पिछाणो
राजा भणै, सुणो रुकमइया वर वनमाळी जाणो
छपन कोट जदुवन को राजा वंस विसुध्ध वखाणो
त्रिभुवन में, सुण लेव, सांवरै सरवर कोइ न दीठा
राजा भींव कंवर रुकमइयो मंत्र करेवा बैठा

दोहा— कंवर कनोधर यूं भणै टीकम अहड़ो जाण
गोकळ गऊ चरांवतो भलो सरायो कान्ह

मारू— वृंदावन में गऊ चरावै भिड़वाळ्यां रै साथै
वंसी वजावै कामण मोवै जीमै उण रै हाथै
परनारी रै पल्लै झूमै मांगै दान मही को
तुम जो कहौ त्रिभुवन को राजा चोथो खंड अही को
छत्री कुळ की करो बराबर बो भिड़वाळ्यो जाणो
जिण का कुळ की लज्या आवै तिण कूं किसो वखाणो ?
दरसण काळो, बोलै कूड़ो तन मधरो, अभिमानो
पदम भणै प्रणवै पाय लागूं भलो सरायो कानो

दोहा— भींव भणै, सुत माहरा थे छो मूढ-गिंवार
बीजां रै भुज दोय छै हरजी रै भुज च्यार

मारू— चतुरभुज नै च्यारूं भुज सोहै गरुड़ासण गोविंदो
ब्रह्मादिक सनकादिक थरप्या अह-निस सूरज चंदो
वासक कै सिर धरणी थरपी जळ पाताळ चलायो
नीचै जळ कूं ऊपर ल्याया विच में मुलक वसायो

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

वाणी-सरोवर अथवा ट्रस्ट में चल रहे सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण ग्रन्थ :—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०— ,, तथा ,, ,, अध्यात्म रामायण
११—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज १२—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूलपाठ अनुवाद सहित
१४—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १५—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१६—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१७—(राजस्थानी) रुक्मिणीमंगल—पदम भगत कृत
१८—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादे सफ़र)
१९—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा
२०— ,, ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० २५·००
२२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड मूल्य १५·००
२३—(मलयाळम) एळुत्तच्छन् कृत महाभारत संपूर्ण हिन्दी अनु० सहित मूल्य ४०·००
२४—(कश्मीरी) रामावतारचरित—प्रकाशराम कुर्यग्रामी कृत ,, २०·००
२५—बाइबिल सार (सालोमन के नीतिवचन) १·००
२६—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र) ,, ५·००
२७—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक खा० ब० ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ५·००
२८—सिर्र अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० २०·००
२९—ज़ादे सफ़र (इस्लामी हदीस) ,, १२·००
३०—(वाणी सरोवर)—उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण कात्रैमासिक पत्र—वार्षिक १०·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अरबी) क़ुरआन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—४०)

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक